सुमित्रा नन्दन पंत के गीति नाट्यों का अनुशीलन

शोध-प्रबन्ध

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी

1998

कला संकाय के अन्तर्गत
हिन्दी विषय में
पी. एच. डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-निर्देशन
डॉ. जवाहरलाल कंचन
रीडर (से.नि.), हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी

शोधार्थी
जया गुप्ता

डॉ. जवाहर लाल कंचन
एम.ए., पी.एच.डी.

294, चमन गंज, सीपरी बाजार,
झाँसी पिन 284 003
फोन : 0517 : 442463, 444736

प्रमाण पत्र

मुझे प्रसन्नता है कि सुश्री जया गुप्ता ने मेरे निर्देशन में सुमित्रानन्दन पंत के गीतिनाट्यों का अनुशीलन विषय पर बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से पी.एच.डी. की उपाधि हेतु अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है।

सुश्री जया गुप्ता ने पंत जी की रचनाओं के गहन अध्ययन की भूमिका में उनके गीतिनाट्यों का सम्यक् शोध परक विवेचन किया है। विचार बिन्दु, चिन्तन, शिल्प, अभिव्यक्ति और प्रस्तुति की दृष्टि से उनका यह शोध प्रबंध एक मौलिक कृति है। यह कृति शोधार्थी एवं समीक्षा जगत के लिये उपादेय होगी।

मैं शोध छात्रा के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त हूं।

26-12-98
जवाहर लाल कंचन
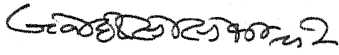
घोषणा पत्र

मैं **श्रीमती जया गुप्ता** घोषणा करती हूं कि सुमित्रानन्दन पंत के गीतिनाट्यों का अनुशीलन शीर्षक के अंतर्गत किया गया कार्य डॉ. जवाहर लाल कंचन के पर्यवेक्षण व मार्गदर्शन में किया गया, शोध समिति के द्वारा स्वीकृत मेरा स्वयं का शोध कार्य है। मैंने निर्देशक के पास २५० दिवसों से अधिक की उपस्थिति दर्ज कराई है।

मैं यह भी घोषणा करती हूं कि मेरी पूर्ण जानकारी के अनुसार शोध प्रबंध में कार्य का कोई भाग ऐसा नहीं है जो उपाधि प्रदान करने हेतु इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय /सह–विश्वविद्यालय में बिना उचित संदर्भ व दृष्टान्त के प्रस्तुत किया गया हो।

शोधार्थी

जया गुप्ता

26.12.98

निर्देशक

सुमित्रानंदन पन्त के गीतिनाट्यों का अनुशीलन

अनुक्रमणिका

आभार

नैसर्गिक रूप से मनुष्य सदैव ही ज्ञान पिपासु रहा है। उसके पास चाहे कितना भी ज्ञान क्यों न हो फिर भी उसमें ज्ञान का कहीं न कहीं अभाव अवश्य होता है क्योंकि मानव पूर्णता में अपूर्णता लिए हुए है। अतीत से आज तक का इतिहास साक्षी है कि सहयोग के बिना किसी भी ज्ञान-यज्ञ का सम्पूर्ण हो पाना असम्भव सा ही रहा है। मेरे इस शोध कार्य में भी मुझे आदरणीय गुरूजनों, मित्रों तथा सहयोगियों का अपार स्नेह और सहयोग मिला है। अतः इनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना शोध प्रबंध प्रस्तुत करना मेरे लिए सम्भव ही नहीं था।

मैं अपने निर्देशक आदरणीय डा० जवाहर लाल कंचन जी के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं जिनके वत्सल निर्देशन में यह शोध कार्य सभी क्लिष्टताओं और दुरूहताओं से जूझते-उबरते हुए आनन्द और संतोषप्रद पूर्णता को प्राप्त हुआ। गूढार्थ व निहितार्थ को परखने की उनकी मौलिक दृष्टि व दुरूहतम आयामों को सरल सुबोध शब्दों में व्याख्यायित करने की उनकी प्रतिभा का मैंने भरपूर लाभ उठाने की चेष्टा की है और यह मेरे जीवन की अमूल्य धरोहर बनी रहेगी।

मेरे परमपूज्य पिताश्री डॉ. विनोद शंकर, प्रधान वैज्ञानिक, भा० च० एवं चा०अनु०सं. झाँसी तथा माताश्री श्रीमती राजकुमारी गुप्ता का आर्शीवाद मुझे सदैव शोध कार्य हेतु प्रेरित करता रहा है तथा इन्होंने इस शोध कार्य को पूर्ण करने हेतु सतत उत्साह वर्धन एवं सम्बल प्रदान किया।

अपने ससुराल पक्ष के प्रति आभार प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य है। इन लोगों का मुझे स्नेह प्राप्त नहीं होता तो यह शोध कार्य सम्पन्न हो पाना असम्भव ही था। मैं अपने श्रद्धेय श्वसुर श्री रामकिशोर गुप्त एवं सास श्रीमती रामकली गुप्ता के अपार स्नेह और दुलार एवं इस शोध के प्रति उनकी सतत प्रेरणा को याद करके उनका हार्दिक आभार प्रकट करती हूं ।

मैं अपने पतिदेव श्री पंकज गुप्त का विशेष रूप से आभार प्रकट करना चाहूंगी जिन्होंने मुझे सदैव प्रेरित कर मेरा मनोबल बढाया एवं असीम सहयोग प्रदान किया जिसके फलस्वरूप मैं अपना शोध प्रबंध पूर्ण कर सकी । साथ ही मैं अपने देवर श्री शिरीष गुप्त व देवरानी मृदुला गुप्ता, ननदें डॉ० सरला गुप्ता, डॉ० आभा गुप्ता के प्रति भी आभारी हूं जिन्होंने मुझे सदैव प्रोत्साहित किया।

मैं अपनी बहनों श्रीमती गीता गुप्ता,श्रीमती गरिमा गुप्ता तथा कु. अम्बिका व जीजाश्री सुनील गुप्ता, श्री प्रेम कुमार गुप्ता की भी आभारी हूं जिनका स्नेह एवं सहयोग सदैव मिला। मैं अपने अनुज श्री अमलेन्दु शेखर की विशेष रूप से आभारी हूं जिसने हर प्रकार से मेरी सहायता की।

मैं अपने भतीजे सिद्धांत एवं सुमीत तथा भतीजी सोनिया की भी आभारी हूं जिन्होंने सदैव मेरे आत्मविश्वास को बनाये रखा। लेखन में आने वाली कठिनाईयों से उत्पन्न निराशाओं को समाप्त करने के लिए इनके प्रेम रूपी व्यवहार ने औषधि का कार्य किया है।

मैं अपने मित्रों एवं सहयोगियों का भी आभारी हूं जिन्होंने मुझे इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया। मैं अपने सहयोगी श्री श्रीआंश कुमार द्विवेदी एवं श्री के. पी. राव जी का हार्दिक आभार प्रकट करती हूं जिन्होंने स्तरीय टंकण कर उपकृत किया।

मैं पेस कम्प्यूटर सेंटर के संचालक श्री विवेक अग्रवाल जी का विशेष रूप से आभारी हूं जिन्होंने अल्प समय में अथक परिश्रम करके इस शोध प्रबंध को स्वच्छ, सुन्दर एवं आकर्षक बनाया है।

अंत में एक बार पुनः अपने आदरणीय निर्देशक डा. जवाहर लाल कंचन का आभार व्यक्त करते हुए अपने श्रम की इस कृति को अनन्तश्री पूज्यपाद स्वामी जी, श्री पीताम्बरा पीठ, दतिया के श्रीचरणों में समर्पित करती हूं।

शोधार्थी

स्थान : झाँसी

दिनांक : 26.12.98

(जया गुप्ता)

प्रयोजन और प्रतीति

- गीतिनाट्य के तत्व
- प्रमुख गीतिनाट्य
- हिन्दी गीतिनाट्य
    - उपलब्धियां
    - अभाव
    - संभावनायें

प्रयोजन और प्रतीति

``गीति'' काव्य की प्राचीनतम विधा है। इसका उन्मेष मानस की सुकुमार कल्पना की सूक्ष्माभिव्यक्ति के लिये हुआ है। सौन्दर्य की संश्लिष्ट संकल्पना एवं भाव प्रवणता की उन्मुक्त प्रवृत्ति ने प्रकृति और पुरुष दोनों को एक स्वर एक लय एवं एक गति में बांध दिया है जिसे ``गीत'' कहा जाता है। संस्कृत के महाकवि कालिदास ने गीत की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है ``विचिंत्य गीतक्षमर्थजातम्।'' इससे चरित गायन में गीत की महत्ता सिद्ध होती है। गीतों के सहज स्वरुप का विवेचन नये गीतिकाव्य समीक्षकों ने किया है। नीरज के अनुसार काव्य की एक विधा, स्वर संकेत से व्यक्त होने वाला मन का एकान्त भावाकुल उच्छवास। हिन्दी के प्रख्यात कवि डॉ0 हरिवंशराय बच्चन का मत है– ``गीत काव्य की महत्वपूर्ण विधा है, जिसका भाव लोक विशिष्ट होकर भी सीमित है।''

हिन्दी में गीतिनाट्य के लिये पद्य नाटक, पद्य रूपक, काव्य नाटक, काव्य रुपक, काव्य एकांकी आदि नाम भी प्रचलित हैं, किन्तु इन नामों से अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं। गीति शब्द की लयात्मकता को देखते हुये यह नाम (गीतिनाट्य) सर्वाधिक सार्थक प्रतीत होता है।

गीतिनाट्य का गीति-तत्त्व नाटक का अनिवार्य अंग होने से उसे अपेक्षित ऊँचाई दे पाता है। यह बाह्य रूप से जोड़ा हुआ कोई उपकरण नहीं है, अपितु उसके भीतर से नाटक सिरजा जाता है। गीतिनाट्य का 'टेक्सचर', गद्य नाटक के 'टेक्सचर' से भिन्न होता है। गद्यनाटक के टेक्सचर का यथास्थान परिवर्तन भी किया जा सकता है, किन्तु गीतिनाट्य में इसके लिये बिल्कुल अवकाश नहीं है।

काव्यगत लय के कारण गीतिनाट्य पाठकों की संवेदनाओं और संवेगों के गहनतर स्तरों को उदघाटित करने में अधिक समर्थ होता है। काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व बिम्ब-योजना तथा आधुनिक जीवन की पेंचीदगियों को अभिव्यक्त करने के लिये प्रतीक विधान भी आवश्यक है। इसके माध्यम से कवि जीवन के यथार्थ को अधिक निकट से पकड़ पाता है और उसे अधिक प्रभावशाली तथा मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करता है। गीतिनाट्य अन्यापदेशिक नाटकों की उपदेशात्मक गन्ध से विरहित होता है। अन्यापदेशिक नाटक बुद्धि के स्तर पर ही बोधगम्य होता है, अनुभूत्यात्मक स्वर से प्रायः वह असम्पृक्त रह जाता है। अतः गीतिनाट्य द्वारा विभिन्न स्तरों पर अर्थ की जो व्यंजना होती है, वह

उसकी अपनी होती है और अन्यापदेशिक तथा प्रतीकवादी नाटकों द्वारा उद्‌घाटित अर्थ के विभिन्न स्तरों से भिन्न होती है।

गीतिनाट्य द्वारा अभिव्यंजित अर्थ के एकाधिक स्तरों के मुख्य आधार शब्द ही हैं। फिर भी गीतिनाट्य में `टोन' से भी बहुत कुछ काम लिया जाता है। भावों के उतार-चढ़ाव और जटिलताओं को व्यक्त करने के लिये लय का महत्वपूर्ण योग होता है। लय के आरोह-अवरोह और सम से विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति सहज सम्भव है। भावों की सान्द्रता (इण्टेन्सिटी) की ऊँचाई और गहराई में अंकित करने के लिये `टोन' का माध्यम ग्रहण करना पड़ता है।

गीतिनाट्य एक ओर गीति है तो दूसरी ओर नाट्य भी। गीति निरपेक्ष गीति होना नाटक के लिये घातक होता है। इसलिये उसे नाट्यात्मक होना अनिवार्य है। गीति नाट्य के काव्य-सौन्दर्य को नाट्य के सन्दर्भ में ही देखा जाना चाहिये। अतुकान्त कविता के माध्यम से इस सम्पूर्णता की उपलब्धि संभव नहीं है। इसीलिये ईलियट ने उसके लिये मुक्त वृत्त (Free Verse) को अपनाया।

गीतिनाट्य कोई बाह्य वास्तविकताओं से बहुत आगे बढ़कर आधुनिक जीवन की जटिलताओं को संवेदनात्मक स्तर पर उद्‌घाटित करने में प्रवृत्त हुआ।

गीतिनाट्य के तत्त्व

अन्तर्जीवन

गीतिनाट्य का प्रधान आधार मनुष्य का अन्तर्जीवन है। अन्तर्जीवन को प्रधानता देने के कारण उसकी विषय-वस्तु के तीव्र मनोभाव (इण्टेन्सिफाइड इमोशन्स) हैं जिनकी अभिव्यक्ति वह काव्यत्व के योग से करता है। जीवन के भावात्मक क्षणों एवं उनसे सम्बद्ध घटनाओं पर गीतिनाट्य अपने कथानक का निर्माण करता है। गीतिनाट्य अन्तर्जीवन के भावात्मक सत्यों को अपना उपजीव्य बनाता है। वह भावजगत की तह में पहुँचकर रागात्मक भावनाओं और अनुभूतियों को चित्रित करने का प्रयास करता है।

अन्तर्जगत की भावनाएँ ओर अनुभूतियाँ ही बहिर्जगत के कार्य-कलापों का संचालन करती हैं और विचार, अनुभूतियाँ राग और विराग ही हमारे अन्तरतम के सत्य हैं जिनका अंकन करना साहित्य और कला का अभीष्ट है। इन भावात्मक सत्यों से ही हमारा बहिर्जीवन सचेष्ट है, ये ही सत्य बहिर्जीवन के गति और प्रेरणा-स्रोत है।

बर्हिजीवन

बर्हिजीवन की सत्य घटनाएँ और कार्यकलाप आदि भावात्मक सत्यों से अनिवार्यतः सम्बद्ध हैं। अतएव गीतिनाट्य को उन्हें भी ध्यान में रखना पड़ता है। बहिर्जीवन और अन्तर्जीवन दोनों ही एक दूसरे से प्रभावित और परिचालित होते रहते हैं। वह जीवन की अभिव्यक्ति गम्भीर और कलात्मक रूप में करता है। साथ ही वह जीवन को अधिक से अधिक निकट रूप में देखता है।

गीतिनाट्य की विशेषताएँ

विषय-वस्तु की दृष्टि से गीतिनाट्य की कुछ अन्यतम विशेषताएँ है, जिनके कारण साहित्य की अन्य विधाओं से उसका काफी महत्व बढ़ गया है। गीतिनाट्य का प्रधान आधार मनुष्य का अन्तर्जीवन है। गीतिनाट्यकार मानव हृदय के अन्तस्तल में गहरे बैठकर उसके राग-विरागों, विचारों और अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण करके अन्तर्जीवन की वास्तविकताओं को सामने लाने का प्रयत्न करता है।

रसोत्पत्ति की दृष्टि से गीतिनाट्य की विषय-वस्तु का पुष्ट संगठन, सुस्थिर घटना-क्रम स्थापन और कथा सूत्रों एवं क्रिया व्यापारों में सुसम्बद्धता महत्वपूर्ण हैं। सम्पूर्ण कथानक एक निश्चित केन्द्र पर आधारित, सर्वत्र संतुलित एवं सामंजस्य से पूर्ण होना चाहिये। साथ ही कथावस्तु में औत्सुक्य और आकर्षण की योजना करके उसे अत्यन्त सरल और प्रभावोत्पादक रूप में रखा जाना अपेक्षित है। गीतिनाट्य की विषय वस्तु काव्यात्मक होने के कारण कथानक भाव-प्रधान होता है। इसमें प्रायः ऐसे स्थलों को चुना जाता है जो अपनी मार्मिकता के कारण हमारे अन्तस्थल की गहराई को आसानी से स्पर्श कर सकें। अतः इसमें प्रायः कथा-वस्तु अतीत की गौरव गाथाओं और धार्मिक पौराणिक क्षेत्रों से उठायी जाती है। गीतिनाट्य में पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं का प्रयोग वर्तमान जीवन की वास्तविकता को उभारने के लिये किया जाता है। अन्तर्जीवन के भावात्मक क्षणों को अपनी विषय-वस्तु बनाने के कारण गीतिनाट्य पर कुछ लोगों द्वारा वैयक्तिकता का आरोप लगाया गया है। इसके भावना प्रधान होने का यह तात्पर्य नहीं है कि उसमें जीवन की कठोर वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। धर्मवीर भारती, सिद्धनाथ कुमार आदि के गीतिनाट्यों से इस

तथ्य की पुष्टि होती है कि उसमें जीवन और जगत की कठोर वास्तविकता की अभिव्यक्ति के लिये पूर्ण स्थान है।

गीतिनाट्य का प्रधान आधार मनुष्य का अन्तर्जीवन होने के कारण पात्रों के मनोभावों और मानसिक स्थितियों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण कर उन्हें तीव्रतम रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पात्र-सृष्टि और सफल चरित्र-चित्रण के लिये जीवन के अन्तरंग का व्यापक अनुभव, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, मानव-जीवन का गहन अध्ययन और मनोविज्ञान की गहराई का समवेत ज्ञान गीतिनाट्यकार को होना आवश्यक है। तभी वह अपने पात्रों को जीवन प्रदान कर सकता है। पात्र और उनकी वाणी - भाषा दोनों ही नितान्त स्वाभाविक होनी चाहिये। कथानक और पात्र परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। नाटककार चरित्रों के माध्यम से अपनी विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति करता है। बाह्य दृश्य विधान के स्थान पर मानसिक संघर्षो का चित्रण ही गीतिनाट्य का मुख्य लक्ष्य रहता है। वह पात्रों के चरित्र का उद्घाटन इन मानसिक स्थितियों के चित्रण द्वारा ही करता है।

भावात्मक कथोपकथनों में स्वाभाविकता एवं प्रभावोत्पादकता लाने के लिये गीतिनाट्य के कथनोपकथनों के पद्य की योजना उसके पात्रों की प्रकृति, चारित्रिक विशेषताओं और व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार ही होनी चाहिये। अर्थात् गीतिनाट्य के कथोपकथन सहज, स्वाभाविक, भावात्मक एवं चरित्र-चित्रण में गहनता और बारीकी लिये होने चाहिये। गीतिनाट्य में भाषा का अत्याधिक महत्व है क्योंकि भाषा भाव-प्रेषण का कार्य करती है। भाषा के सम्बन्ध में टी. एस. ईलियट का कहना है कि `भाषा न तो इतनी प्राचीन होनी चाहिये कि उसकी बोध-गम्यता ही संदिग्ध हो जाये और न ही कुछ आधुनिक फ्रांसिसी नाट्यकारों की भाँति आजकल के वार्तालाप से मिलती-जुलती ही होनी चाहिये। इसलिये उसने अपनी शैली को `तटस्थ' कहा है।' इस तटस्थता का निर्वाह करने के लिये उसने अतुकान्त छन्द के स्थान पर मुक्त छन्द को अपनाया है। छन्द की सहायता से गीतिनाट्य की विषय-वस्तु भावावेश के तीव्र क्षणों को अभिव्यक्ति मिलती है। गीतिनाट्यों में तीव्र भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये लयात्मक छन्द की अपेक्षा होती है। ऐसा छन्द मुक्त छन्द (फ्री वर्स) ही है जो छन्द शास्त्र के अनेक परम्परागत सर्व स्वीकृत नियमों का उल्लंघन करता हुआ दिखाई देता है। मुक्त छन्द के चरणों की अनियमितता, असमान स्वछन्द गति और भावानुकूल यति विधान उसकी विशेषता हैं। भावानुकूल ध्वन्यात्मक शब्द योजना और वृत्तियों का प्रयोग किया जाता है।

गीतिनाट्य में चित्र और प्रतीकों के द्वारा आन्तरिक जीवन की आवेगमयी

झाँकी को वास्तविकता के धरातल पर प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है। बिम्ब-विधान गीति नाट्य के विषय को एक ओर मूर्त और ग्राह्य बनाता है, दूसरी ओर उसके रूप के संक्षिप्त और दीप्त बिम्ब न केवल विषय वस्तु को स्पष्टता के साथ मानस-चक्षु के समक्ष ला खड़ा करते है अपितु उनसे भावात्मक घनत्व की सर्जना में भी सहायता मिलती है। भाषा की छन्दोमयता, लयपूर्णता आदि के कारण ये बिम्ब या चित्र अधिक तीव्र और स्पष्ट हो जाते हैं। गीतिनाट्य में परिवेश निर्माण के निमित्त ध्वनि-चित्रों का भी विशेष महत्व है। रेडियो के लिये लिखे गये गीतिनाट्यों में ध्वनि-चित्रों की सहायता से परिवेश निर्माण एवं वातावरण इफेक्ट को सजीवता मिलती है।

गीति नाट्य में विषय-वस्तु एवं पात्रों को प्रतीकों के माध्यम से ही अभिव्यंजित किया जाता है। प्रतीक रूढ़िवादी अथवा जीवनानुभूतियों से असम्पृक्त न हों, वरन् विषय के अनुरुप उपयुक्त सटीक, नवीन और सजीव होने चाहिए। प्रतीकों का महत्व इसी में है कि वे अपने माध्यम से युग-सत्यों को, अपनी पूर्ण सार्थकता में अर्थपूर्ण ओर सम्प्रेषणीय बना दें। अन्तर्जीवन की समस्याओं से सम्बद्ध होने के कारण उसके सूक्ष्मतर स्तरों को प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त किया जा सकता है।

प्रमुख गीतिनाट्य

प्रसाद जी का 'करूणालय' हिन्दी - गीतिनाट्य की दिशा में प्रथम प्रयास है जो 'इन्दु' पत्रिका में संवत् १९६९ में प्रकाशित किया गया। यह बंगला के ब्लैंक वर्स के आधार पर अतुकान्त मात्रिक छन्द में लिखा गया है। हिन्दी का दूसरा गीतिनाट्य मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ' है। 'अनघ' में हमारे उस राष्ट्रीय आन्दोलन के समाजिक पक्ष की एक झलक दिखाने का प्रयत्न किया गया है जो कि गाँधीवादी विचारधारा से अनुप्रेरित हुआ था। तदुपरान्त भगवतीचरण वर्मा का 'तारा', उदयशंकर भट्ट का 'मत्स्यगंधा', 'विश्वामित्र' और 'राधा', डॉ. धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' आदि नाटकों के साथ पंत जी के 'शिल्पी', 'रजशिखर', 'सौवर्ण' १२ नाट्य रूपक गीतिनाट्य की श्रृंखला में प्रसिद्ध थे।

सुमित्रानंदन पंत के गीतिनाट्य

'ज्योत्स्ना'

सुमित्रानंदन पंत कृत 'ज्योत्स्ना' (१९३४) नाट्यरूपक शैली की उल्लेखनीय प्रतीकात्मक रचना है जिसमें संसार में सर्वत्र फैली अशान्ति, हिंसा, संघर्ष

आदि को दूर करने के लिये रूमानी ढंग का समाधान प्रस्तुत किया गया है। पंत जी की कल्पना क्षमता और कवित्व का परिचय इसमें अच्छा मिलता है।

`ज्योत्स्ना' में पंत जी की दार्शनिक विचारधारा प्रकट होती है। पंत जी ने आधुनिक संसार की समस्याओं को सुलझाने के लिये कुछ सिद्धान्तों की सृष्टि की है। इसकी कथावस्तु बहुत मामूली है-लगभग नहीं के बराबर। संसार में सर्वत्र ऊहापोह और घातक क्रान्ति देखकर इन्दु उसके शासन की बागडोर अपनी महिषी `ज्योत्स्ना' को दे देता है जो स्वर्ग से भू पर आकर पवन और सुरभि अथवा स्वप्न और कल्पना की सहायता से संसार में प्रेम का नवीन स्वर्ग, सौन्दर्य का नवीन आलोक, जीवन का नवीन आदर्श स्थापित कर देती है।

पंत जी ने जो विकसित मानववाद और काल्पनिक समाजवाद के सामंजस्य द्वारा अपना नया स्वर्ग निर्माण किया है उसी का इन्होंने इस नाटिका में आख्यान किया है - जिस प्रकार यह पृथ्वी बाहर से एक है उसी प्रकार भीतर से भी इसे एक आत्मा, एक मन, एक वाणी और एक विराट संस्कृति की आवश्यकता है। `ज्योत्स्ना' के सभी गानें प्रतीकात्मक हैं। उनमें गायक के बाह्य और अन्तर का पूर्ण सामंजस्य मिलता है। इन सभी गीतों में पंत जी के भावों की सुकुमारता, कल्पना की सूक्ष्म ग्राहकता और शाब्दिक शक्ति की चित्रमयता का पूर्ण प्रमाण मिलता है। साथ ही उन सभी में नाटकोचित संगीत-धारा भी है।

शिल्पी, रजतशिखर और सौवर्ण

पंत जी के इन गीतिनाट्यों में उनका कल्पना, सौन्दर्य और चिन्तनपरक रूप देखने को मिलता है। `शिल्पी' संग्रह का `अप्सरा' गीतिनाट्य पंत जी की सूक्ष्म सौन्दर्यपरक दृष्टि का परिचायक है। पंत जी ने सूक्ष्म सौन्दर्य - चेतनापरक दृष्टि से अपने गीतिनाट्यों में मानव व्यक्तित्व का अन्वेषण तथा सौन्दर्य का यथार्थ और सूक्ष्म विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। इसमें संदेह नहीं कि पंत जी को इसमें अंशतः सफलता मिली है, क्योंकि मूलतः पंत जी की दृष्टि सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति, कल्पना और चिन्तन की ओर विशेष रूप से उन्मुख रही है। इन गीतिनाट्यों में उन्होंने वर्तमान की पृष्ठभूमि पर स्वर्ण भविष्य के निर्माण की कोशिश की है।

`शिल्पी' गीतिनाट्य संग्रह का प्रथम गीतिनाट्य `शिल्पी' है। `शिल्पी' में पंत जी ने कलाकार के जीवन की यथार्थवादी व्याख्या उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। सौन्दर्य के निर्माता कलाकार के अन्तस् में उद्भूत और विकसित

संघर्ष की भावपूर्ण अभिव्यक्ति करने में पंत जी काफी अंशों में सफल रहे हैं। दूसरे गीतिनाट्य 'ध्वंस शेष' में विज्ञान और भौतिकवाद से तत्त्व सृष्टि को शान्ति और सुख की खोज में प्राचीन संस्कृति की ओर उन्मुख करना पंत जी का लक्ष्य रहा है। पश्चिम की संघर्षमयी, अनीश्वरवादी और विज्ञानवादी संस्कृति का परित्याग कर पूर्व की आस्थावादी और आनन्दमयी संस्कृति का समर्थन किया गया है।

'रजतशिखर' गीतिनाट्य में आज के अध्यात्मवाद, भौतिकवाद तथा आदर्शवाद, वस्तुवाद या यथार्थवादी सम्बन्धी संघर्षो को अभिव्यक्ति देकर उनमें परस्पर समन्वय लाने की चेष्टा की गयी है। विश्व में संतुलन तथा परिपूर्णता लाने के लिये इन दोनों की उपयोगिता दिखायी गयी है। आदर्श का प्रतीक कलाकार और भौतिकता का प्रतीक वैज्ञानिक दोनों एक दूसरे पर प्रत्यारोप करते हैं। किन्तु अंत में दोनों एकनिष्ठ होकर मानव कल्याण की बात सोचते हैं।

'सौवर्ण' गीतिनाट्य संग्रह में 'सौवर्ण', 'स्वप्न और सत्य', तथा 'दिग्विजय' गीतिनाट्य संग्रहीत हैं। 'सौवर्ण' संक्रमणकालीन मानव-मूल्यों के विकास का प्रतीक है। इसका पात्र सौवर्ण कवि पंत के भावी आदर्श मानव की कल्पनात्मक सर्जना है। 'सौवर्ण' भविष्यद्रष्टा के रूप में आता है जिसका उदय लोक जीवन का प्रतिनिधित्व करने के लिये हुआ है। 'स्वप्न और सत्य' आदर्श और वास्तविकता के बीच युग संघर्ष का घोतक है। 'दिग्विजय' जीवन सत्य की बहिरेतर विजय का साक्षी बनकर युग सत्य को प्रस्तुत करता है।

पंत जी के प्रायः अधिकांश गीतिनाट्य प्रतीकात्मक हैं जो रेडियो को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। पंत जी ने रेडियो तकनीक को ध्यान में रखते हुये अपने गीतिनाटकों में ध्वनि, संगीत और कोरस का संयोजन किया है।

गीतिनाट्य में जिस चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व और नाटकीय स्थितियों की योजना की अपेक्षा की जाती है वह पंत जी के इन गीतिनाट्यों में ढूढ़े न मिलेगी। 'रजत शिखर' के पात्र केवल दुरूह दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतीक मात्र बनकर रह गये हैं, जो व्यक्तित्व के अभाव के कारण श्रोता अथवा अध्येता के हृदय में संवेदना का उद्रेक नहीं कर पाते। 'शिल्पी' के पात्रों में भी व्यक्तित्व का अभाव है। पात्रों के लंबे - लंबे विस्तृत सैद्धान्तिक व्याख्यानों में उनके चरित्र में द्वन्द्व के अभाव के कारण नाटकीयता का किंचित रूप में भी समावेश नहीं हो पाया है।

संलाप योजना की दृष्टि से पन्त जी के गीतिनाट्य नीरस, निर्जीव और बोझिल हैं। संवादों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे कथित न होकर ध्वनित हों। किन्तु पन्त जी के गीतिनाट्यों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि

वे इनमें निहित कविता को नाटकीय नहीं बना सके हैं। नाटक की कविता नाटकीय कविता न होकर कविता मात्र रह गयी है।

हिन्दी–गीतिनाट्य : उपलब्धियाँ अभाव और सम्भावनाएं

हिन्दी गीतिनाट्यों की प्रवृत्ति, प्रगति एवं उसके मान्य सिद्धान्तों का तात्त्विक विवेचन कर लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि आज हिन्दी गीतिनाट्य ने अपनी सुनिश्चित आधारशिला स्थापित कर ली है। इस विधा का सर्वाधिक महत्व इसमें है कि यह अन्तर्जीवन का चित्र प्रस्तुत करने में अत्यंत सशक्त माध्यम सिद्ध हुआ है।

हिन्दी गीतिनाट्य ने अत्यल्प काल में जिन स्तरों को पार किया है, वह कम महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं है। 'करूणालय' 'शिल्पी' 'सृष्टि की सांझ' और 'अंधा युग' तक दृष्टि दौड़ाने पर सारी बातें सहज ही सामने आ जाती हैं। इतिवृत्तात्मक पद्य, अनाटकीय काव्य और नाटकीय मुक्त वृत्तों का प्रयोग क्रमिक उपलब्धियों के सूचक हैं।

हिन्दी में कोई सुनिश्चित रंगमंच न होने के कारण इनका समुचित विकास नहीं हो पा रहा है। इसलिये गीतिनाट्य केवल पठन और श्रवण तक सीमित रहे। आज इनकी मुख्य शरण-भूमि आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्र ही दिखाई पड़ते हैं।

हिन्दी - गीतिनाट्य का जो सबसे दुर्बल पक्ष है, वह है इनमें काव्यत्व और नाट्यत्व के समन्वय का अभाव। गीतिनाट्य में जब तक नाटक और काव्य एक दूसरे में होकर नहीं बहते और अन्योन्याश्रित रूप में सामने नहीं आते तब तक न तो विषय-वस्तु की सम्यक् अभिव्यक्ति ही सम्भव है और न अभीष्ट प्रभाव की समष्टि ही। नाट्यत्व के अभाव के साथ-साथ भाषा और काव्य लय भी जन-जीवन की भाषा और सामान्य व्यवहार की लय से बहुत दूर है। गीतिनाट्यों में प्रतीकों की नियोजना से जो गहराई और बिम्ब के प्रयोग से जो अर्थ की स्पष्टता आनी चाहिये वह अभी तक हिन्दी गीतिनाट्यों में परिलक्षित नहीं होती।

हिन्दी गीतिनाट्यों की परम्परा का विकास दिखाते समय बहुत से नाटकों का नामोल्लेख किया जाता है, किन्तु आधुनिक अर्थ में उनमें से बहुत कम गीतिनाट्य की कोटि में आसकेंगे। गीतिनाट्य का उज्जवल भविष्य किस सीमा तक सच होगा, नहीं कहा जा सकता है। रंगमंच पर यह कभी सफलतापूर्वक खेला जा सकता है, इसमें अब संदेह नहीं। नई तकनीक और नाट्य विधान से

यदि अच्छे गीतिनाट्यों की सृष्टि की जाये तो रेडियो व टी. वी. के माध्यम से वे निश्चित ही प्रभावशाली सिद्ध होंगे।

गीतिनाट्य की अभिनयात्मक सफलता के लिये सुरूचिपूर्ण रंगमंच के साथ ही सुसंस्कृत दर्शक वर्ग की भी आवश्यकता होगी, हिन्दी रंगमंच की स्थापना और प्रचार होने पर उसके अनुकूल गीतिनाट्यों की भी सर्जना होगी और अभिरूचीपूर्ण दर्शक मण्डली का भी निर्माण होगा।

गीतिनाट्यकार के लिये इस बात की आवश्यकता है कि वह नाटक की कविता को जगत के उस धरातल पर ले जाये जहाँ मनुष्य की आत्मा को वह स्पर्श से स्पन्दित कर सके। गीतिनाट्य तभी प्रश्रय पा सकता है जब उसकी कविता जनता को अपनी भावना के निकट प्रतीत करा सके और नाटक के पद्यमय वार्तालाप को सुनते हुये दर्शक भी यह कह सके कि कविता के संवाद मेरे अपने हैं।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि गीतिनाट्य का नवीन आलोचना के साथ विशुद्ध अध्ययन किया जाय। यह भी समीचीन है कि पंत के काव्य रूपकों का अभी तक न तो पर्याप्त अनुशीलन किया गया है और न ही इन गीतिनाट्यों का साहित्यिक मूल्यांकन हो सका है। नई तकनीक की विधाओं में विशेष रूप से दूरदर्शन के माध्यम से इन गीतिनाट्यों के प्रस्तुत किये जाने की सम्भावनायें प्रबल हैं और मानवीय धरातल के भौतिक अन्तश्चेतनावादी तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों का भी अन्वेषण किया जा सके। इस दृष्टि से पंत जी के काव्य रूपकों का अध्ययन और अनुशीलन आवश्यक प्रतीत होता है और इसी विषय पर शोध किया जाना नितान्त आवश्यक है।

अध्याय प्रथम

सुमित्रानंदन पंत का साहित्यिक उन्मेष

- काव्य यात्रा
- नाट्य लेखन : ज्योत्स्ना
- काव्येतर साहित्य सृजन

अध्याय प्रथम

प्रकृति की सुरम्य गोद कूर्माचल के हरिताभ अंचल कौसानी में सुमित्रनन्दन पंत जी का जन्म २० मई १६०० ई. में हुआ था। जन्म के कुछ घंटे बाद ही मातृ स्नेह से वंचित हो जाने के कारण कौसानी की प्राकृतिक सुषमा ने पंत जी को बचपन से ही आकृष्ट किया और प्रकृति के मनोहर वातावरण का पंत जी के व्यक्तित्व पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। आरम्भ से ही पंत जी अपनी जन्म भूमि की हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों और प्रकृति के विविध मनोहर रूप से आत्मविभोर होकर घंटों प्रकृति वधू के रूप सौन्दर्य को निहारा करते थे। पंत जी के मन में प्रकृति के प्रति इतना मोह पैदा हो गया था कि वे जीवन की नैसर्गिक व्यापकता और अनेकरूपता में पूर्ण रूप से आसक्त न हो सके।[१] बाल्यकाल से ही पंत जी के हृदय में प्रकृति का अपूर्व सौन्दर्य आत्मसात् हो गया। और यही प्रकृति का अनन्त सौन्दर्य उनके काव्य की प्रेरणा-शक्ति के रूप में साकार हुआ है।[२]

पंत जी ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ही कला सृजन किया। गौर-वर्ण, मांसल-सा शरीर, घुंघराले रेशमी बाल और गम्भीर संयत आकृति वाले पंत जी एक विशेष कवित्व पूर्ण व्यक्तित्व रखते हैं, जिसका प्रभाव देखने वाले पर अनिर्वचनीय और स्थायी होता है। पंत जी स्वभाव-से ही संकोचशील और मितभाषी है। उनकी आंखों में स्निग्ध स्वच्छता है जो उनकी मननशील निर्मल आत्मा का परिचय देती है।[३]

---

१. छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी नाता
बाले तेरे बाल जाल में, कैसे उलझा दूं लोचन ?
भूल अभी से इस जग को।
सुमित्रनन्दन पंत–तारापथ, पृ० सं०-६३

२. "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है कि मैं घंटों एकान्त में बैठा हुआ प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अन्जान आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।"-
सुमित्रनन्दन पंत–तारापथ, भूमिका

३. पं.शांति प्रिय द्विवेदी के शब्दों में-"पंत जी का व्यक्तित्व पूर्ण संस्कृत तथा शालीन है। संगीतमय सुमधुर स्वर,निर्विकार-दृष्टि-निक्षेप, सौजन्य, विनम्र और निश्छल वार्तालाप चिर-मोह के प्रबल बन्धन हैं। दो श्रेष्ठ गुण पूर्ण मनुष्यत्व के है - आत्मविश्वास और निरभिमानता साथ ही वे दूसरों के स्वाभिमान का सम्मान करते हैं। यहीं नहीं उनकी अन्तर्भेदिनी दृष्टि से व्यक्तियों के अन्तस्तल तक पहुंचने की बड़ी सुन्दर क्षमता है"।
डॉ. नगेन्द्र-सुमित्रनन्दन पंत पृ० सं.१३

पंत जी की जन्मभूमि कौसानी ने ही उन्हें कवि बनाया है। इसी कारण पंत जी की काव्य-कला पर प्रकृति के निरन्तर परिवर्तित रूप का प्रभाव देखा जा सकता है। पंत जी को जन्म के उपरान्त तुरन्त ही मातृ-वियोग सहना पड़ा जैसा कि उन्होंने स्वयं ग्रन्थि के कथा नायक के रूप में उल्लेख किया है।[1] यहीं से उनमें करूणा का भाव उत्पन्न हुआ तथा कविता लिखने के लिए वे उत्प्रेरित हुए –

मातृ-वियोग की घटना से प्रभावित कवि की प्रारम्भिक रचानाएं वीणा में झंकृत हुई हैं। पंत जी के शिशु गीत माता के अभाव में ही उसको बार–बार पुकारते हुए एक विशेष सकरूण स्मृति से अनुप्राणित हैं।

पंत जी की विद्यालयीय शिक्षा एफ. ए. तक ही हुई। किन्तु उनका स्वयंचेता ज्ञान उनकी अपनी लगन, अध्यवसाय और चिन्तन का परिणाम है कि वे संस्कृत, बंगला, अंग्रजी को निरन्तर सीखते रहे।

पंत जी की प्रारम्भिक रचनाओं पर तत्कालीन परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ा। राजनैतिक दृष्टि से इस युग में महात्मा गांधी का नेतृत्व जनता को सत्य, अंहिसा और असहयोग के माध्यम से स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान कर रहा था। १९१९ ई. के प्रथम अवज्ञा आन्दोलन की असफलता, जलियांवाला काण्ड तथा भगतसिंह को प्रदत्त मृत्युदण्ड से जन मनोबल और बढ़ा था। इसी कारण साइमन कमीशन के बहिष्कार तथा नमक कानून भंग सदृश जन-आन्दोलनों का जन्म हुआ। पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभाव स्वरूप इस युग के सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन हुए।

१९१८ से १९३८ तक के बीस सालों में अत्यन्त विपुल काव्य–राशि का निर्माण हुआ। एक ओर प्रसाद, पंत और निराला आदि कवि इसी युग में हुए जिनका प्रधान लक्ष्य साहित्य साधना था और साथ ही माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" आदि रचनाकार हुए जो अपने युग के आन्दोलनों में भी सक्रिय भाग लेते थे तथा इनकी काव्य साधना जीवन को ही लक्ष्य बनाकर चलती रहीं। इसी समय चारो ओर फैले हुए जीवन और सामाजिक समस्याओं–पराधीनता, जमींदारों, पूंजीपतियों द्वारा किसानों का

---

१. नियति ने ही निज कुटिल कर से सुखद
गोद मेरे लाड़ की भी छीन ली,
बाल्य ही में हो गई थी लुप्त हा
मातृ–अंचल की अभय छाया मुझे ।
–डॉ. नगेन्द्र–सुमित्रनन्दन पंत– पृ० सं०–१३

शोषण, निर्धनता, आदि को आधार बनाकर उपन्यास तथा कहानियां लिखी गई। इनमें प्रेमचन्द का नाम विशिष्ट रूप से लिया जा सकता है।

पंत जी की प्रारम्भिक कविताएं **अल्मोड़ा अखबार, सुधाकर, मर्यादा** आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। कागज, कुसुम, सिगरेट का धुंआ आदि उनके प्रधान विषय हुआ करते थे- पंत जी की पहली कविता **गिरजे का घंटा** थी जो १९१६ में लिखी गयी थी। पंत जी की सर्वप्रथम कविता सरस्वती में प्रकाशित **स्वप्न** थी जिसको उन्होनें प्रयाग के विस्तृत हिन्दू हास्टल के छोटे से कमरे में लिखकर वहीं के कवि सम्मेलन में सुनाया था।

पंत जी के प्रारम्भिक काव्य ग्रन्थ हैं– **उच्छवास** (१९२०), **ग्रन्थि** (१९२०), **वीणा** (१९२७) **पल्लव** (१९२८), और **गुंजन** (१९३२)। **गुंजन** को हम उनका अन्तिम छायावादी काव्य–संग्रह कह सकते हैं क्योंकि इसके बाद के कविता संकलन पहले प्रगतिवादी चेतना से और फिर अरविन्द दर्शन से प्रभावित हैं।

पल्लव के प्रकाशन के तीन वर्ष बाद पंत जी पर दैविक–दैहिक विपत्तियों का प्रकोप हुआ। पूज्य पिता जी पं. गंगादत्त जी पंत का स्वर्गवास और साथ ही अपनी रूग्णावस्था ने पंत जी के जीवन को निराशा से ओत–प्रोत कर दिया। इन्हीं दिनों पंत जी दर्शन की ओर झुके और जीवन रहस्यों में प्रवेश करने का प्रयत्न किया। प्रभु की अनुकम्पा से शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ कर अपने जीवन के प्रति एक नवीन आशा–समन्वित दृष्टिकोण धारण किया जिसका विकास उनकी **गुन्जन** की कविताओं में स्पष्ट लक्षित होता है। **युगान्त** में आकर वह प्रारम्भिक करूण भाव मानव जगत की कल्याण की कामना से मुखरित हो उठा और आज पंत जी का दृष्टिकोण समाजवादी है।

अरविन्द दर्शन से प्रभावित पंत जी की मुक्तक रचनाओं में **युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, वाणी, पतझर** आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पंत जी ने **लोकायतन** महाकाव्य की रचना भी की है। इन काव्य रचनाओं में कविवर पंत वर्तमान मानव जीवन के विषम संकट को व्यक्त करते हुए एक नये आदर्श भविष्य का चित्रण करता है। ये यथार्थ के अनेक पक्षों को स्पर्श करते हुए भी आध्यात्म पर आश्रित हैं।

पंत जी ने काव्येत्तर रचनाओं का भी सृजन किया है। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही पंत जी ने **हार** नामक उपन्यास लिखा था। इनकी **पानवाला** कहानी का विशिष्ट स्थान है जिसमें अनुभूति पक्ष की प्रधानता है। इसके साथ

ही पंत जी ने गीतिनाट्यों की भी रचना की। ज्योत्स्ना गीतिनाट्य को १६३४ ई. में पंत जी ने लिखा था। जो कि प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया उल्लेखनीय नाट्य रूपक है। इसके साथ ही पंत जी ने **सौवर्ण, शिल्पी** और **रजत शिखर** में संग्रहीत १२ गीति नाट्यों की भी रचना की। ये गीति नाट्य रेडियो रूपक के कलेवर में आकाशवाणी से प्रसारित भी हुए हैं।

काव्य - यात्रा

प्रारम्भिक रचनाएं - (१६१८-३६)

पंत जी की प्रारम्भिक रचनाओं पर तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ा। राजनीतिक दृष्टि से इस युग में गांधी जी का नेतृत्व जनता को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रेरणा प्रदान कर रहा था। १६१६ ई. के प्रथम अवज्ञा आन्दोलन की असफलता, जलियांवाला काण्ड तथा भगतसिंह को प्रदत्त मृत्युदण्ड जैसी घटनाओं के कारण साइमन कमीशन के बहिष्कार, नमक कानून भंग सदृश जन–आन्दोलन हुए। पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभावस्वरूप इस युग में सामाजिक जीवन में भी अनेक परिवर्तन हुए। युवा मन परम्परागत रीति रिवाजों को तोड़कर पश्चिमी राष्ट्रों के स्वतंत्र नागरिकों के समान जीवन–यापन के लिए लालायित थे। पाश्चात्य साम्राज्यवादियों ने सत्ता का सम्बल पाकर ईसाई धर्म प्रचारक पाश्चात्य जीवन पद्धति की गरिमा और भारतीय संस्कृति की निस्सारता का प्रचार करने लगे। अतएव सांस्कृतिक आक्रमणों के फलस्वरूप व्यापक भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलन हुए। प्रमुख रूप से राजाराममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, तिलक और गांधी जी ने जन–जीवन प्रभावित किया। इसी कारण इस समय के काव्यों में इन लोक पुरूषों के सिद्धान्त प्रचलित भी हुए।

देश में संचार–व्यवस्था, यातायात, यान्त्रिकता और नयी शिक्षा पद्धति की स्थापना अंग्रेजी के प्रभाव और अंग्रेजी से प्रभावित बंगला साहित्य के सम्पर्क से व्यक्तिवादी भावना का विकास हुआ। इसी के परिणामस्वरूप पंत जी के काव्य में द्विवेदी युगीन नैतिकता और स्थूलता की प्रतिकिया दिखाई देती है और दूसरी ओर विदेशी दासता के प्रति विद्रोह का स्वर सुनायी देता है। काव्य में प्राचीन भारतीय परम्परा के जीवन्त तत्वों का समावेश किया जिसने परवर्ती काव्य के विकास को भी काफी दूर तक प्रभावित किया, काव्य में अपने युग के जन–जीवन की समग्रता की अभिव्यक्ति की गई तथा पूर्ण और सर्वांगीण जीवन

के उच्चतम आदर्श को व्यक्त करने का प्रयास किया गया।

पंत जी की रचनाओं पर जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द का भी विशिष्ट प्रभाव पड़ा। जहां प्रसाद जी ने देश के गौरवमय अतीत को अपने नाटकों का विषय बनाया भारतीय संस्कृति का गौरव गान कर वर्तमान की समस्याओं का चित्रण और समाधान प्रस्तुत किया वहीं प्रेमचन्द जी ने चारों और फैले हुए जीवन और अनेक समस्याओं– पराधीनता, जमींदारों, पूंजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण निर्धनता, अस्पृश्यता आदि को अपने कहानी व उपन्यास का विषय बनाया।

पंत जी की प्रारम्भिक रचनाओं में **वीणा** (१६१८) **ग्रन्थि** (१६२०) **पल्लव** (१६२८) **गुंजन** (१६३२) प्रमुख हैं।

वीणा

वीणा में पंत जी की सन् १६१८ की लिखी हुई रचनाएं हैं। इन कविताओं में पंत जी के बाल–कवि का गगन बिहारी होने का प्रयास है।[1] इन कविताओं पर टैगोर की **गीतांजलि** का प्रभाव देखा जा सकता है। मूलतः ये प्रार्थना परक है। वीणा में अधिकांश कविताएं भावप्रधान हैं। इन कविताओं में सर्वत्र ही मानव जगत का अथवा प्राकृतिक विश्व के द्वारा कवि के अस्फुट हृदय पर पड़े हुए झिलमिल प्रतिबिम्बों का ही चित्रण विशेष है।[2] ऐसी कविताएं **छाया, अंधकार, किरण, सरिता, प्रथम रश्मि का आना, चातक, मां** आदि है। **वीणा** की **प्रथम**

१. **वीणा** जैसा कि कवि ने स्वयं कहा है, उसका दुधमुंहा प्रयास है –"इस संग्रह में दो एक को छोड़ अधिकांश रचनाएं सन् १६१८ की लिखी हुई हैं। उसमें कवि जीवन के नव प्रभात में नवोढ़ा कविता की मधुर नूपुर ध्वनि तथा अनिर्वचनीय सौन्दर्य से एक साथ ही आकृष्ट हो मन्द कवियश–प्रार्थी निर्बोध लज्जाभीरू कवि, वीणा वादिनी के चरणों के पास बैठ स्वर साधना करते समय, अपनी आकुल उत्सुक हृत्तन्त्री से बार–बार चेष्टा करते रहने पर अत्यन्त असमर्थ अंगुलियों के उल्टे सीधे आघातों द्वारा जैसी कुछ भी अस्फुट झंकार जागृत कर सका है, वे इस **वीणा** के स्वरूप में आपके सम्मुख उपस्थित हैं"

–डॉ. नगेन्द्र–सुमित्रनन्दन पंत– पृ० ६३

२. जैसा कि पंत जी स्वयं लिखा है " जब मैंने पहले लिखना आरम्भ किया था, तब मेरे चारों ओर केवल प्राकृतिक परिस्थितियां तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वातावरण ही ऐसी सजीव वस्तु थे, जिनसे मुझे प्रेरणा मिलती थी। मेरी प्रारम्भिक रचनाएं वीणा नामक संग्रह के रूप में प्रकाशित हुई। इन रचनाओं में प्रकृति ही अनेक रूप धारण कर चपल, मुखर, नूपुर बजाती हुई अपने चरण चढ़ाती रही है।"

कादम्बिनी– अप्रैल–६७

रश्मि का आना कविता पंत जी की सर्वोत्कृष्ट कविताओं में है। इसमें अनुभूति, कल्पना, सूक्ष्मदर्शिता और संगीतमय प्रवाह सभी का सुन्दर संयोग है। इसमें पंत जी की भाषा संकेतात्मक और प्रांजल है। ब्राह्म मुहूर्त का पंत जी ने बहुत ही भावमय चित्र प्रस्तुत किया है :–

शशि–किरणों से उतर–उतरकर,
भू पर काम रूप नभचर,
चूम नवल कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे मुसकाना !

ग्रन्थि

ग्रन्थि पंत जी की प्रारम्भिक कृतियों में से है जो कि सन् १९२० के जनवरी मास में लिखी गयी थी। **ग्रन्थि** पंत जी के अपने अनुभवों पर आधारित है। ऐसा प्रतीत होता है कि पंत जी ने **उच्छवास, आंसू** और **ग्रन्थि** ये तीनों कविताएं किसी विशेष प्रेरणा भार से दबकर लिखी है और इसमें आत्म जीवन संबंधी कुछ स्पर्श प्रतीत होते हैं। अर्थात् **ग्रन्थि** जीवन–कथा की पृष्ठभूमि मात्र है।

पंत जी की **ग्रन्थि** मुख्यतः विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान है। **ग्रन्थि** के कुछ पदों में गहन विषाद के दर्शन होते है। इसमें पंत जी ने दर्शन, सौन्दर्य प्रेम, स्मृति, आशा, उन्माद, आह, अश्रुवेदना आदि विरह के उपकरणों का सुन्दर वर्णन किया है। **ग्रन्थि** की रचना में पंत जी ने अंलकरण सामग्री का विशेष प्रयोग किया है। पंत जी ने अपने परिचित प्राकृतिक विधानों से अप्रस्तुत को ग्रहण किया है, अतः वह सूक्ष्म को स्थूल रूप देने में सफल हुआ है। इससे पंत जी के अंलकार प्रायः चित्रमय हो गये हैं।

ग्रन्थि में पंत जी की भाषा की चित्रण शक्ति एवं चित्रमयता के दर्शन होते है। **ग्रन्थि** एक रमणीक प्रेम काव्य है, इसमें पंत जी ने प्राकृतिक दृश्यों का प्रभूत सौन्दर्य संचय किया है जो प्रेम के भावों की उपयुक्त पृष्ठभूमि का कार्य करता है :–

प्रात सा जो दृश्य जीवन का नया
था खुला पहिले सुनहले स्पर्श से,
सांझ के मूर्छित प्रभा के पत्र पर
करूण उपसंहार, हा! उसका मिला।

पल्लव

पल्लव की रचना पंत जी ने सन् १९२८ में की थी। **पल्लव** में यौवन कालीन भावुकता प्रधान प्रणय उद्‌भूत है परन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य से समायोजित कविताएं आत्मपरक भावना की अभिव्यक्ति देती है। पंत जी ने **पल्लव** की प्रथम दो कविताएं **उच्छवास** और **आंसू** में आत्मचरित परक प्रेम विषयक रचनाएं की है। पल्लव में इनके अतिरिक्त कल्पना और भाव प्रधान कविताएं मिलती हैं। कल्पना प्रधान रचनाओं में **वीचि-विलास, विश्व-वेणु, निर्झर गान, निर्झरी, नक्षत्र, स्याही की बूंद** प्रमुख हैं। कल्पना की प्रधानता होने के कारण सुन्दर व आकर्षक रचनाएं हैं परन्तु ये रचनाएं **रमणीक नहीं है। पंत जी की भाव प्रधान कविताओं में मोह, विनय, याचना, विसर्जन, मधुकरी, मुस्कान, स्मृति और सोने का ज्ञान** प्रमुख हैं। इन कविताओं में भाव प्रारम्भ से अंत तक व्याप्त है। इनके अतिरिक्त **पल्लव** में कुछ ऐसी कविताएं भी है जिनमें कल्पना और भावना दोनों का सम्मिश्रण तथा दार्शनिक प्रवाह है। इन कविताओं में **मौन निमन्त्रण, बालापन, छाया, बादल अनंग स्वप्न** आदि प्रमुख हैं।

कनक– छाया में, जब कि सकाल,
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि–पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुंजार,
न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !

परिवर्तन

परिवर्तन पंत जी की १९२८ की कृति है इसमें पंत जी ने आवेशपूर्ण तथा अनेक रसमय कविताओं का समायोजन किया है। क्योंकि इसी समय पंत जी ऐहिक विपत्तियों की ठोकर खाकर जीवन की वास्तविकता की ओर उन्मुख हुये थे। उन्होनें विश्व में व्याप्त परिवर्तन की मार्मिक अनुभूति से प्रेरित हो परिवर्तन कविता की रचना की।[1] अतएव परिवर्तन में समस्त विश्व की करूण अनुभूति मुखर हो उठी है।

१. कवि समालोचक शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में , "उसमें परिवर्तनमय विश्व की करूण अभिव्यक्ति इतनी वेदनाशील हो उठी कि वह सहज ही सभी हृदयों को अपनी सहानुभूति के कृपासूत्र में बांध लेना चाहती है।"

डॉ. नगेन्द्र – सुमित्रनन्दन पंत, पृष्ठ संख्या ६८

परिवर्तन की दार्शनिकता पर रवीन्द्रनाथ टैगोर व विवेकानन्द के दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। परिवर्तन में भिन्न–भिन्न वर्णो के चित्र है। भिन्न भिन्न वर्णो के चित्र के माध्यम से पंत जी ने जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर से सत्य खोजने का प्रयत्न किया है।[1] परिवर्तन में कहीं श्रृंगार का अरूण राग है तो कहीं विभत्स का नीला रंग है। परिवर्तन में मनोहर और भंयकर चित्र प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। इसमें पंत जी की प्रबल भाषा शक्ति का आभास होता है। परिवर्तन कविता ही कवि की काव्य जगत में स्थापना करती है।

गुंजन

गुंजन में प्रायः १६२६–३२ तक की रचनाएं संगृहीत हैं। गुंजन की कविताओं में जीवन के प्रति एक नवीन हर्षपूर्ण दृष्टिकोण के साथ–साथ दार्शनिकता परिलक्षित होती है क्योंकि इस समय पंत जी की आत्मा कठिन रोग से मुक्त होकर जीवन की आशा से परिदीप्त हो उठी थी।[2] मनन और चिन्तन के फलस्वरूप गुंजन में अधिकतर छोटे–छोटे गीत हैं।[3]

जीवन की लहर लहर से
हंस खेल-खेल रे नाविक !
जीवन के अन्तास्तल में
नित बूड़-बूड़ रे नाविक !

भावी पत्नी के प्रति, एक तारा, अप्सरा, नौका-विहार, मानव, मधुवन, चांदनी, विहंग के प्रति आदि प्रमुख गुंजन की कविताएं हैं। पंत जी ने गुंजन में

---

१. स्वयं पंत जी के शब्दों में "पल्लव की प्रतिनिधि रचना परिवर्तन में विगतवास्तविकता के प्रति असंतोष तथा परिवर्तन के आग्रह की भावना विद्यमान है। साथ ही जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर से नित्य सत्य को खोजने का प्रयत्न भी है जिसके आधार पर नवीन वास्तविकता का निर्माण किया जा सके।"
डॉ. नगेन्द्र – सुमित्रनन्दन पंत, पृष्ठ संख्या ६८

२. गुंजन पंत जी के अपने शब्दों में, उनकी आत्मा का 'उन्मन' गुंजन है। कवि का क्षेत्र अब हृदय से हटकर आत्मा तक पहुंच गया है, इसी कारण उसमें आवेश कीन्यूनता और चिन्तन एवं मनन का प्राधान्य है।
डा० नगेन्द्र, सुमित्रनन्दन पंत – पृ. सं. ६६

३. डा. नगेन्द्र, सुमित्रनन्दन पंत –पृ.सं. १०१

कोमल, सरस तथा प्रांजल भाषा का प्रयोग किया है।[1]

मध्यकालीन रचनायें- (१६३७-४२)

इस काल में ऐसी काव्यधारा का प्रार्दुभाव हुआ जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली। समाज दो वर्गो में विभक्त हो गया था। सर्वहारा वर्ग तथा सर्वग्राही वर्ग। एक ओर भारतीय समाज में उभरता हुआ जन संकट था, तो दूसरी ओर रूस में मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर स्थापित साम्यवाद था जो वहां के विषम संकट और संघर्ष से गुजरे जन–जीवन को बल दे रहा था, जो सामन्तवाद और पूंजीवाद की विभीषिकाओं को कुचलकर सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित कर रहा था। अतः मार्क्सवादी दर्शन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा केन्द्र बन रहा था। गांधी जी के नेतृत्व में जो स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था उससे युवा–हृदय की विद्रोही भावना को अभिव्यक्ति नहीं मिल पा रही थी। अंहिसावादी सिद्धान्तों से असन्तुष्ट युवा वर्ग अधिक उग्र विचारों के थे और उग्र आचरण में विश्वास करते थे। जन–सामान्य के लिए अपार भयावह गरीबी,, अशिक्षा, असुविधा और अपमान की सृष्टि हो रही थी। द्वितीय महायुद्ध और बंगाल का अकाल देश को निगलने वाली भीषण घटनाएं थी। युद्ध के दबाव में जनता और भी आकान्त हो रही थी। जगती हुई उग्र जन चेतना, रूस में स्थापित समाजवाद तथा पश्चिम के अन्य देशों में प्रचारित कम्युनिज्म के सिद्धान्तों से उभरते हुए विश्वव्यापी प्रभाव के कारण भारत में १६३५ ई. के आसपास साम्यवादी आन्दोलन उगने लगा था। साहित्य भी उससे प्रभावित हुआ और प्रगतिवादी साहित्य का आन्दोलन आरम्भ हुआ।

इस प्रकार पंत जी के काव्य पर तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा सहित्यक परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ा। इस युग के प्रमुख कवि निराला, रामधारी सिंह दिनकर, माखन लाल चतुर्वेदी, नवीन आदि ने जहाँ कल्याण तथा राष्ट्र प्रेम संबंधी काव्य रचनाएं की वहीं उपेन्द्र नाथ "अश्क" विष्णु प्रभाकर, जगदीश चन्द्र माथुर ने सामाजिक रूढ़ियों तथा यंत्रणाओं को माध्यम बनाकर

---

१. जिस प्रकार बड़ी चुबाने से पहले उड़द की पीठी को मथकर हलका तथा कोमल कर लेना पड़ता है, उसी प्रकार कविता के स्वरूप में भावों के ढांचों को ढालने के पूर्व भाषा को भी हृदय के ताप में गलाकर कोमल, करूण, सरस, प्रांजल कर लेना पड़ता है।

डा. नगेन्द्र– सुमित्रनन्दन पंत– पृ. सं. १०६

उपन्यास रचना की। भौतिकतावादी, मानवतावादी तथा गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित प्रेमचन्द्र ने कर्मभूमि, प्रेमाश्रम रंगभूमि की रचना की। इस प्रकार पंत जी का काव्य तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित था। इस काल में पंत जी ने ग्राम्या, युगान्त तथा युगवाणी की रचना की।

युगान्त

इस संग्रह की अधिकांश रचनायें १६३४–३५ की हैं। युगान्त की कवितायें चिन्तन–प्रधान हैं। तथा इन सभी कविताओं में दार्शनिक गाम्भीर्य परिलक्षित होता है। युगान्त की समस्त कविताओं में एक सूत्र गुम्फित दिखाई देता है अर्थात् एक ऐसी अन्तर्धारा मिलती है जो कि पंत जी के तात्कालिक विचारों एवं भावनाओं से संबंध रखती है। युगान्त की अधिकांश कविताएं पंत जी की तीखी भाव चेतना के परिवर्तन का संकेत देती है। यह परिवर्तन वस्तुवादी चेतना के प्रति अधिक आग्रहशील दिखता है। इसमें उद्दाम आशा और क्रान्ति की तीव्र इच्छा के दर्शन एक साथ होते हैं। लोकमंगल की सनातन इच्छा ने ही पंत जी को जगत के जीर्ण-उद्यान में मधु प्रभाव लाने की भावना उत्पन्न की। युगान्त में पतझर, बापू के प्रति, ताज, गा-कोकिल, छाया, शुक्र, कौन, तितली, अनिल कुसुम तथा मानव आदि प्रमुख कविताएं हैं। इनके माध्यम से कवि ने असहयोग आन्दोलन, अहिंसा, दार्शनिक तथा नवनिर्माण की भावना का विकास किया है।

इन पंक्तियों में कवि ने बापू के सिद्धान्तों और कृत्यों का काव्यमय सुन्दर वर्णन भी किया है :–

सुख भोग खोजने आते सब,
आए तुम करने सत्य खोज ?
जग की मिट्टी के पुतले जन
तुम आत्मा के मन के मनोज।

युगवाणी

पंत जी कृत 'युगवाणी' एक प्रकार से भारतीय साम्यवाद की वाणी है। अर्थात् सामन्तवाद और पूंजीवाद की विभीषिकाओं को कुचलकर सर्वहारा के अधिनायकत्व पर युगवाणी में बल दिया गया। युगवाणी में प्रधानतः इसी साम्यवाद के सिद्धान्तों का पद्यात्मक निबंधन किया गया है तथा भारतीय साम्यवाद को युगवाणी में दो रूपों में ग्रहण किया गया है– एक ओर उसके

मुख्य–मुख्य सभी सिद्धान्तों का विवेचन है, दूसरी ओर साम्यवाद के दृष्टिकोण को ग्रहण किया गया है।

देश ने प्राचीन संस्कृति के बंधन में जकड़कर अनेक यातनाएं सहीं। प्राचीन रूढ़ियों से निर्मुक्त होकर नवीन मांसल आदर्शों का निर्माण करना ही इसका उद्देश्य है। युगवाणी में पंत जी ने भावों के अनुकूल नपे–तुले शब्दों का प्रयोग किया है। इसके साथ ही पंत जी की गम्भीर-संयत प्रकृति के साथ आध ुनिक अंग्रेजी कविता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। पुण्य प्रसू, दो लड़के, झंझा में नीम, अनामिका, कवि के प्रति, ओस के प्रति, चींटी आदि प्रमुख कविताएं हैं।

जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरवमय,
मानव का साम्राज्य बने, मानव हित निश्चय !
जीवन की क्षण-धूलि रह सके जहां सुरक्षित
रक्त-मांस की इच्छाएं जन की हो पूरित !
मनुज प्रेम से जहां रह सके, मानव ईश्वर !
और कौन-सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर ?

'दो लड़के'

ग्राम्या

'ग्राम्या' पंत जी की १६४० की कृति है। ग्राम्या में कविवर पंत जी ने ग्राम के समस्त रूप को, वहां के नर नारी को, नित्य प्रति के जीवन को, उसकी संस्कृति को व्यष्टि रूप में नहीं समष्टि रूप में देखा है। ग्राम, ग्राम–कवि, ग्राम दृष्टि, ग्राम–चित्र आदि कविताओं में ग्राम का अखण्ड चित्र अंकित किया गया है। ग्राम युवती, ग्राम नारी, कठपुतले, गांव के लड़के, वह बुड्ढा, ग्राम–वधू, वे आंखें, भारत–माता, वाणी, मजदूरनी आदि प्रमुख कविताएं इसी संकलन की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं :–

है मांस–पेशियों में उसके दृढ़ कोमलता,
संयोग अवयवों में अश्लथ उसके उरोज ।
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव–कल्पित मनोज
रूढ़ि–रीतियों के प्रचलित पथ, जाति–पाति के बंधन,
नियम कर्म हैं नियत कर्म–फल जीवन चक्र सनातन।

आध्यात्मिक या अरविन्दवादी युग

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् प्रकृति प्रेम के कवि पंत जी को तत्कालीन परिस्थितियों ने विशेष रूप से प्रभावित किया। आर्थिक दृष्टि से पंत जी साम्यवाद पर आधारित मार्क्सवादी विचार धारा से प्रभावित हुए जो कि वर्ग संघर्ष से पीड़ित जन–समुदाय को शक्ति प्रदान कर रहा था। पंत जी राजनैतिक दृष्टि से गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित हुए जो कि मानववादी चेतना से ओत–प्रोत थी। ऐसी परिस्थितियों में पंत जी अरविन्द के सम्पर्क में आये। अरविन्द स्वयं विद्रोही आन्दोलनकारी थे तथा आध्यात्मवादी बने थे। पंत जी ने अरविन्द से प्रभावित होकर पांडिचेरी की यात्रा की तथा आध यात्मवादी बन गये। संसार के कल्याण के लिए मार्क्सवादी भौतिक उन्नति के स्थान पर सांस्कृतिक संचरण के आन्दोलन को अनिवार्य समझने लगे। पंत जी अरविन्द दर्शन द्वारा ही समस्त समस्याओं का समाधान करना चाहते हैं। पंत जी की आस्था भौतिकवाद से हटकर अध्यात्मवाद में अपना सर्वस्व खोज रही है। इसलिए कवि का दर्शन मानव–जीवन के आत्मिक विकास के लिए व्यग्र है–

"मानव को आदर्श चाहिये संस्कृति आत्मोकर्ष चाहिए।
बाह्य विधान उसे है बन्धन, यदि न साम्य अन्तरमय।"

कवि अरविन्द दर्शन की सहायता से भौतिकवादी मानवता में एक नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहता है।

पंत जी का काव्य नारी, प्रकृति, मानवतावाद तथा अन्तः – चेतनावाद से प्रभावित है। उसमें अरविन्द दर्शन की प्रमुख भावना स्पष्ट लक्षित होती है। स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, उत्तरा, अमित, वाणी, रश्मिबन्ध, चिदम्बरा, लोकायतन आदि इसी युग की प्रमुख कृतियां हैं।

स्वर्ण-धूलि और स्वर्ण-किरण

स्वर्ण-धूलि, और स्वर्ण-किरण में कई प्रकार की कविताएं हैं। अनेक कविताओं का धरातल सामाजिक है, कुछ कविताएं आत्मगत हैं, जो परिष्कृत, मधुर रस अभिसिक्त है। कतिपय कविताएं प्रकृति संबंधी भी है, परन्तु अधिकांश कविताएं आध्यात्मिक हैं।

स्वर्ण-धूलि में मर्मकथा, प्रणयकुंज, शरद-चांदनी, मर्म-व्यथा, स्वप्न-बन्धन, स्वप्न -देही प्राणाकांक्षा, रस–स्रवण आदि प्रमुख कविताएं हैं। ये सभी कविताएं शुद्ध गीति काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं और व्यंजना की दृष्टि से इन संग्रहों

की मधुरतम कृतियां हैं। ये कविताएं परिष्कृत आत्मानुभूति की सहज उद्गीतियां भी हैं।

अध्याय द्वितीय

गीतिनाट्य : नई काव्य विधा

- रूपक, गीतिनाट्य, भाव – नाट्य, रेडियो रूपक
- गीतिनाट्य का क्रमिक विकास
- गीतिनाट्य – परिभाषा और तत्व
- पंत जी के गीतिनाट्य – स्वरूप और संरचना

अध्याय द्वितीय

भारतीय प्राचीन वाङ्मय में नाटकों को काव्य में सर्वाधिक रम्य माना गया है :–

"काव्येषु नाटकम् रम्यम्" [१]

नाटक को रमणीयता का उत्कृष्ट साधन मानने का प्रधान कारण यही है कि दृश्य–काव्य, श्रव्य–काव्य की अपेक्षा अधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली होता है। दृश्य काव्य को ग्राह्य बनाने के लिए दो ऐन्द्रिक माध्यम हैः नेत्र और श्रुति। इन दोनों माध्यमों के द्वारा काव्य का आस्वादन किया जाता है। ब्रह्मा से ऐसे ही खेल की याचना की गयी थी जिसमें दृश्य और श्रव्य दोनों के गुण हों।

"क्रीडनीयकमिच्छामि दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।" [२]

नाट्य में यद्यपि मुख्यतः चाक्षुष बिम्ब योजना की प्रमुखता रहती है, फिर भी उसमें श्रुत और मानसिक चित्र स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। नाटक में नाट्य की प्रधानता होने के कारण अभिनय पर विशेष बल दिया जाता है। आंशिक अभिनय द्वारा वे चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं जिन्हें वाणी रूप नहीं दे सकती। वाचिक अभिनय द्वारा अनेक प्रकार की मानसिक दशाओं और आन्तरिक स्थितियों का सम्मूर्तन किया जाता है। आहार्य के द्वारा एक विशेष परिवेश का निर्माण किया जाता है जो सम्पूर्ण बिम्ब योजना को सप्राण बना देता है।

श्रव्य काव्य की अपेक्षा नाटक का प्रभाव क्षेत्र भी विस्तृत होता है। श्रव्य काव्य में सूक्ष्म अनुभूतियों को चित्र विधायनी कल्पना की सहायता से जिस प्रकार सम्मूर्तित किया जाता है, वह मानसिक ही होता है। दृश्य काव्य या नाटक में कल्पना पर उतना जोर नहीं दिया जाता है जितना कि समस्त काव्य चेतना के चाक्षुष मानसिक प्रत्यक्षीकरण या सम्मूर्तन पर। श्रव्य काव्य की अपेक्षा रंगमंच पर अवतरित की गयी जीवन की अनुभूतियां वास्तविकता के अधिक निकट होती हैं।

नाटक की रमणीयता एवं लोकप्रियता के कतिपय कारण और भी हैं। नाटक के विषय में कहा गया है कि इसमें सभी कलाओं का संयोग हैः

---

१. भरत मुनि नाट्य शास्त्र।

२. भरत मुनि नाट्य शास्त्र (१–११)।

" सर्वकला संयोगान्नाट्यस्य लोकप्रियत्वं सिद्धम्।" [१]

नाटक के सुव्यवस्थित रूप में कला के सभी विशिष्ट अंग (गीत, वाद्य, नृत्य, आलेख, काव्य, वेश, विन्यास, अभिनय एवं दृश्य योजना आदि) अपने उचित परिमाण में उपस्थित किये जाते हैं। नाटक के द्वारा सभी का मनोंरजन होता है। भरत मुनि ने ब्रह्मा के मुख से **नाट्य-शास्त्र** के प्रारम्भ में कहलवाया है :

" विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।" [२]

अर्थात् यह नाटक संसार में विनोद उत्पन्न करने वाला होगा।

हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास

हिन्दी नाटक के विकास क्रम का प्रारम्भिक चरण संस्कृत नाट्य परम्परा से भिन्न नहीं रहा। भारतेन्दु युग तो मूलतः संस्कृत नाट्य परम्परा का ही स्वरूप है, जबकि प्रसाद में उनके स्वतः प्रयोगों के अतिरिक्त भारतीय राष्ट्रीय चेतना भी मिलती है। प्रसादोत्तर नाटक निश्चित रूप से पाश्चात्य प्रयोगों से प्रभावित थे परन्तु उन पर आंशिक रूप से संस्कृत नाट्य परम्परा का प्रभाव देखा जा सकता है ।

संस्कृत में नाटकों की उत्पत्ति के संदर्भ में दैवी उत्पत्ति का तर्क दिया जाता है तथा उसे पंचम वेद कहा गया है –

"न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्यात्सृजनापरं वेदं पंचम सार्ववर्णिकम्।।"

नाटकीय प्रयोग की दृष्टि से ऋग्वेद में ही ऐसे संवाद मिल जाते हैं जो नाटकों की प्रारम्भिक स्थिति का द्योतन करते हैं। इस दैवी सिद्धान्त के समानान्तर कतिपय विद्वानों ने नाटकों की लौकिक उत्पत्ति ही मानी है। पिशेल ने पुत्तलिका एवं छाया नाटक को नाटकों का आदिम रूप कहा है।

संस्कृत में नाटकों का साहित्यिक विकास ईसा की प्रथम शताब्दी से मिलता है तथा अश्वघोष के नाटक ही प्राचीनता की दृष्टि से उद्भवकाल में आते हैं जिसका उत्कृष्ट रूप परवर्ती रचनाकारों विशेषतः कालिदास में मिलता

---

१. कृष्ण सिंहल : "हिन्दी गीतिनाट्य" (पृ०४) में उद्धृत।

२. भरत मुनि नाट्य शास्त्र १/१२४

है। संस्कृत नाटकों की यह परम्परा १३ वीं शती तक विद्यमान रही जिसका पर्याप्त प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा।

संस्कृत नाटकों के अतिरिक्त डा० दशरथ ओझा एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोकनाट्यों को भी हिन्दी नाटकों का प्रेरणा स्त्रोत कहा है क्योंकि रास और नौटंकी के अतिरिक्त रासलीला और रामलीला जैसी धार्मिक नाट्य विधायें भी हिन्दी के मध्यकाल से ही प्रचलित हैं और लोक पर इनका प्रभाव भी है।

भारतेन्दु पूर्व हिन्दी नाटक

हिन्दी में 'नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम व्यवसायी नाटक कम्पनियों ने प्रयत्न किया। ये पारसी नाटक मण्डलियां १६ वीं शताब्दी से ही गतिशील रहीं। सर्वप्रथम कलकत्ता में **"हनेहाऊस"** और **'कलकत्ता थियेटर'** की नींव पड़ी और इसके बाद लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह ने **'किस्सा राधा कन्हैया'** को स्वयं लिखकर अभिनीत किया। इसी समय पारसी सेठ पेस्टन फ्रेम ने "ऑरिजनल थिएट्रिकल कम्पनी" तथा विनायक प्रसाद **''तालिब''** ने 'विक्टोरिया कम्पनी' की स्थापना दिल्ली में की । इसके पश्चात् बम्बई में ही **"अल्फ्रेड थिएट्रिकल कम्पनी''** की नींव पड़ी। जिसके नाटककार प्रसिद्ध लेखक नारायण प्रसाद **''बेताब''** थे। **''बेताब''** जी के अतिरिक्त इस काल में आगाहश्र और राधेश्याम कथावाचक दो प्रसिद्ध नाटककार हुए जिन्होंने रंगमंचीय नाटकों का प्रणयन किया। पारसी रंगमंच में शेरो शायरी का व्यापक प्रभाव था। किन्तु **''बेताब''** और राधेश्याम कथावाचक के आने पर भाषा संस्कार हुआ कथानक भक्ति और समाज की ओर उन्मुख हुआ।

साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी नाटकों का विकास उत्तर रीतिकाल में ही लक्षित होता है किन्तु इस युग में गद्य भाषा का विकास न होने के कारण पद्यमयता ही अधिक थी। ये सभी नाटक ब्रजभाषा में लिखे गये थे। इस काल के प्रमुख नाटकों में प्राणचन्द चौहान कृत रामायण महानाटक (सं. १६६७) रघुराजा नागर कृत सभासार (१७७५) लक्षिराम कृत करूणाभरण (१७७२) उल्लेखनीय हैं। किन्तु ये सभी नाटक काव्यमय और छन्दोबद्ध हैं। इसके पश्चात् ब्रजभाषा गद्य और पद्य में लिखे गये रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह कृत आनन्द रघुनन्दन तथा भारतेन्दु के पिता गोपाल चन्द कृत नहुष (१८४१) को हिन्दी के प्रारम्भिक नाटकों में माना जाता है।

भारतेन्दु युग

हिन्दी नाटकों को एक सशक्त विधा के रूप में प्रस्तुत करने तथा उसकी साहित्यिक और सामाजिक उपादेयता सिद्ध करने में भारतेन्दु और उनके युग के अन्य रचनाकारों की प्रमुख भूमिका रही है। भारतेन्दु ने न केवल अनेक मौलिक नाटकों का प्रणयन किया अपितु संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के अनेक उत्कृष्ट नाटकों का अनुवाद भी हिन्दी में प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु के नाटकों की भाषा गद्य में खड़ी बोली और पद्य में ब्रज है। भारतेन्दु राष्ट्रीय चेतना और भारतीय संस्कृति के भव्य एवं उदात्त स्वरूप के उद्‌घाटन के लिए नाटकों को प्रमुख मानते थे। भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में सामाजिक विषमता, भ्रष्टाचार एवं युग की विभीषिकाओं का चित्रण हुआ है। उनके प्रमुख नाटकों में 'वैदिकी' हिंसा हिंसा न भवति, सत्य हरिश्चन्द्र , प्रेमयोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, **भारत जननी, नीलदेवी, अंधेरनगरी और सतीप्रताप** है। इस युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और व्यंग्यात्मक नाटक लिखे गये। भारतेन्दु युग के प्रमुख नाटककारों में लाला श्रीनिवास, किशोरीलाल गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, शालिग्राम, काशीराम खत्री, रोमांटिक और ऐतिहासिक नाटककार हैं। प्रमुख प्रहसनकारों में राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्णदास, अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी का नाम लिया जा सकता है। सामाजिक नाटकों में बालकृष्ण भट्‌ट कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम', राधाकृष्णदास कृत 'दुखिनी बाला', गोपालराम गहमरी कृत 'विद्या विनोद' प्रमुख हैं।

प्रसाद युग

प्रसाद के नाटकों की प्रमुख विशेषता सांस्कृतिक चेतना है। प्रसाद ने प्रख्यात ऐतिहासिक इतिवृत्तों के आधार पर अतीत के समुज्जवल पक्ष का पुनरावलोकन कराया है। प्रसाद के नाटकों में सज्जन, कल्याणी–परिणय, करुणालय, प्रायश्चित, लघु रूपक हैं। राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी प्रमुख नाटक हैं। प्रसाद के नाटकों पर शिल्प की दृष्टि से भी अनेक प्रभाव पड़े हैं। प्रसाद पारसी मण्डलियों के अतिरिक्त पाश्चात्य और बंगला रंगमंच से भी प्रभावित थे। प्रसाद के अतिरिक्त अन्य नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी और लक्ष्मीनारायण मिश्र प्रमुख

हैं। प्रेमी जी मुख्यतः ऐतिहासिक नाटककार थे। इन्होंने मध्यकालीन इतिहास को आधार बनाकर साम्प्रदायिक कटुता को समाप्त करने का प्रयत्न किया। इनके प्रमुख नाटकों में स्वर्ण विहान, रक्षा बन्धन, पाताल विजय, प्रतिशोध, शिवसाधना हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र वस्तुतः समस्यामूलक नाटककार रहे। इनके नाटकों पर पश्चिम का प्रभाव अधिक रहा है। इनके प्रमुख नाटक, सन्यासी, राक्षस का मंदिर, मुक्ति का रहस्य, राजयोग, सिन्दूर की होली और आधीरात हैं।

प्रसादोत्तर युग

प्रसाद जी के नाटक पांच अंक के थे परन्तु संवाद रंगमच की दृष्टि से बड़े होते थे। इसलिए उनके अभिनय में विशेष काट–छांट की आवश्यकता रहती है। नवीन नाटकों की प्रवृत्ति छोटे नाटकों की ओर हो चली है। आधुनिक नाटकों में तीन अंक की प्रवृत्ति आवश्यक रूप से तो नहीं किन्तु पर्याप्त मात्रा में प्रचलित हो गयी। इसके अतिरिक्त इन नाटकों में भूत की अपेक्षा वर्तमान को अधिक महत्व दिया गया। इस युग में बेचन शर्मा "उग्र" (गंगा का बेटा), चतुरसेन शास्त्री (गांधारी) रांगेय राघव (स्वर्ण भूमि का यात्री) लक्ष्मीनारायण मिश्र (चक्रव्यूह) पौराणिक नाटककार है। ऐतिहासिक नाटकों में उदयशंकर भट्ट (शक विजय), वृन्दावन लाल वर्मा (पूर्व की ओर) हरिकृष्ण प्रेमी (रक्त रेखा) प्रमुख हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों में जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश, नरेश मेहता, विनोद रस्तोगी व डॉ. शंकर राय प्रमुख हैं। कन्दी, खजुराहों के शिल्पी, बिन बाती के दीप प्रमुख नाटक हैं। मोहन राकेश का लहरों का राजहंस, आधे अधूरे, सुरेन्द्र वर्मा का द्रोपदी, आठवां सर्ग, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण, रमेश बक्षी का 'देवयानी' का कहना है', तीसरा हाथी, मुद्रा राक्षस, तिलचट्टा, योर्स फेथफुली आदि नाटक हैं। नाटककारों ने रचना की ओर इनमें वैवाहिक बन्धनों, यौन समस्याओं स्त्री पुरुष सम्बन्धों के प्रति सर्वथा नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

मैथिलीशरण गुप्त का अनघ, भगवती चरण वर्मा का तारा, उदयशंकर भट्ट का तुलसीदास, मत्स्यगंधा, गंगावतरण, उर्वशी मानभंग आदि नाटकों के साथ पंत जी के शिल्पी, रजत शिखर, सौवर्ण (१२ नाट्य रूपक) गीति नाट्य की श्रृंखला में प्रसिद्ध हैं।

गीतिनाट्य : नई काव्य विधा

"गीति" काव्य की प्राचीनतम विधा है। इसका उन्मेष मानस की सुकुमार कल्पना की सूक्ष्माभिव्यक्ति के लिए हुआ है। सौन्दर्य की संश्लिष्ट संकल्पना एवं भावप्रवणता की उन्मुक्त प्रवृत्ति ने प्रकृति और पुरूष दोनों को एक स्वर, एक लय एवं एक गति में बांध दिया है जिसे गीत कहा जाता है। संस्कृत के महाकवि कालिदास ने गीत की महत्ता का प्रतिपालन करते हुए कहा **"विचिन्त्यगीतक्षमर्थजातम्।"** इससे चरित गायन में गीत की महत्ता सिद्ध होती है। गीतों के सहज स्वरूप का विवेचन नये गीतिकाव्य समीक्षकों ने किया है। नीरज के अनुसार काव्य की एक विधा स्वर संकेत से व्यक्त होने वाला मन का एकान्त भावाकुल उच्छ्वास है। हिन्दी के प्रख्यात कवि डा. हरिवंशराय बच्चन का मत है–"गीत, काव्य की महत्वपूर्ण विधा है, जिसका भावलोक विशिष्ट होकर भी सीमित है।''

हिन्दी में गीतिनाट्य के लिए पद्य नाटक, पद्यरूपक, काव्य नाटक, काव्य रूपक, काव्य एकांकी आदि के नाम भी प्रचलित हैं, किन्तु इन नामों से बहुत सी भ्रांन्तियां उत्पन्न होती हैं। गीति शब्द की लयात्मकता को देखते हुए यह नाम (गीतिनाट्य) सर्वाधिक सार्थक प्रतीत होता है।

गीतिनाट्य का गीति तत्व नाटक का अनिवार्य अंग होता है जो कि नाटक को अपेक्षित ऊंचाई दे पाता है। यह बाह्य रूप से जोड़ा हुआ कोई उपकरण नहीं है, बल्कि उसके भीतर ही नाटक की सृजन शक्ति है। गीतिनाट्य का "टैक्स्चर'' गद्य नाटक के टेक्स्चर से भिन्न होता है।

काव्यगत लय के कारण गीतिनाट्य पाठक की संवेदनाओं और संवेगों के गहनतर स्तरों को उद्घाटित करने में अधिक समर्थ होता है। काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व बिम्ब योजना तथा आधुनिक जीवन की पेंचीदगियों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक विधान भी आवश्यक है। इनके कारण कभी कभी धुंधली आध्यात्मिकता सामने आती है। परन्तु फिर इसके माध्यम से कवि जीवन के यथार्थ को अधिक निकट से पकड़ पाता है और उसे अधिक प्रभावशाली तथा मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करता है। गीतिनाट्य अन्योपदेशिक नाटकों की उपदेशात्मक गन्ध से रहित होता है। अन्योपदेशिक नाटक बुद्धि के स्तर पर ही बोधगम्य होता है, अनुभूत्यात्मक स्तर से प्रायः वह असम्पृक्त रह जाता है। अतः गीतिनाट्य द्वारा विभिन्न स्तरों पर अर्थ की जो व्यंजना होती है, वह उसकी अपनी होती है और अन्योपदेशिक तथा प्रतीकवादी नाटकों द्वारा उद्घाटित अर्थ के विभिन्न स्तरों से भिन्न होती है।

गीतिनाट्य द्वारा अभिव्यंजित अर्थ के एकाधिक स्तरों के मुख्य आधार शब्द

ही हैं। फिर भी गीतिनाट्य में टोन से भी बहुत कुछ काम लिया जाता है। भावों के उतार–चढ़ाव और जटिलताओं को व्यक्त करने के लिए लय का महत्वपूर्ण योग होता है। लय के आरोह–अवरोह और विषम–सम से विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति सहज सम्भव है। भावों को सान्द्रता (इण्टेन्सिटी) की ऊँचाई और गहराई में अंकित करने के लिए टोन का माध्यम ग्रहण करना पड़ता है। गीति काव्य अन्तः वृत्ति निरूपक वह निरपेक्ष रचना है जिसमें शब्द और लय का सामंजस्य, माधुर्य, प्रवाहात्मकता, कोमल भावनाओं का उद्रेक तथा प्रभाव ऐक्य के साथ साथ कवि का अन्तर्दर्शन भी शब्द चित्रों में संजोया जाता है।[1] इसके अनुसार गीति काव्य में अन्तःवृत्ति, निरपेक्ष भाव, रस, संगीत,भावना और चित्रात्मकता जैसे गुणों की अभिव्यक्ति होती है। गीतिकाव्य भावाभिव्यक्ति का माध्यम है। अतः इससे साधारणीकरण अथवा रस निष्पत्ति सम्भव नहीं है, तथापि भाव प्रवेग के प्रभाव से आनन्द स्थिति बनी रहना सम्भव है।

गीतिनाट्य एक ओर गीति है तो दूसरी ओर नाट्य भी। उसे नाट्यात्मक होना अनिवार्य है। गीतिनाट्य के काव्य सौन्दर्य को नाट्य के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए। अतुकान्त कविता के माध्यम से इस सम्पूर्णता की उपलब्धि सम्भव नहीं है। इसीलिए ईलियट ने इसके लिए मुक्त वृत्त को अपनाया।

भाषा, देश, अवसर, वर्ण्य विषय और विधान, अनेक स्वरूप और प्रकारों के आधार पर गीतिकाव्य के अनेक भेदोपभेद किये जा सकते हैं। किन्तु इनकी संख्या इतनी अधिक हो जायेगी कि इनके लिए एक उपयुक्त वैज्ञानिक वर्गीकरण खोजना सम्भव नहीं है। डा० त्रिगुणायत ने विषय वस्तु के आधार पर गीति काव्य के ११ भेद किये हैं–

१. वीर गीत
२. करूण गीत
३. व्यंग्य गीत
४. सामाजिक गीत
५. उपालम्भ गीत
६. गीतिनाट्य
७. रूपक गीत
८. विचारात्मक गीत
९. सम्बोधित गीत

---

१. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त–डा० गोविन्द त्रिगुणायत– पृ० ३०

१०. चतुष्पदी गीत
११. अन्य गीत

उपर्युक्त क्रम में गीतिनाट्य ६ टवें स्थान पर निर्दिष्ट है। यह नाटक गीति काव्य और नाटक का मिश्रित रूप है। गीतिनाट्य साहित्य की एक प्रतिष्ठित विधा है जिसका प्रादुर्भाव हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसाद के करूणालय (१६१२) से माना जाता है और जिसकी परिनिष्ठित उपलब्धि रामधारी सिंह दिनकर की उर्वशी (१६६१) है। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ से ही गीतिनाट्यों, भावनाट्यों और काव्य नाटकों की रचना हो रही है।

गीतिनाट्य और अन्य विधायें

कहानी, उपन्यासादि के लिये मानसिक मंच पर कल्पना प्रसूत घटनायें संघटित होती है, नाटक में वे ही प्रत्यक्ष कराई जाती है। गीतिनाट्य में गीति तत्व से कल्पनाजन्य बिम्बात्मक सौन्दर्य और नाद की सृष्टि होती है तथा नाटक तत्व के सन्निवेश से अभिनय,नाटकीय कौशल और वेशभूषा सज्जा आदि से वातावरण का निर्माण। इन्हीं से उत्पन्न प्रभावोन्विति दर्शक के मनोवेगों को उद्दीप्त कर भावात्मक तादात्म्य उपस्थित करती है। इस प्रकार गीति नाट्यों से भावनात्मक अभिनय और गीति सम्वादों से उत्पन्न नाद—सौन्दर्य कोमल वृत्तियों को उत्तेजित कर साधारणीकरण से रस की ओर प्रेरित करता है।

गीतिनाट्य और गद्य नाटकों में भेद करना आवश्यक है। गद्य नाटक यथार्थ का पूर्ण चित्र उपस्थित करता है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, जातीय, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक तथा अन्य समस्यायें प्रस्तुत की जाती हैं। गद्य नाटक जीवन के यथार्थ के अति निकट है। वर्तमान हिन्दी नाटककारों पर यूरोपीय नाटककारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। पश्चिमी देशों के नाटककारों विशेषरूप से इब्सन, बर्नार्ड शॉ, गाल्सवर्दी आदि के यथार्थवादी दृष्टिकोण ने हिन्दी नाटककारों को प्रभावित किया है जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दी में समस्या नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ और ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों के साथ—साथ इन नाटकों का भी समुचित विकास होता रहा है।

रूपक

जिस काव्य का अभिनय या मंचन होता है, उसे दृश्य काव्य का

अभिधान प्रदान किया जाता है। रूपक इस दृश्य काव्य का प्रमुख रूप है। इसका संबंध नट, अनुकर्ता या अभिनेता से होता है। मानव जीवन की विविधावस्थाओं की कायिक, वाचिक, मानसिक तथा परिधानात्मक अनुकृति को नाटक या रूपक कहा जाता है। नाटक की सर्जना कथानक, पात्र–चित्रण, सम्वाद, उद्देश्य, शीर्षक, वातावरण, शैली तथा अभिनयादि तत्वों के योग से होती है। रूपक का तात्पर्य उस कथा से है जो किन्हीं सिद्धान्त विशेष का माध्यम बन कर हमारे सम्मुख आती है। रूपक के अमूर्त सिद्धान्तों में और मूर्त कथावस्तु में समानान्तर चलने वाली एक साम्य भावना होना अनिवार्य है। रूपक के दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं, एक में तो मनुष्य की अन्तर्वृत्तियां अथवा गुण–दोष सीधे–सादे मूर्त रूप धारण कर पात्र रूप में हमारे सम्मुख आते हैं और दूसरे पात्र में साधारण स्त्री–पुरूष होते हैं, लेकिन उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं होता, वे भावनाओं के प्रतीक मात्र होते हैं।

रूपक अपने प्रकृत रूप में अत्यन्त प्राचीन सृष्टि है। धर्म की विवेचना का यह सबसे सीधा और सरल साधन है। स्वदेश–विदेश के सभी धर्म–ग्रन्थों में रूपक भरे पड़े हैं। उपनिषद की तो व्याख्या शैली ही रूपक के आश्रित है। 'महाभारत' छोटे–छोटे साहित्यिक रूपकों का भंडार है। संस्कृत काल में भी अनेक रूपक लिखे गये जिनमें प्रबोध चन्द्रोदय सबसे अधिक प्रसिद्ध है। योरोप में "क्रिश्चियन पैरेबिल्स" (ईसाई धर्म की गाथाएं) रूपक के आदिम उदाहरण हैं। प्रसाद की कामना, छलना, नवरस, पंत जी की ज्योत्स्ना तथा देवमाया, प्रपंच आदि प्रमुख नाट्य रूपक है जो कि हिन्दी के नाट्य साहित्य में अपना महत्व रखते हैं।

भाव नाट्य

गीतिनाट्य व भावनाट्य दोनों की आत्मा एक ही है, अर्थात् ये दोनों स्वरूप ही गीतिप्राण हैं। भावनाट्य में घटना की मांसलता नहीं है, भावना की सरलता है। परन्तु माध्यम भिन्न है। गीतिनाट्य सर्वथा कविताबद्ध होता है, भावनाट्यों का माध्यम गद्य होता है। भावनाट्य में हमारी कल्पना, बहिर्जगत के उपादानों से उत्पन्न अनुभूति भावनाओं से ग्राह्य होकर, कला में अभिव्यक्त होती है। यह भाव जगत कला और अनुभूति का संगम है। भाव जगत की अभिव्यक्ति में जिन उपादानों का हम प्रयोग करते हैं वे सूक्ष्म होते हैं। संगीत का माधुर्य, गीत की लय और शब्दों का अंलकरण मनोभावाभिव्यक्ति को गतिशील बनाते

हैं। भावजगत का कार्य व्यापार बहिर्जगत के वस्तुलोक से उत्तेजित मनोवेगों से नितान्त भिन्न होते हुए भी कलाओं में उससे संयुक्त हो जाता है। इसीलिए बहिर्जगत से संबंधित विश्लेषणात्मक विवरण, घात–प्रतिघात, संघर्ष, घटनायें सब गद्य नाटक में उपयोगी हैं, किन्तु काव्य नाटक में विशेषकर गीतिनाट्य में भावजगत की प्रधानता है जिसका सीधा संबंध अन्तर्मुखी है,मनोभावों, भावनाओं, प्ररेणाओं और अन्तःसंघर्ष से ही वह उद्भूत है और उसी का वाहक भी है। मनोवेगों के तीव्र भावोद्वेलन में वाणी अंलकृत रूप में अभिव्यक्त होने लगती है।

इस प्रकार के नाटक संस्कृत–प्राकृत में प्रचुर संख्या में मिलते है–विक्रमोर्वशीय, मालवकाग्निमित्र, कर्पूरमंज्जरी आदि नाटक गीति तत्व की प्रधानता के कारण भावनाट्य ही तो हैं। पं० गोविन्दवल्लभ पंत के दो नाटक वरमाला और अन्तःपुर का छिद्र, पं० उदयशंकर भट्ट का अम्बा, प्रो० मुरारीशरण मांगलिक का मीरा आदि प्रमुख भावनाट्य हैं।

रेडियो नाटक

रेडियो नाटक आधुनिक युग की ऐसी वैज्ञानिक देन है जो श्रोता की कल्पना को उद्भूत कर नाटकीय मंच की मानसिक अवधारणा कर आनन्द प्रदान करती है। संस्कृत आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में अनुकृति मूलक काव्य को ही नाटक कहा गया है। इनमें व्यक्तियों के कार्यो, उनकी स्थितियों और मनोभावों का सजीव पात्रों द्वारा अनुकरण का आधार वाणी, वस्त्र और वेशभूषा है। संस्कृत नाट्य शास्त्रियों ने जिस साहित्य रूप को कभी "दृश्य" कहा था, आज रेडियो नाटक के रूप में वही "श्रव्य" बन गया है।

रेडियो नाटक को एक सीमित अवधि में सारे कथानक को इस तरह फैलाना और समेटना पड़ता है कि उसका प्रवाह संपूर्ण अवधि में बना रहे। रेडियो नाटक में स्थान, समय (काल) और वातावरण का बंधन नहीं है, बल्कि एक व्यापक कैनवास पर फैलाये हुए कथानक को समेटकर श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। रेडियो नाटक में मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रभावी ढंग से किया जा सकता है तथा इससे गतिशील दृश्यों को भी प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे–नदी का बहना, हवाई जहाज का उड़ना, रेलगाड़ी का चलना, आदमी का दौड़ना आदि। रंगमंच की अपेक्षा रेडियो में मुश्किल दृश्य भी आसानी से "मंचित" किये जा सकते हैं। एक स्थान पर स्वागत कथन रेडियो पर अधिक

प्रभावी हैं तो दूसरे स्थान पर मनोभावों को, अन्तर्द्वन्द्व को, संगीत और ध्वनि प्रभाव की सहायता से संवादों के बिना ही अधिक शक्तिशाली रूप दिया जा सकता है।

रेडियो नाटक के विषय :

रेडियो रूपक का क्षेत्र व्यापक है। विषय की दृष्टि से रेडियो रूपक की व्यापकता स्वतः सिद्ध है। विविध विषयों के कारण रेड़ियो रूपक को मुख्यतः निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :–

१. सामाजिक
२. ऐतिहासिक
३. वैज्ञानिक
४. मनोवैज्ञानिक
५. अन्य विषय जैसे– रहस्य, रोमांचकारी रूपक।

रेडियो रूपक में उदयशंकर भट्ट विरचित मेघदूत, विक्रिमोर्वशी, शकुन्तला तथा राधा, आचार्य चतुरसेन का सीताराम, हरिश्चन्द्र, श्री भरत व राखी तथा श्री विष्णु प्रभाकर के उपचेतना का छल–मुरब्बी, सरकारी नौकरी आदि प्रमुख है। पंत जी के शिल्पी, रजत शिखर और सौवर्ण आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से। प्रसारित किए जा चुके हैं।

रेडियो नाटक के तत्व

रेडियो रूपक के मुख्य तीन तत्व हैं जो इस प्रकार हैं :–

१ कथानक
२ पात्र अथवा चरित्र–चित्रण
३ ध्वनि

१. कथानक

रेडियो नाटक का सार एक संक्षिप्त कहानी के रूप में होता है। यही इसका कथानक कहलाता है। कथानक के लिए उसके कुछ मुख्य भागों पर ध्यान देना आवश्यक होता है। सबसे पहले आरंभिक भाग महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इसमें निहित कौतूहल, जिज्ञासा, आत्मीयता और स्पष्टता श्रोता को नाटक की

ओर आकर्षित करते हैं। आरम्भ को प्रभावी बनाने में संगीत, ध्वनि–प्रभाव और संवादों का प्रयोग किया जाता है।

कथानक के संतुलित विकास के लिए उसमें संघर्ष और गतिशीलता को बराबर स्थान देना चाहिए। इसके मध्य भाग में सभी पहलुओं पर प्रकाश डालना जरूरी है ताकि पात्रों की भावात्मक पृष्ठभूमि का परिचय मिलता रहे। कथानक का महत्वपूर्ण भाग उसका अंत है। नाटक का अंत सुखांत भी हो सकता है, और दुखान्त भी। नाटक का अंत भी प्रभावशाली होना चाहिए ताकि वह श्रोता के मन पर छाप छोड़ सके। भारतीय नाट्य चिन्तन में सुखान्त भाव ही चिन्हित करने का निर्देश है।

२. पात्र अथवा चरित्र चित्रण

रेडियों नाटक में पात्र अथवा चरित्र–चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। ये पात्र ही नाटकीय कार्य व्यापार को वहन करते हैं और अपने संवादों द्वारा नाटकीय क़था उद्घाटित करते हैं। रेडियो नाटक के पात्रों का चरित्र–चित्रण अन्य नाट्य रूपों से भिन्न होता है क्योंकि रेडियो नाटक दृश्यमान नहीं होता। अतः उठने, बैठने से लेकर, उनकी वेशभूषा उनकी आयु दृश्य ध्वनि के माध्यम से प्रस्तुत किए जाते हैं। ध्वनि को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया गया है। संवाद, ध्वनि–प्रभाव (इफेक्टस) और संगीत। पात्रों की सृष्टि मुख्यतः आवाज की कल्पना पर ही होती है। सूत्रधार अन्य पात्रों द्वारा स्वगत कथन द्वारा व सूत्रधार के जरिए पात्र या पात्रों का परिचय करा करके पात्रों को जीवंत बनाया जाता है।

३. ध्वनि :

रेडियो नाटक का माध्यम मात्र ध्वनि ही है। ध्वनि के कारण श्रोता नाटक को अपनी कल्पना–शक्ति के आधार पर देखता है। इस ध्वनि को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है :–

१. उच्चरित शब्द
२. ध्वनि प्रभाव
३. संगीत

१. उच्चरित शब्द

भाषा के लिए शब्दों का चयन महत्वपूर्ण हैं। पात्रों के अनुरूप ही भाषा और शब्द का चयन किया जाता है। नाटक के अपने उद्देश्य को श्रोता तक पहुंचाने के लिए भी संवाद और भाषा की आवश्यकता होती है। वातावरण की सृष्टि में भी संवाद मददगार होते हैं।

२. ध्वनि प्रभाव

नाट्य लेखन में नाट्य–निर्देश महत्वपूर्ण होते हैं। नाट्य निर्देशों में ध्वनि–प्रभाव या इफैक्टस महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनकी उपस्थिति श्रोता की कल्पना शक्ति के आधार पर इसे अन्य नाट्य रूपों के मुकाबले सशक्त बनाती है। उदाहरण के लिए मोटर या रेलगाड़ी का प्रभाव, आंधी, तूफान या बिजली का गर्जन। ये वे ध्वनि प्रभाव है जो रंगमंच पर संभव नहीं है। दूरदर्शन या चलचित्र में भी इन्हें श्रव्य के अतिरिक्त दृश्य के साथ ही दिखाया जा सकता है।

३. संगीत

रेडियो नाटक में ध्वनि का तीसरा रूप सशक्त संगीत है। एक स्थान पर संगीत दृश्य परिवर्तन के लिए प्रयुक्त होता है तो दूसरे स्थान पर यह मनःस्थिति और अन्तर्द्वन्द्व को उभारने में सहायक होता है। काल अंतर और काल की पहचान भी संगीत के माध्यम से करायी जा सकती है।

गीतिनाट्यः

प्रथम महायुद्ध के बाद अंग्रेजी नाटकों में यथार्थवाद के चित्रण की मांग बढ़ती गई। दैनिक जीवन की उपलब्धियों के अतिरिक्त भी जीवन के वस्तुनिष्ठ यथार्थ की भी नाटककार से अपेक्षा की जाती थी। नाटक उनके लिये पलायान की प्रवृत्ति का सूचक ही था।[1] समाज के परम्परागत प्रतिबन्धों को आधुनिक नाटकों ने स्वीकार नहीं किया।

इन नाटकों में वैचारिक एवं सामाजिक अन्तर्द्वन्द्व को पस्तुत कर स्वतंत्रता, समानता एवं न्यायप्रियता के **(Liberty, Equality and Justice)** सिद्धान्तों को वरीयता दी गई। इन नाटकों में नवीन सृजन शक्ति, अभिव्यक्ति शैली और भाषा को शिल्प–विधान की दृष्टि से नये रूप में विकसित किया गया । परम्परागत रूढ़ शैली या तो इनके मनोनुकूल न थी या फिर इन्होंने उसे स्वीकार ही नहीं किया। जीवन की कर्कशता और यथार्थवादी साहित्य की कुरूपता और कटुता ने उनके जीवन में अनिश्चितता, अरूचि एवं अनास्था पैदा कर दी। उन्हें किसी ऐसी वस्तु का अभाव खटकने लगा जो उन्हें ऐसे समय यथार्थ की कठोरता एवं जीवन के ज्वर–संज्वर जिसे जॉन कीट्स ने 'द फीवर

---

1. The post-war generation of men and women started the demand for reality above all things. They demanded that dramatists should show then 'Life' as if living itself. The theatre was not an escape for them. The Drama Tomorrow-- Sir Cadrick Hardwickie

एण्ड द फ्रेट ऑव लाइफ' कहा है, से जीवन के प्रति सन्तोष और सरसता प्रदान कर सके, जो एक बार फिर से भविष्य के प्रति आस्थावान बना सके। अर्थात् जीवन की वास्तविकता और यथार्थ के निरन्तर चित्रण से ये नाटक उत्तरोत्तर वैचारिक संवाद और उपदेश मात्र बनते चले गये।[1] नाट्यलेखन की यह स्थिति भी अधिक समय तक नहीं रही। पश्चिमी साहित्यकार भी यथार्थवादी नाटकों से ऊब गये एवं प्रतिक्रिया स्वरूप गीतिनाट्यों की रचना होने लगी। सर्वप्रथम टी.एस. ईलियट ने प्रयास किया। उनका विश्वास था कि कविता ही नाट्य रचना के लिए उपयुक्त एवं उचित माध्यम है और पद्यबद्ध नाटक ही गम्भीर भावावेश की अभिव्यक्ति में समर्थ साधन है।[२] ईलियट ने मानव स्वभाव को प्रमुखता देते हुये उसे काव्य नाटकों में समन्वित किया।[३] उनका विश्वास था कि जीवन की पलायन वृत्ति को काव्य नाटक के माध्यम से ही आनन्ददायिनी वृत्ति में परिवर्तित किया जा सकता है। ईलियट के ही स्वर में आयरलैण्ड के कवि एवं नाटककार डब्ल्यू. बी. यीट्स ने अपने काव्य नाटकों के माध्यम से यथार्थवादी नाटकों के प्रतिरोध में गीतिनाट्य की श्रेष्ठता स्थापित करने की चेष्टा की है। यीट्स ने विशेष रूप से देशीय मिथकों को अपने काव्य–नाटकों का विषय बनाया और इस प्रकार गीतिनाट्यों का विषय मिथकोन्मुख हो गया। बींसवी शताब्दी के नाटकों को यीट्स की सबसे बड़ी देन उसकी गीतात्मकता एवं प्रतीकात्मकता ही है जो कि गीतिनाट्यों का प्राण है। अंग्रेज आलोचक प्रो० डेविस डायचिज ने ईलियट को २० वीं सदी का एक छोटा किन्तु सशक्त कवि माना है, परन्तु नाटककार के रूप में वह सदा सर्वदा विख्यात रहेगा। फ्रेजर के अनुसार नाटक तब तक नाटक है जब तक कि वह आन्तरिक मनोवेगों से निबन्धित है और नाटकों का बाह्य स्वरूप दर्शकों की स्मृति के लिए एक सामान्य किया मात्र समझा जायेगा। अर्थात् गीतिनाट्य में भावतत्व की प्रधानता होने के कारण इसमें मानव मन की रागात्मक अनुभूतियों, विचारों और भावनाओं की ही सघनता अधिक देखने को मिलती है। इसलिए गीतिनाट्य के संघर्ष प्रधानतः आन्तरिक ही होते हैं।

---

1. A. Nicoll- With the treatment of actual life, the drama became more and more,a drama of ideas sometimes veiled in the main action, sometimes didactically set forth. (From British Drama)

2. T.S. Eliot- I believe the poetry is the natural and complete medium for drama and the verse play is capable of something much more intense and exciting.- Quoted- History of Eng.Lit. by Mundra- Pg 495

3. Ibid- Page 571

डा० नगेन्द्र का इस संबंध में कहना है " भावना का प्राधान्य होने के कारण गीतिनाट्य में संघर्ष स्वभावतः बाह्य न होकर आन्तरिक होता है—अर्थात मन की एक भावना का दूसरी भावना के विरूद्ध संघर्ष ही यहां मिलेगा।[1] बाह्य परिरिथतियों का संघर्ष यदि होगा भी तो उसका प्रयोग आन्तरिक संघर्ष को तीव्रतर बनाने के लिए ही होगा। यही तथ्य टी० एस० ईलियट ने यथार्थवादी गद्य नाटकों के संकुचित क्षेत्र के करण तथा गीतिनाटय की ओर संकेत करते हुआ कहा है कि हमें किसी ऐसे नाट्य रूप (ड्रामेटिक फार्म) की अवतारणा करनी होगी जो अन्तस् के प्रवाह को यथार्थ की हुबहू तस्वीर प्रस्तुत करने वाली मरूभूमि में जाने से पूर्व ही, अपने में ही समाहित कर सके।[2] इस प्रकार यह स्पष्ट किया गया है कि नाटकों के लिए काव्य—भाषा ही उपयुक्त माध्यम है और पद्य बद्ध नाटक ही हमारी अनुभूति के सम्प्रेषण में समर्थ है।

गीतिनाट्य का कमिक विकास

प्रथम महायुद्ध के भीषण नरसंहार की विभीषिका ने लोगों में जीवन के प्रति अनास्था और अरूचि पैदा कर दी । भविष्य आंतक—पूर्ण और अन्धकारमय दिखाई पड़ने लगा। उनका हृदय जीवन और जगत की कटुताओं के फलस्वरूप कठोर, शुष्क एवं नीरस हो गया। दूसरी ओर उनके सामने यथार्थवादी एवं प्रकृतवादी साहित्य, अवसाद निराशा एवं जघन्यताओं का नग्न चित्रण लेकर आया। इससे उन्हें और भी निराश होना पड़ा। जीवन की कर्कशता और यथार्थवादी साहित्य की कुरूपता और कटुता ने उनके जीवन में अनिश्चितता, अरूचि एवं अनास्था पैदा कर दी। उन्हें किसी ऐसी वस्तु का अभाव खटकने लगा जो उन्हें ऐसे समय यथार्थ की कठोरता एवं जीवन के ज्वर—संज्वर से जीवन के प्रति संतोष और सरसता प्रदान कर सके; जो एक बार फिर से भविष्य के प्रति आस्थावान बना सके। यथार्थवाद इन आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ था क्योंकि उसका लक्ष्य जीवन के ऐसे नग्न सत्यों को सामने रखना था जो कि जीवन के प्रति और भी विराग भावना उत्पन्न करते थे। इसके फलस्वरूप ही गीतिनाट्य का आव्हान किया गया। गीतिनाट्य के लिए ही यह सम्भव था कि वह जनता को उनके जीवन से परिचित करा सके और उसको राहत भी दे सके।

हिन्दी में तो समस्या प्रधान बौद्धिक नाटकों के आगमन के पूर्व ही

1. डॉ० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी नाटक पृ० ६४
2. Williams - The Drama from Ibsen to Eliot. Page. 274

गीतिनाट्य का प्रारम्भ हो गया था। छायावादी काल में जहां कुछ नाटककार गद्य के माध्यम से सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति कर रहे थे। वहीं कुछ कवि नाटककार कविता के माध्यम से । सम्भवतः हिन्दी गीतिनाट्य के मूल में अपने यहां की काव्य एवं संगीत प्रधान नाट्य परम्परा रही है। इसके अतिरिक्त जैसे छायावादी कवियों को अंग्रेजी के रोमैण्टिक काव्य ने प्रेरणा दी, उसी प्रकार अंग्रेजी और बंगला के गीतिनाट्य साहित्य ने भी हिन्दी कवियों को इस दिशा में बढ़ावा दिया।

छायावादी काव्य के प्रति एक विरोधात्मक प्रवृत्ति सिर उठा रही थी। छायावादी हिन्दी कविता की धारा बहुत कुछ अन्तर्मुखी हो रही थी, उसमें वैयक्तिकता का प्राधान्य था। सहित्यिक और राजनीतिक जागरण के साथ यह प्रवृत्ति भी बदली। लोगों ने इस कविता के विरोध में "जीवित कविता" की मांग की। स्वयं छायावादी कवियों को अपनी बाद की कविता को अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी एवं गीतिमय से नाटकीय बनाना पड़ा। उदशंकर भट्ट के गीतिनाट्य निराला का पंचवटी प्रसंग और प्रसाद का करूणालय महाराणा का महत्व और कई नाट्य कविताएं इसके प्रमाण हैं।

हिन्दी में गीतिनाट्य का सूत्रपात प्रसाद जी ने "करूणालय" लिखकर किया। तदुपरान्त मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट एवं भगवतीचरण वर्मा जी ने भी इसमें योगदान किया। रेडियो के प्रचार प्रसार ने कवियों के काव्य और नाटकों का बहुत विस्तृत क्षेत्र और व्यापक प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप बहुत से आधुनिक कवियों ने गीतिनाट्य का प्रणयन तेजी के साथ करना प्रारम्भ किया। प्रायः हिन्दी के सभी नये एवं पुराने कवि रेडियो को दृष्टिगत रखकर लिख रहे हैं। इसका कारण नए प्रसार–प्रचार माध्यमों का विकास है और साहित्यकारों, कवियों एवं नाट्यकारों का नए रचना माध्यमों को अपनाना भी है।

गीतिनाट्य-परिभाषा और तत्व

गीतिनाट्य काव्य और अभिनय के तत्वों का समन्वय है। नाट्य के रूप में इसे रूपक भी कहा जाता है। संस्कृत में नाटकों का अध्ययन काव्य के अंतर्गत किया गया हैं और नाटक दृश्य प्रधान होने के कारण दृश्य काव्य के अंतर्गत आते हैं। वर्तमान समय में गीत भावाभिव्यक्ति की प्रमुख साहित्यिक विधा है। अतः गीत प्रधान नाटकों को गीतिनाट्य की संज्ञा दी गई है। विशेषकर गीतिनाट्य तो अंग्रेजी प्रभाव में ही लिखे गये हैं। अंग्रेजी में गीतिनाट्य को 'पोयेटिक ड्रामा' कहा गया है और पाश्चात्य विचारक गीतिनाटकों को ही

नाटकों में श्रेष्ठ मानते हैं। काव्य में ही प्रकृत भावाभिव्यक्ति संभव है अतः भावों और संवेगों के अतिरेक में काव्य से इतर अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। टी. एस. ईलियट, जो गीतिनाट्य के प्रमुख अधिवक्ता है, गीतिनाट्य को तीव्रतर संवेगों की एकमात्र प्रकृत भाषा मानते हैं जिसमें भावनाओं के सूक्ष्मतम स्वरूपों को अभिव्यक्ति मिलती है।[1] वे मनुष्य मात्र में काव्य रूपकों की प्रकृति को स्थायी मानते हैं क्योंकि जीवन में जो वायव्य है, काव्य रूपक उसी को कल्पना के सहारे ग्रहण कर आनन्द पूर्ण और सुरूचि पूर्ण बनाता है।

डा. गोविन्द त्रिगुणायत ने अपने समीक्षा शास्त्र में 'जोन्स' की परिभाषा को उद्धृत करते हुए यह भेद स्वीकार किया है कि नाटक का सर्वोत्कृष्ट रूप काव्य नाटक ही है और जितने भी नाटक के प्रमुख प्रतिपादक हैं उनमें काव्य नाटक को ही सदा वास्तविक नाटक समझना चाहिये।[2] अंग्रेजी नाटककार, उपन्यासकार और गीतकार जॉन गाल्सवर्दी ने कविता के प्रभाव को साहित्य की विधाओं में प्रमुख माना है, भले ही वह काव्य गद्य रूपकात्मक हो क्योंकि ऐसा रूपकात्मक गद्य भी फैन्तासी और प्रतीक के द्वारा मानवीय भावनाओं, जिज्ञासाओं, रहस्य और कल्पना को जन्म देता है।

डा० त्रिगुणायत ने प्रो० चेडलर की परिभाषा का गीतिनाट्य के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेख किया है– 'गीतिनाट्य को हम न तो काव्य नाटक कह सकते हैं और न ही नाट्य काव्य। यह एक प्रकार का ऐसा रूपक है जिसमें अभिनेयता के साथ–साथ पद्यात्मकता भी होती है उसमें श्रेष्ठ कविता के सभी गुण होते हैं। सच्चे गीति नाट्य केवल पद्यबद्ध ही नहीं होते उन पद्यों में नाटककार की विचार धारा और भावधारा उमड़ा करती है। उसमें नाटकीयता भी होनी चाहिए।[3]

---

1. It will only be poetry when a dramatic situation has reached such a point of intensity that poetry becomes the natural utterance, because then it is the only language in which the emotions can be expressed at all.

T.S Eliot- Selected Prose, Page 70

2. The greatest examples of drama are poetic drama and the highest chools of drama are, and must ever be, the schools of poetic drama.Jones quoted by Dr. Trigunayat- समीक्षा शास्त्र के सिद्धांत. पृ०सं–३००

3. **Professor Chedler :** The poetic drama then strictly defined as neither the closed drama nor the dramatic poem. It is a play poetic and dramatic as to form and contain an acting play in verse posessing the beauty and ideality which we associate with poetry at its best. The true poetic play is not much shifted with verse. It is one in which the verse is an essential and overflowing of the playwright's thought.

डा० दशरथ ओझा ने गीतिनाट्य में बाह्य क्रियाशीलता एवं संघर्ष के स्थान पर मानसिक भाव संघर्ष को ही प्रमुखता दी है। उन्होंने बाह्य क्रिया कलापों को नितान्त गौण स्थिति में रखा है, किन्तु यदि वह बाह्य क्रियाशीलता शून्य हो गई तो अभिनय के अभाव में गीतिनाट्य एक रूपक काव्य रह जायेगा। अतः यह परिभाषा अपूर्ण है।

गीतिनाट्य के सफल प्रयोगकर्ता आचार्य पं० उदयशंकर भट्ट ने गीतिनाट्य को भावनाट्य से पृथक माना है। कविता बद्ध नाटकों को इतिहास में गीतिनाट्य की संज्ञा दी गई है। इन नाटकों में मानव हृदय के संचारी भावों का अभिव्यक्तिकरण होता है। इसमें क्रिया मानसिक है, इसी से भावों का उत्थान पतन होता है। जहां गीति पद्य में स्वर संभावों का संचालन होता है, उसे गीतिनाट्य कहते है। गीतिनाट्य का बहिरंग है। गीतिनाट्य आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति के लिये सर्वथा उपयुक्त है। गीतिनाट्य को भावनाट्य से पृथक करते हुए भट्ट जी का मत है कि भावनाट्य मूलतः प्रतीक से बल ग्रहण करते हैं। एक मनोभाव के अन्त और दूसरे मनोभावों के बीच जो तरंगायित योग है वह सदा प्रतीकों द्वारा ही स्पष्ट होता है।[१]

डॉ. नगेन्द्र ने गीतिनाट्य को रूपक का ही भेद माना है जिसमें भावना की प्रधानता है। अन्तर्द्वन्द्व और मन के उद्वेलन को प्रकट करने में यदि अभिनय कौशल का योग हो तो वही गीतिनाट्य बन जाता है। उनके अनुसार गीतिनाट्य रूपक का ही भेद, है जिसका प्राण तत्व है भावना अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है कविता।[२]

डा. सिद्धनाथ कुमार के अनुसार 'गीतिनाट्य को काव्य नाट्य कहना अधिक उपयुक्त लगता है और चूंकि काव्य भाव प्रधान होता ही है– काव्य नाटक के अंतर्गत भावनाट्य स्वयं ही समाहित हो जाता है। अंग्रेजी में भी ऐसे नाटकों को 'पोयेटिक ड्रामा' **(Poetic Drama)** कहा जाता है ध्यान देने का बात है कि ये दोनों ही नाम काव्य नाटक और पोयेटिक ड्रामा नहीं हैं।[३]

डॉ. मनमोहन गौतम का मत इन सबसे भिन्न है। वे गीतिनाट्य को शुद्ध काव्य मानते हैं। नाटकीय तत्व उनके अनुसार गौण है। गीतिनाट्य शुद्ध काव्य है। इसका विषय रस है। यह रसाश्रित काव्य दृश्य भी है और पाठ्य भी। गीतिनाट्य में गीत तत्व ही प्रमुख है, घटना और व्यापार केवल उपादान में ही

---

१. उदयशंकर भट्ट विश्वामित्र और दो भावनाट्य–स्पष्टीकरण (ख)
२. डा० नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी नाटक पृ० १०३
३. डा० सिद्धनाथ कुमार – हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास पृ० ३५३

प्रस्तुत होते हैं। इनके माध्यम से पात्र विशेष के अंतर्मन के घात–प्रतिघातों का सहजोच्छलन प्रवाहित होता है। गीति नाट्य में कठोर नाटकीय अनुशासन नहीं चल पाता। भावावेग का सहजोच्छवास प्रवाहमान रहता है। उसी के भीतर तर्क का योगदान शान्त मन्द गति से चलता रहता है। यह नाटकीय व्यापार इतना शान्त और स्निग्ध होता है कि गीति की भाव प्रवणता में किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं आने पाती। इस प्रकार गीतिनाट्य में नाटकीय संस्पर्श के साथ उच्च कोटि के काव्य का समन्वय होता है। इसी संदर्भ में डा० गौतम ने भावनाट्य को गीतिनाट्य का अग्रिम चरण भी कहा हैं।[१]

गीतिनाट्य और भावनाटक के विषय में पं.उदय शंकर भट्ट तथा डॉ. सिद्धनाथ कुमार के परस्पर विरोधी स्वरों को स्पष्ट करते हुए डॉ गौतम ने लिखा है "गीतिनाट्य में गीति तत्व की प्रधानता होने के कारण भावतत्व प्रध ाान होता है, वर्ण्य वस्तु गौण होती है। फिर भी वर्ण्य वस्तु और पात्र चरित्रांकन अपना महत्व रखता ही है। भाव नाट्य में वर्ण्यवस्तु और पात्र किसी प्रतीक के माध्यम मात्र होते है। पात्र ऐतिहासिक हो या पौराणिक ,वह किसी शाश्वत मनोभाव का प्रतीक ही होता है। भाव नाट्य का अभिनय हो सकता है, किन्तु इसके लिए अनुरूप रंगमंच एवं उच्चतम स्तर के सहृदय प्रेक्षकों की आवश्यकता है। सारांश यह है कि नृत्य–नाट्य ,गीतिनाट्य और भाव नाट्य में काव्य पक्ष उत्तरोत्तर बढ़ता और दृश्य घटता जाता है। नृत्य नाटक शुद्ध रंगमंचीय और भाव–नाट्य शुद्ध पठनीय हो गये हैं। गीतिनाट्य की स्थिति मध्यवर्ति है।[२] दूसरी ओर पं० उदय शंकर भट्ट ने अशोक वन–वन्दनी और अन्य गीतिनाट्य के गीतिनाट्यों को पद्य नाटक ही कहा है।

गीतिनाट्य में पात्र–प्रमुखता को दृष्टिगत रखते हुये यह प्रश्न उठता है कि यह नायक प्रधान है या नायिका प्रधान? इसका विवेचन करते हुए आचार्य विनय मोहन शर्मा ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि गीतिनाट्य में गीतात्मकता के अतिरिक्त एक गुण और चाहिये– वह है नारी का बाहुल्य। साथ ही उसकी नायिका नारी होती है और रस होता है – "रसराज श्रृंगार"। रचना तंत्र की दृष्टि से वही भाव नाट्य कहलाता है।[१] वस्तुतः शिल्प सौष्ठव की दृष्टि से अभिनय समन्वित नाट्य को गीतिनाट्य के अंतर्गत ही रखना चाहिए। भावनाट्य एक सूक्ष्मतर स्थिति है, वह पाठ्य ही रहता है और पाठक अपनी

---

१. डा० मनमोहन गौतम – उदयशंकर भटटः व्यक्ति और साहित्यकारः पृ० ७६
२. डा० मनमोहन गौतमः उदयशंकर भटट व्यक्ति और साहित्यकारः पृ० ८०

संवेदनशीलता के अनुरूप वैसा ही मानसिक रंगमंच तैयार कर लेता है।

डा० रामचरण महेन्द्र ने गीतिनाट्य में संगीत को प्रमुख स्थान दिया है उनके अनुसार "गीतिनाट्य का तात्पर्य है वह रचना जिसमें गीति अधिक हो या वह नाटक जो केवल गीतों पर आधारित हो और जिसमें गेय छन्दों का प्राधान्य हो। गीतिनाट्यों में प्रचुर काव्य सौष्ठव तथा गेय तत्व रहना चाहिये। कवित्व इसका प्राण है। इसमें संगीत भी रहता है।"[२]

काव्य नाटक और संगीतिका का भी अंतर स्पष्ट करते हुए जानकी वल्लभ शास्त्री जी ने अपने मत को स्पष्ट किया है "काव्य नाटकों में भी मानव–जीवन के राग तत्वों को ग्रहण किया जाता है और भावनाओं तथा अनुभूतियों को वाणी दी जाती है, किन्तु 'संगीतिका' में तो उन्हें गाया भी जाता है। अनुभूतियों की तीव्रता भीड़ से जैसे व्यंजित होती है, घात–प्रतिघातों के आंकुचन–प्रसारण एवं स्वरों के घुमाव से जैसे मूर्त किया जाता है वैसे छन्दोबद्ध शब्दों के नाटकीय संलाप से संभव नहीं है।"[३] यह भी उल्लेखनीय है कि तमसा की शीर्षक भूमिका के प्रारम्भ में ही शास्त्री जी ने अपनी संगीतिकाओं को गीतिनाट्य के अंतर्गत ही माना है।[४] (हिन्दी की गीतिनाट्य कला को तमसा मेरी दूसरी भेंट है। इसमें भी पाषाणी की भाँति मेरी पाँच, संगीतिका में सम्मिलित)। इस कथन से यह स्पष्ट है कि संगीतिकाओं का गीतिनाट्य से पृथक अथवा स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं है अतः गीतिनाट्य को संगीतकाओं की संज्ञा देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। संगीत गीत का ही अंग है और काव्य दोनों का ही जनक। काव्य की विशेषताओं में पद्य स्वरूप अद्भुत सौन्दर्य और गीतात्मकता प्रमुख रूप से परिलक्षित होते हैं। अंग्रेजी आलोचक रोनाल्ड पीकॉक ने इन्हीं तीन तत्वों की ओर इंगित किया है।[५] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीतिनाट्य दृश्य–काव्य के अंतर्गत एक अभिनव शैली है जिसका प्रयोग यूरोपीय देशों से चलकर भारत में गीतिनाट्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य में गीतिनाट्य अपने विभिन्न नाम रूपों में विकसित हो रहा है। रास, रासक, लीला नाटक, रूपक, चेटक स्वॉंग, भगतिया रंग आदि

---

१. डा० विनय मोहन शर्मा डा. सिद्धनाथ कुमार द्वारा उद्‌धृतः हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास

२. डा० महेन्द्र हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार पृ० ७५

३. आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री : तमसा : पृ. ११

४. आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री : तमसा : पृ. ७

५. **Ronald Pecock:** One has always to distinguish between at least three major current meanings of poetic. It indicates a text in verse.... the romantically poetic and thirdly it means lyrical and musical style, primarily in verse.
- The Art of Drama : Page 217

उसके अनेक रूप रहे हैं। रामलीला और रासलीला के रंगमंचीय प्रदर्शन आज भी होते है और अनेक नाटक मण्डलियां आज भी उन्हें पद्य की भाषा में संवाद बोलकर अभिनीत करती हैं। अतः गीतिनाट्य के विविध रूप तो हमारे देश में प्रचलित हो रहे हैं, किन्तु इन नवीन संज्ञा और विशिष्ट शैली में इसका अस्तित्व भी साहित्य की एक पृथक विधा माना जाने लगी है। गीतिनाट्य में भाव–प्रवणता, अनुभूति की तीव्रता, विषय वस्तु की प्राचीनता, मिंथक,संगीतात्मकता आदि ऐसे तत्व है जिनसे गीतिनाट्य को अब सर्वथा अंग से हटकर अंगी की संज्ञा मिलना चाहिये। गीत शब्द से निश्चय ही एक सीमा का बोध होता है। अतः इसे काव्य नाटक भी कहा जा सकता है, किन्तु काव्य–नाट्य शब्द की व्यापकता से गीतिनाट्य की कोमलता और भावात्मकता अपेक्षाकृत क्षीण होने लगती है। अतएव इसे काव्यान्तर्गत एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा ही माना जाना चाहिये।

गीतिनाट्य के तत्त्व

(भाव–तत्त्व, बिम्बात्मकतका, प्रतीक–योजना, कल्पना–तत्त्व, चित्रोपमता गीति–तत्त्व मिथक तत्त्व)[१]

भाव तत्त्व

गीतिनाट्य के तत्त्वों का विवेचन करते हुए डा० कृष्ण सिंहल ने उसे (१) अन्तर्जीवन एवं (२) बहिर्जीवन इन दो विभेदों में विभाजित किया है। अन्तर्जीवन के रूप में मनोभाव, मनोवेग, संवेग, अनुभूति, प्रेरणा, राग और विराग गीतिनाट्य रचना के समन्वित मूलाधार हैं। इनकी सशक्त अभिव्यक्ति ही प्रभावशाली होती है बहिर्जगत के उपादानों से उत्पन्न अनुभूति, भावनाओं से ग्राह्य होकर कला में अभिव्यंजित होती हैं। यह भाव जगत कला और अनुभूति का संगम है। भाव जगत की अभिव्यक्ति के लिए हम जिन उपादानों का प्रयोग करते हैं वे सब सूक्ष्म हैं। संगीत का माधुर्य ; गीत का लय और शब्दों का अलंकरण मनोभावाभिव्यक्ति को गतिशील बनाते हैं। भाव जगत का कार्य व्यापार बहिर्जगत के वस्तुलोक से उत्तेजित मनोवेगों से नितान्त भिन्न होते हुए भी कलाओं में उससे संयुक्त हो जाता है। इसीलिए बहिर्जगत से संबंधित विश्लेषणात्मक विवरण, घात–प्रतिघात, संघर्ष घटनायें सब गद्य नाटक में उपयोगी हैं, किन्तु काव्य नाटक में विशेषकर गीतिनाट्य में भावजगत की प्रधानता है, जिसका सीधा संबंध अन्तर्मुखी है। मनोवेगों, भावनाओं, प्रेरणाओं और अन्तः संघर्ष से ही

---

१. डॉ. जाहर लाल कंचल– दिनकर कृत शीतिनाट्य उर्वशी : काव्य, संस्कृति और दर्शन

वह अद्‌भुत है और उसी का वाहक भी है। मनोभावों की तीव्र अतिशयता में वाणी भी अंलकृत हो जाती है। मनोभावों की इस अतिशयता के कारण व्यक्ति की जो अनुभूति होती है वह नितान्त वैयक्तिक है। गीतिनाट्यकार अपनी व्यक्तिगत अनुभूति को लोक अनुभूति से पृथक कर जीवन की पृष्ठभूमि में स्थापित करता है और आन्तरिक प्रेरणायें उसका नियंत्रण एवं नियमन करती है। गीतिनाट्यकार न तो पात्रों को ही हम तक लाता है और न ही जीवन जगत की यथार्थता से हमें प्रभावित करता है। गीतिनाट्य में लोक प्रभाव की स्थिति गौण अथवा शून्य है।

गीतिनाट्य के पात्र आन्तरिक प्रेरणा से संचालित होते हैं। अतः उनमें संवेदनशीलता और स्वानुभूति की मात्रा अधिक होती है; जैसा कि कृष्ण सिंहल ने लिखा है कि ये पात्र दैनिक जीवन में मिलने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली एवं संवेदनशील होते हैं।[१] ये समाज निरपेक्ष होने के कारण समाज से दूर और उसकी जटिल यथार्थता से उदासीन रहते हैं। जीवन के संघर्ष वहां प्रभावी नहीं होते। गीतिनाट्य में भावनात्मक तादात्म्य अपेक्षित रहता है। अतः मनोवेग प्रेरणायें राग–विराग, भावनायें अभिव्यक्ति पाकर गीति आदि माध्यम से सम्प्रेषित होती है।[२]

बिम्बात्मकता

गीतिनाट्य में चित्र और प्रतीकों के द्वारा आन्तरिक जीवन की आवेगमयी झांकी को वास्तविकता के धरातल पर प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है। बिम्ब–विधान गीतिनाट्य के विषय को एक ओर मूर्त और ग्राह्य बनाता है दूसरी ओर उसके रूप को संक्षिप्त और दीप्त। संसार के कार्य व्यापार घटना–प्रधान हैं; उन्हें भावना प्रधान रूप में अभिव्यक्ति देने के लिए काव्य और संगीत दोनों की ही बिम्ब रचना करनी है जो कि कल्पना पर आधारित होता है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का मत है कि काव्य और नाटक का चमत्कार संगीत द्वारा ही साकार होता है। यह साकारता ही बिम्ब है। प्रत्येक वस्तु की कलात्मक अभिव्यक्ति ही बिम्ब है। बिम्ब न केवल विषय–वस्तु को स्पष्टता के साथ मानस चक्षु के समक्ष ला खड़ा करते है अपितु उनसे भावनात्मक घनत्व की सर्जना में भी सहायता मिलती है। बिम्ब यथार्थ जगत से हमारा परिचय

१. कृष्ण सिंहल– हिन्दी गीति नाट्य

२. **Renold Peacock:-** Drama never reaches out the audience transforms or transcends itsartificial habitat the stage, unless it stirs deep and strong emotions.
The Art of Drama - Page 190

कराते है क्योंकि गीतिनाट्यकार की नवीन बिम्बों की संयोजना हमारा ऐन्द्रिय चेतना को वृत्तान्तर यथार्थ से सम्पृक्त करता है। तथा बिना काव्य–चित्रों, प्रतीकों और रूपकों की सहायता के मानव अपने सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है। बिम्बों के साथ लय का योग हो जाने से प्रभाव में तीक्ष्णता एवं अनुभूति में गहराई आ जाती है। भाषा की छन्दोमयता और लयपूर्णता के कारण बिम्ब अधिक तीव्र और स्पष्ट हो जाते हैं। छन्दोबद्ध होने के कारण गीति की लय एक ओर विषय वस्तु को मूर्त रूप प्रदान कर बिम्ब निर्माण करती है तो दूसरी ओर प्रेक्षकों में भी बिम्ब ग्रहण करने की क्षमता का विकास करती है। सेसिल डे लेविस का मत है "यदि पद्य अभी भी बिम्बों'(काव्यात्मक चित्रों) का सबसे अच्छा माध्यम है तो केवल इसलिए कि अपनी रूपगत सीमाओं और आकृतिगत विशेषताओं के कारण यह (पद्य) चित्र–समष्टि में अधिक तीव्रता, अधिक स्पष्ट ध्वनियाँ और जटिल संबन्धों की सृष्टि कर सकता है।"[१] लेविस का यह भी मत है कि बिम्ब योजना के लिए सर्वाधिक स्थान गीतिनाट्य में है। गीतिनाट्य में परिवेश निर्माण के निमित्त ध्वनि चित्रों का भी विशेष महत्व है। ये ध्वनियाँ साकार बिम्बों की निर्मिति में कल्पना और भावना का भी संयोजन कर एक मूर्त को आकार देकर कथ्य से तथ्य को प्रभावकारी बनाती है।

प्रतीक योजना

प्रतीक योजना गीतिनाट्य का बहुत महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि गीतिनाट्य में विषय–वस्तु एवं पात्रों को प्रतीकों के माध्यम से ही अभिव्यंजित किया जाता है।

पीकॉक का कहना है कि जब प्रतीक अनुभूतियों अथवा उनसे सम्बद्ध विचारों के केन्द्र बिन्दु बनकर कार्य करते हैं तब वे भावोद्वेलन में अत्यन्त सहायक होते हैं।[१] इसीलिए प्रतीकों में भावनाओं का समावेश होना चाहिए। जब काव्य को गीत की ध्वनि–लय के परिवेश में प्रस्तुत किया जाता है तब प्रतीक तत्व और भी सूक्ष्म तथा और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। गीतिनाट्य के बिम्ब, रूपक, लय ध्वनि किसी कथानक के अंग न होकर स्वयं अंगी बन जाते हैं। यह भी विचारणीय है कि प्रतीक सदैव एक समान रूप रचना नहीं करते। इनका काव्यात्मक अर्थ सदैव तीन कोटियों में अभिव्यक्त रहता है। १. काव्य के शास्त्रीय युग से पद्यात्मक स्वरूप २. अद्भुत–सौन्दर्य का रचना संसार और ३.

1. ड़ा० सिद्धनाथ कुमार – सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक की "भूमिका" से उद्धृत पृ. स. १५

गीत–संगीतात्मक शैली का स्वरूप। इन्हीं तीनों स्वरूपों के कारण प्रतीक रचना को कला से सम्पृक्त किया जाता है। काव्य कला में विभिन्न कल्पना तत्वों की समरूपता अथवा भावनाओं की उद्‌दीपन शक्ति को प्रतीक परिवेश के द्वारा जो अभिव्यक्ति मिलती है वह गीतिनाट्‌य में अभिनय क्षमता का सृजन भी करती है। ये प्रतीक नाटकीय अभिव्यक्ति को तो पूर्णता प्रदान करते ही है, उसे पूर्ण नाटकीय भी बनाते हैं।[1]

प्रतीक करूणा की भावना को तुरन्त ही सम्प्रेषित करने में समर्थ है। गीतिनाट्‌यकार के इन करूणा भाव प्रतीकों को मिथक, अन्योक्ति परक काव्य या उपमा प्रधान काव्य में खोजा जा सकता है। गीतिनाट्‌यकार इन प्रतीकों को परम्परागत कथानकों को प्रस्तुत करने के साथ ही उन्हें भावावेग के प्रसंगों में रखकर काव्यात्मक तीव्रता **(Poetic Intensifications)** के लिए भी प्रयोग करते हैं। जगत का क्रूर कठोर तब प्रेक्षक तक पहुँचते –पहुँचते कोमल करूण और बिम्बात्मक रूप ग्रहण कर लेता है।

काव्य में प्रतीक–योजना अनुभूतियों और संवेदनशील विचारों के केन्द्र में रहती है और भावोद्वेलन की किया को काव्यात्मक तीव्रता प्रदान करने में समर्थ रहती है। रोनॉन्ड पीकॉक ने प्रतीकों के नाटकीय महत्व के विषय में लिखा है कि काव्यात्मक तीव्रता के माध्यम प्रतीक ही है। ये मनोभावनाओं के केन्द्र बिन्दु हैं अथवा भावनात्मक विचार समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं, यद्यपि इनकी प्रतीकात्मक तीव्रता परिवर्तित होती रहती है। १ इन प्रतीको की भी सीमाऐं हैं। जब तक ये प्रतीक गीतिनाट्‌य की सौन्दर्य परिधि में कियारत हैं तब तक ये नाटक में काव्यात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। जब तक ये प्रतीक विषय–वस्तु और पात्रों के चरित्र–चित्रण में मिथक और स्वप्न सन्दर्भो का समन्वय करते हैं तब नाटक की काव्यात्मकता उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है और उनसे उत्पन्न दीप्ति और प्रभा नाटक की आत्मा बन जाती है।[1] प्रतीक न तो उपमान होते हैं और न ही रूपक, वे स्थूल बिम्ब मात्र न रह कर परिवेशों की सृष्टि करते हैं, स्मृतियों को उभारते हैं और भावनात्मक चेतना को संवेदनशील बनाते हैं अतः उन्हें रूपकात्मक **(Metaphonic)** कहा गया है।

---

1. **Ronald Peacock-** "Symbols are agents of poetic intensification when they function as focal points for feelings or a group of associated ideas and feelings. The intricacy or density of such symbolism varyies greatly." "The Art of Drama" Page 231

कल्पना तत्त्व

बिम्बों एवं प्रतीकों की रचना प्रक्रिया में कल्पना का महत्वपूर्ण योगदान है। ध्वनि और लय के आधार पर सजीव मूर्त विधान कल्पना के माध्यम से ही सम्भव होता है। गीतिनाट्य में काव्य तत्त्व प्रमुख होने के कारण भी कल्पना महत्वपूर्ण योगदान करती है। वस्तुतः कवि यथार्थ को मूल रूप में प्रस्तुत न करके यथार्थ के बिम्ब को ही प्रस्तुत करता है। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ ने भी कविता को संवेगों का ऐसा स्वतः निसृण माना हैं जो शान्त मानस में स्मरण द्वारा उद्भूत होते हैं अर्थात कल्पना के द्वारा जिन्हें मूर्त किया जाता है।[२] कवि का गीतात्मक रचना– कौशल कल्पना के परिधान में और अधिक सुन्दर बन जाता है।[3]

कल्पना केवल श्रव्य (ध्वनि–लय पर आधारित) और क्रियात्मक (अभिनय) बिम्बों का ही निर्माण नहीं करती अपितु वह काव्यात्मक सम्भावनाओं को भी जन्म देती है। भावनाओं की गहनता और अनुभूति की तीव्रता काव्य–प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त करना कल्पना का ही कार्य है। उक्त गीतिनाट्य में इसका विशेष महत्व है।

चित्रोपमता

गीतिनाट्य में ऐन्द्रिक अनुभूतियों का चित्रण किया जाता है। ये ऐन्द्रिक अनुभूतियां विभिन्न प्रतिमाओं की रचना करती हैं; गीतिनाट्य में कलात्मक प्रतिमाओं की संरचना, जिनका नाटक में प्रयोग किया गया है, महत्वपूर्ण है सम्पूर्ण बिम्ब और प्रतीक विधान किसी न किसी प्रतिमा–संरचना के चतुर्दिक ही संवृत होता रहता है।[४] गीत की लय में भी एक रचना विधान है, उसमें माधुर्य है, संगति है और आरोह–अवरोह की संरचना हैं। यही किसी रूप–रचना को सम्प्रेषित करती है और पात्र से प्रेक्षक तक इसकी प्रक्रिया व्याप्त है। पात्र जो भी अभिनय के द्वारा मंच पर प्रस्तुत करते है वही प्रेक्षक के मानस पटल पर अंकित हो जाता है। कला की परिभाषा करते हुए पीकॉक लिखते है कि काव्य विचारों के रूप में पुनः रचित अनुभव है, वही प्रतिमा के निर्माण का सिद्धान्त है

---

1. Ronald Peacock : The Art of Drama Page 232
2. Words worth : " Poetry is the spontaneous overflow of powerful emotions recollected in traquility.
3. Ronald Peacock : " The Art of Drama" Page 225
4. Ronald Peacock : " The Art of Drama" Page 217

अथवा भाषान्तर्गत निहित प्रतिमा है जो पुनः रचना की ओर अग्रसर होती है।[1] जे० आयजक ने भी यदि गीतिनाट्य के माध्यम को पद्य माना है तो उसकी प्रक्रिया को प्रतिमा कहा है।[2] धर्मवीर भारती के गीतिनाट्य अन्धायुग में यही विशेषता पाई जाती है। उर्वशी में अनेक ऐसे स्थल है जो अपने चित्र स्वरूपों को पाठकों के मानस पटल पर अंकित कर देते हैं। वस्तुतः बहिर्जीवन की कठोरता एवं यथार्थ वादिता को यदि कलात्मक अभिव्यक्ति मिलती है तो वह बिम्ब एवं प्रतीकों के माध्यम से ही सुलभ है। एवरक्रॉम्बी ने ठीक ही कहा है कि बर्हिजीवन के संघर्षपूर्ण यथार्थ को अन्तर्मन की भावनात्मक अनुभूतियों के साथ एक साथ नहीं बिठाया जा सकता।[3] उदयशंकर भट्ट के गीति नाट्यों में ऐसे चित्रों की अनुपमेय रूपकात्मकता दृष्टिगत होती है जिनका प्रारम्भ और पर्यावसान नाटकीय कौशल से हुआ है।

गीति तत्त्व

गीतिनाट्य में गीत ही नाटक के सशक्त माध्यम हैं। इनसे ही भाषा को लय मिलती है और ध्वनि की लयात्मकता के कारण भावों के सम्प्रेषण में सहायता भी। ध्वनि और लय हमारे भौतिक जीवन के अंग हैं। अतः हमारी भावनाओं से भी उनका सीधा संबंध है, जिसकी अभिव्यक्ति नाट्य में गीत गुंजन द्वारा होती है।

गीतिनाट्य में काव्य का प्रयोग ध्वन्यात्मक संगठन लिए अपेक्षित है। ध्वनि का संबंध काल–बोध से भी है। नाटक में कुछ घटनायें पूर्वानुमानित होती हैं और कुछ नाटक का मुख्य भाग का सृजन करती हैं और कुछ घटनायें अनुगामी होती हैं। नाटकीय स्थिति का पूर्वानुमान कर लिया जाता है और मंच पर प्रस्तुत करते समय पूर्वापर क्रम में काल बोध को ये गीतात्मक ध्वनियां ही संयोजित एवं अभिव्यक्त करती हैं।

ध्वनि वैविध्य ही गीतिनाट्य का प्राण है। भिन्न–भिन्न ध्वनियों के माध्यम से पात्र की भावना, मनोस्थिति तथा उसके चरित्र को प्रस्तुत किया जाता है।

1. Art is the experience re-enacted as idea, a formula of imagery or imagery within language being the instruments of reenactment
   R.Peacock 'The Art of Drama Page 67.
2. J. Issacs- The Vehicle of Drama is verse, its mechanism is imagery
3. Abercrombie

गीतिनाट्य में गीत प्रयोग दो रूपों में किया जाता है छन्द : विधान द्वारा अथवा लय ध्वनि समन्वित भिन्न तुकान्त या अतुकान्त पद्य–पंक्तियों में। अतुकान्त या भिन्न तुकान्त पक्तियों में लय का आरोह–अवरोह नितान्त आवश्यक है। कभी कभी नाटक में स्वतंत्र गीतों की रचना कर दी जाती है। ऐसे गीत नाटक में गुम्फित घटना और पात्र की स्थिति तथा एक मानसिक विचार प्रक्रिया का द्योतन करते हैं। गीतिनाट्य में समवेतगान (कोरस) का समावेश सौन्दर्य–वृद्धि में सहायक होता है। गीतिनाट्य के समवेत गान में जितने अधिक पात्र होंगे उसका पद्य उतना ही सरल, सीधा और संगीत बद्ध होगा। पंत जी के गीतिनाट्यों में ऐसे समवेत गान भी दिये गये हैं।

गीतिनाट्य में लम्बे लम्बे काव्य सम्भाषण भी संयोजित हो जाते हैं। पंत जी के गीतिनाट्यों के सम्भाषण यद्यपि नाटकीय कौशल में अभिनय की दृष्टि से व्यवधान हैं तथापि मनोवैज्ञानिक उत्तेजना के क्षणों में काव्यात्मक अभिव्यक्ति इतनी स्वाभाविक और गहन हो उठती है कि इन लम्बे सम्भाषणों को हटाया जाना सम्भव नहीं है। परन्तु इसकी लय भंग नहीं होनी चाहिए।

रोनॉल्ड पीकॉक ने भी यही मत व्यक्त किया है। भावावेग की तीव्रता एक ओर कवि के मनस लोक में होती हैं और इसरी और मंच पर पात्र के जीवनानुभवों के कारण उत्तेजना उत्पन्न करती है। लय और भावनायें पृथक नहीं की जी सकतीं। कविता की लय ही भावना का प्रखर वेग वहन करती हैं।[१]

गीतिनाट्यों में छन्द का प्रयोग करके विषयवस्तु में तीव्रता उत्पन्न की जाती है। गीतिनाट्य में तीव्र भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए लयात्मक छन्द की अपेक्षा होती है। ऐसा छन्द मुक्त छन्द (Free-Verse) ही हैं। मुक्त छन्द के चरणों की अनियमितता, असमान स्वच्छन्द गति और भावानुकूल यति विधान उसकी विशेषता है। इसमें लय, भावानुकूल ध्वन्यात्मक शब्द योजना और वृत्तियों का प्रयोग किया जाता है। मुक्त छन्द के ऐसे प्रयोग बंगला के अमिताक्षर छन्द में हुए हैं। 'प्रसाद' व मैथिलीशरण गुप्त के प्रयोग भी प्रशंसनीय हैं। कहावतें, मुहावरे, अमिधा, लक्षणा, व्यंजना–शब्दशक्तियां, मधुरा, परूषा, कोमल वृत्तियां देशी–विदेशी शब्दों का प्रयोग, विरामादि चिन्हों की विविधतायें,

---

1. Ronald Peacock : The power of verse in drama is connected with the fact that intense emotions seek an outlet in high termed speech and in this both rythm and the figurative language appropriate in verse show greater intensity.
'The Art of Drama' Page 223

सभी मुक्त छन्द की रूप रचना और ध्वनि माधुरी के लिए सहज ही अपेक्षित हैं और मुक्त छन्द में इनके लिये पर्याप्त स्थान भी है।

भाषा की दृष्टि से गीतिनाट्य में प्रयुक्त भाषा सहज होना चाहिये क्योंकि भाषा भाव प्रेषण का कार्य करती है। गीतिनाट्य की भाषा के संबंध में टी० एस०. ईलियट का कहना है कि " भाषा न तो इतनी प्राचीन होनी चाहिए कि उसकी बोधगम्यता ही संदिग्ध हो जाये और न कुछ आधुनिक फ्रान्सीसी नाट्यकारों की भांति आज कल के वार्तालाप से मिलती जुलती ही होनी चाहिए। इसलिए उसने अपनी शैली को ''तटस्थ'' कहा है।"[१] इस तटस्थता का निर्वाह करने के लिए उसने अतुकान्त छन्द के स्थान पर मुक्त छन्द को अपनाया है।

नाटक तत्त्व

गीतिनाट्य का रंग सुरूचिपूर्ण एवं कलामय होना चाहिये। इसके लिए मंच सज्जा में उपकरणों की कम, कलात्मकता की अधिक आवश्यकता होती है। कल्पना और राग के समावेश से गीतिनाट्य की विषय वस्तु और अधिक प्रभावी बनती है। गीतिनाट्य में अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण को प्रधानता मिलती है जिसमें अभिनय और घटना संघात को कम स्थान है। अतः मंच सज्जा कोमल, सरस और सुरूचिपूर्ण होना चाहिये। गीतिनाट्य प्रायः नारी बहुल होते है, अतः कोमलता, सौन्दर्य–प्रियता, गीतात्मकता, संकुचन–प्रसरण, लय की विविधता आदि अनेक ऐसे भावनात्मक उपकरण क्रियाशील होते हैं जिनका कोई भौतिक आधार नहीं होता।

गीतिनाट्य में पात्र–सज्जा का विशिष्ट स्थान है। पात्र सज्जा में अंलकारों और वस्त्राभरणों का भावानुकूल संयोजन नाट्य निर्देशक की कुशलता पर निर्भर करता है। प्रकृति के परिवेश के अनुकूल ही पात्रों का परिवेश होना चाहिए। गीतिनाट्य की विषय वस्तु प्रायः पौराणिक आख्यानों अथवा प्रेमाख्यानों से संबंधित होती है, अतएव युग जनोचित परिवेश गीतिनाट्यों का प्राण बन जाता है। शकुन्तला, राधा, मत्स्यगंधा, मेनका, उर्वशी, उमा, तारा ,सीता आदि नारियों ने इतिहास के विभिन्न कालों में जन्म लिया है। अतः मंच सज्जा और पात्र परिधान उस काल विशेष के द्योतक बन जाते हैं। किन्तु प्रतीक पात्रों में अलंकरण पात्रानुकूल कल्पनाजनित होता है।

विषयवस्तु के अनुरूप ही संवाद रचना होती है। गेय होने के कारण

---

१. कृष्ण सिंहल : हिन्दी गीतिनाट्य पृ० ७४ (उद्धृत)

समस्त नाटक में कार्य व्यापार की अभिव्यक्ति गेय पदों, छन्दों युक्त गीतों में होना चाहिए। संवाद लघु अथवा दीर्घ होते हैं। लघु संवाद घटनाक्रम और अन्तर्द्वन्द्व के सफल चित्रण के लिए समर्थ होते हैं। आंगिक अभिनय के लिये गीतिनाट्य में कोई स्थान नहीं है किन्तु वाचिक के लिये पर्याप्त स्थान है। गीत की लय, स्वर, टोन आदि से वातावरण का निर्माण होता है और अभिव्यक्ति भी प्रभावशाली बनती है।

गीतिनाट्य में प्रकाश का विशेष महत्व है। मंच पर विभिन्न रंगों की ज्योति और आधुनिक युग में पाद प्रकाश पुंज **(Foot Light)** से नारी पात्रों अथवा पुरूष के सौन्दर्य को और अधिक सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है।

गीतिनाट्य में अंक और दृश्य–परिवर्तन भी गद्य नाटकों की अपेक्षा भिन्न होना चाहिए। गीतिनाट्य में दृश्य परिवर्तन ध्वनियों और प्रकाश के साधनों से किया जाता है। इससे नाटक में अत्याधिक चारूता आ जाती है। इस प्रकार गीतिनाट्य का समग्र प्रभाव जीवन की जटिलता को भी कोमलता अथवा करूणा से सिंचित कर प्रेक्षक को भावाभिभूत करने में समर्थ होता है।

अंग्रेजी नाटकों का प्रारम्भ भी काव्य–नाटकों से हुआ है। शेक्सपीयर के पूर्व और बाद में जो भी नाटककार हुए सभी ने पद्य में तथा लगभग एक ही शैली में नाटक लिखें। परम्परागत रचना पद्धति से हट कर स्वच्छन्दतावादी कवि ''शैली'' ने 'प्रॉमेथियस अनबाउण्ड़ '**(Prometheus unbound)** गीति–नाट्य शैली में लिखकर एक नई रचना प्रक्रिया को जन्म दिया। इस गीतिनाट्य का विषय भी पौराणिक है । सैंसी **(Cenci)** उसका अन्य गीतिनाट्य है जो पहिले की अपेक्षा उतनी ख्याति अर्जित नहीं कर सका। शैली के बाद अंग्रेजी में खुलकर गीतिनाट्यों की रचना होने लगी। यह युग ही रोमान्टिक युग कहलाता था अतः प्रभूत कल्पना और गीतात्मकमता के कारण राबर्ट ब्राउनिंग के गीतिनाट्य ,नाटकीय गीत नाटकीय –रोमान्स बहुत प्रचलित हुए। राजकवि टैनीसन का 'मॉड' **(Maud)** आज भी विख्यात है। बीसवीं सदी के राजकवि जॉन मेसफील्ड़ **(John Masefield)** ने अनेक गीतिनाट्य लिखे जिनमें 'द ट्रायल ऑफ जीसस' **(The trial of Jesus),** ईस्टर और गुडफ्राइडे **(Easter and good friday)** विख्यात हैं। जॉन ड्रिकवाटर **(John Drickwater)** ने भारतीय पौराणिक गाथाओं को अंग्रेजी काव्य–नाटकों में रूपान्तरित किया है । ये सब गीतनाट्य मिथक आधारित हैं।

अंग्रेजी गीतिनाट्य रचना में विस्फोटक कार्य किया टी० एस० ईलियट ने। उसने अपने गीतिनाट्य 'मर्डर इन द कैथेड्रिल' **(Murder in the Cathedral)** में शुद्व गीतिनाट्य को स्वर दिया है। यह गीतिनाट्य देश–विदेशों में नई नाट्य रचना का प्रेरक बना और देश–देशान्तरों में गीतिनाट्य रचना के नये आयामों को उद्भासित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त कर सका। ईलियट ने कविता और विशेष रूप से गीति तत्त्व को ही माधुर्य की दृष्टि से नाटक में सबसे उपयुक्त और प्रभावशाली माना है क्योंकि भाव सम्प्रेक्षण में पद्य जितना समर्थ है उतना गद्य नहीं। ईलियट की परम्परा में स्टीफैन फिलिप, जॉन ड्रिंकवाटर, डब्ल्यू 'बी.यीट्स, स्टीफैन स्पैंडर, क्रिस्टोफर फ्राई जैसे अन्य गीतिनाट्यकार है। इन सब में यीट्स ने सबसे अधिक ख्याति अर्जित की है। यीट्स ने ग्रामीण अंचलों की लोक कथाओं, मिथकों और पुराणों के परिप्रेक्ष्य में अपने गीतिनाट्यों की रचना की है, अतः उसका लोक प्रभाव भी अधिक है।

गीतिनाट्य की भारतीय नाट्य परम्परा

भारतीय नाट्य परम्परा के उद्भव के विषय में भरत मुनि के नाट्य –शास्त्रा में कुछ सामग्री प्राप्त होती है। देवताओं के आग्रह पर ब्रंह्मा ने सार्वकालिक वेद की रचना की और ऋग्वेद से पाठ्य, साम से गान, यजु से अभिनय और अथर्व से रस संग्रह कर नाट्य वेद का सृजन किया तथा उसे प्रचार हेतु देवताओं को सौंप दिया। देवता वृन्द नाट्य–कर्म के ग्रहण, धारण, ज्ञान और प्रयोग करने में असमर्थ रहे। अतः ब्रंह्मा ने भरत मुनि को बुला कर उन्हें अपने सौ पुत्रों सहित प्रयोक्ता बनाने का आदेश दिया। ऋग्वेद में लगभग पैंतीस ऐसे स्थल है जो निर्विवाद रूप से सम्वाद हैं। यम–यमी, पुरूरवा–उर्वशी, अगस्त्य, लोपामुद्रा आदि के आख्यान तो विश्व साहित्य में अपनी नाटकीयता के लिए प्रसिद्ध है । प्रो० सिलवा लेवी ने वैदिक काल में गायन प्रथा का उल्लेख किया है। ऋग्वेद काल की स्त्रियाँ उत्तम वस्त्र पहिन कर नाचती और प्रमियों को आकृष्ट करती थीं। पाठ्य अंश को प्रतीकात्मक रूप में नाट्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। सामवेद से गायन लिया गया। ऋक् को साम की योनि कहा जाता है। आर्चिक और उत्तरार्चिक (अर्थात् ऋचाओं का संग्रह–सुर, लय आदि समन्वित) सामवेद के दो भाग है जिनमें भारतीय संगीत परम्परा का पूर्ण परिचय आज भी सुरक्षित है। यजुर्वेद में 'सोम–विक्रय प्रकरण अभिनय तत्व की ओर संकेत करता है। पाठ्य–गान और रस के अतिरिक्त जो भी कार्य नाटक के लिए आवश्यक है वह सब अभिनय के अर्न्तगत लिया जाता है।

अतः अभिनय शब्द अपना व्यापक अर्थ भी रखता है। अथर्ववेद में मारण–

मोहन, वशीकरण आदि अभिचारों से उत्पन्न सिंहरन, कम्पन जैसे अनुभव और धृति प्रमोद जैसे संचार भी उल्लिखित हैं, जिनसे रस निष्पत्ति होती है। अतः अथर्ववेद से रसों को ग्रहण करने का तश्य भी सत्य और संगत प्रतीक होता है। नाट्य शास्त्राा के प्रारम्भ में ही 'ध्वजमह' के अभिनीत होने के अवसर पर सुरासुर वैमनस्य, 'अमृत मंथन' के अवसर पर सुरासुर सौमनस्य तथा भगवान शिव के समक्ष 'त्रिपुर दाह' के अभिनय का उल्लेख है। भगवान शिव ने प्रसन्न होकर भरत मुनि को नाट्य में नृत्य सम्मिलित करने का उपदेश भी दिया है। अतः गीतिनाट्य का मूल रूप भी वैदिक काल में खोजा जा सकता है।

संस्कृत नाटकों का प्रभाव

संस्कृत नाटकों का प्रारम्भिक काल वैदिक ग्रन्थों से माना जाता है। असुर दर्प दलन का स्वरूप 'ध्वजमह' और सुर–असुर मैत्री के भाव 'अमृत–मंथन में प्रस्तुत हुए है। 'त्रिपुरदाह' के उपरान्त गायन– नृत्य समन्वित नाट्य कर्म नई विधा में अग्रसर हुआ और भरत मुनि ने अपने एक सौ पुत्रों सहित नाट्य प्रचार का कार्य किया है। कालान्तर में भरत–सन्तानों को अपने नाट्य कौशल पर गर्व होने लगा और उन्होंने अपने आचरण से नाटकों द्वारा ऋषियों का अपमान किया। फलस्वरूप ऋषि–शाप के कारण उन्हें धरती पर शूद्र बनकर रहना पड़ा। राजा नहुष के संरक्षण में इन भरत सन्तानों ने नाट्य कला का प्रचार–प्रसार किया।[१] और इसी कारण राजा नहुष कों इन्द्र का कोप भाजन बनना पड़ा।[२] प्रो० जागीरदार ने नाट्य उद्भव की सूत्रधार कल्पना की अवहेलना करते हुए नाट्य–वृत्तियों के आधार पर सूत्रों द्वारा गायन की प्रथा का समर्थन किया है। महाकाव्य और पुराणों के गायन से भारती, वृत्ति कुशीलव जैसे संगीतज्ञों के साथ गायन से सात्वती वृति नर–नटी के परिवेश से गायन के साथ कौशिकी वृत्ति और नृत्य–गीतादि समन्वित गायन से आरभटी वृत्ति से गीतिनाट्य की रूप–रचना को सम्बन्धित किया गया है। संस्कृत में नाटकों की वास्तविकतम प्रतिष्ठा कालिदास के नाटकों के कारण हुई। मालविकाग्निमित्र, विक्रमोवर्शीयम्, और अभिज्ञान शाकुन्तलम् ये तीन नाटक ही नाटकों के चरमोत्कर्ष को उद्भासित करते हैं। मालविकाग्निमित्राा में नृत्य की प्रधानता तथा विक्रमोवर्शीयम् में नवीन–गीतिकाओं की प्रमुखता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटकों में एक श्रेष्ठ कृति है। कालिदास के उपरान्त शूद्रक का 'मृच्छकटिकम्' एक प्रसिद्व रचना है। इन दो नाटककारों के उपरान्त की

---

१. नाट्क शास्त्र / ३६

२. ऋग्वेद १०/९९–७

नाट्यरचनायें केवल नाटकीय अनुकरण कही जा सकती हैं। भवभूति के अनुकरण पर मुरारी कृत 'अनंग राघव' और जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव' मिलते है। कृष्ण मिश्र द्वारा रचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' एक दार्शनिक संवाद है। संस्कृत नाटकों से हिन्दी गीतिनाट्य को भावात्मक संगीत नृत्य कौशल तथा भाव–मुद्रायें उपलब्ध हुई जो गीतिनाट्य का प्राण हैं।

गीतिनाट्य में मिथंक तत्त्व

गीतिनाट्य की कथावस्तु काव्यात्मक होती है जो अन्तः स्पर्शी होने के कारण मन पर सहज ही संवेगात्मक तीव्रता उत्पन्न करती है। यह तीव्रता अतीत की गौरव गाथाओं और धार्मिक संस्कारों के कारण मन को आन्दोलित करने में अधिक समर्थ होती है। मिथक काव्यात्मक होते हैं, अतः जो भी नाट्य रचना इन पौराणिक आख्यानों पर होगी वह काव्यात्मक होगी अथवा काव्यात्मक नाटकों का विषय पौराणिक धार्मिक कथाओं से इतर नहीं होगा। समस्त आरम्भिक नाटक साहित्य इन्हीं पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। इसीलिये अधिकांश गीतिनाट्य इन पुराण कथाओं की विषय वस्तु से ही संबंधित हैं। 'आयजक 'ने तो पुराण कथाओं को ही गीतिनाट्य का आधार माना है।[१] पौराणिक साहित्य मुख्यतः प्रतीकात्मक हैं तथा कथाओं का कुछ न कुछ निहित उद्देश्य है। ये मिथक प्रतीकात्मक स्थितियों को स्पष्ट करते हैं तथा भय और आंकांक्षाओं के तिरोहण में सहायक हैं।[२] वर्तमान युग में भी नाटककारों ने इन मिथकों को नये परिवेश में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है और नवीन मिथकों की रचना भी की है। मिथक को केन्द्र में रखकर काव्य रचना ही होती है।

किन्तु जब कवि एक ही मिथक को अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है तो उसमें सदा नवीनता बनी रहती है। उर्वशी का मिथक वैदिक कालीन है किन्तु पुराण काल, कालिदास काल अथवा रवीन्द्र, अरविन्द काल में उसकी विषय वस्तु के एक रहने पर भी अभिव्यक्ति पृथक पृथक रही है। इसका मूल कारण यह है कि प्रत्येक युग में कवि के मन पर मानव स्वभाव और मानव व्यवहार के भिन्न–भिन्न पक्ष प्रभावी रहे हैं। ऐसा ही सभी गीतिनाट्यों में सम्भव

---

1. **J. Issacs : The texture of Poetic drama is verse, its substance is myth.**
   कृष्ण सिंहल के गीतिनाट्य से उद्धरित पृ० ५३.
2. **R. Peacock : Myths are a form of symbolism akin to dreams and art. They show symbolic situations; they express terrors and desires, taboos and pritres; they are a mode of catharsis.**
   " The Art of Drama" Page 235.

है।

नाटकीय कौशल और गीतिनाट्य

नाटकीय कौशल के तीन आधार भूत तत्त्व संयोजित किये जाते हैं। १. मिथक कथ २. पात्रों का सशक्त मनोवैज्ञानिक यथार्थ और ३. गम्भीर प्रतिमा संयोजन। मिथक कथा सम्पूर्ण नाटक का केन्द्र होती है जो अपने में अतीत के रहस्य का गुंजन किया करती है। मानव मन इस गुंजन को अपने अनुभवों और भावनाओं की प्रतीति से प्रतिउत्तरित करता रहा है जिसे हम भावनात्मक अनुकूलता **(Emotional Response)** कह सकते हैं। पात्रों के मनोवैज्ञानिक यथार्थ से तात्पर्य उन स्थितियों से है जिन्हें सहज विश्वसनीय एवं सत्य माना जाता है। प्रतिमा संयोजन सम्पूर्ण घटना क्रम में भावात्मक एकता का उन्नतोन्नत विकास है जिसके द्वारा भाव सम्प्रेषणीयता सहज होती है। इस प्रकार यथार्थ–बोध और भाव–बोध परस्पर गुम्फित होकर एक नवीन विचार की पुनर्रचना कर नाटकीय कौशल का उद्‌भव करते हैं। ३. जहाँ यह उपलब्धि होती जाती हैं वहीं पर श्रेष्ठ रूपक रचना होती है। हिन्दी के गीतिनाट्यों में उदयशंकर भट्‌ट के **मत्स्यगंधा, राघा, विश्वामित्र** जैसे नाटकों के पौराणिक कथानकों में पात्रों की मनः स्थिति का सुन्दर संयोजन कर भावनात्मक व्यंजना की गई है।

पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त गीतिनाट्य के विषय के रूप में मानव मन का क्षोभ, निराशा, अनास्था, संशय और कुण्ठायें आदि का समावेश कर नवीन सर्जना होनी चाहिए। वर्तमान गीतिनाट्य सृजन में मूल्यों का विघटन, सांस्कृतिक संकट और धर्मनीति अध्याय की अधोगति आदि से उत्पन्न जीवन की अनियमित एवं वैचित्र्य पूर्ण लय को पकडने का प्रयास हो रहा है।[1] जिसे कि गीतिनाट्य का आधुनिक विषय कहा जा सकता है। धर्मवीर भारती ने अपने "अन्धा युग" में इसी को प्रतिपादित किया है। पंत जी के गीति नाट्यों में (रजत शिखर,शिल्पी, और सौवर्ण में संग्रहीत) मानव मूल्यों के प्रति–स्थापन का प्रयास है और विज्ञान,भौतिकता तथा आध्यात्मजन्य मूल्यों का इनसे संघर्ष अभिव्यक्त किया गया है।

गीतिनाट्य की पाश्चात्य परम्परा

काव्य नाटक कर यूनानी परमपुरा में नाटक का अर्थ है जो हो रहा है।[1] अर्थात सक्रियता में ही नाटक की अभिनेयता उपनिबद्ध है।[2] नाटकजब पद्यबद्व

---

1. **Henry James- Strange and irregular ryythm of life.**

होगा तों संगीत–नृत्य जैसी ललित कलाओं का स्वतः ही उसमें समावेश हो जायेगा। प्राचीन नाट्य साहित्य में नाटक में संगीत और नृत्य भी सम्मिलित रहते थे।[3] चित्रात्मक और मूर्त विधान काव्य की बिम्बात्मकता में प्रस्तुत किये जाते थे। जिस स्थान पर ये नाटक अभिनीत होते थे उसे रंगशाला कहा जाता था। 'एस्काइलस' जैसे यूनानी नाटक कार ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि नाटक में दृश्य, संगीत, कविता और गतिशीलता एक दूसरे को प्रभावित करते है। कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर आदि के नाटक काव्य जन्म भावानुभूति के कारण याद किये जाते हैं। उनमें विद्यमान शाश्वत सत्य की भावात्मक अभिव्यक्ति युग–युगान्तर तक जनमानस को प्रभावित करती है।[४] एक महान कवि हृदय नाटककार का रचना संसार ही पृथक होता है जहाँ रचनाकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से रचना में सर्वत्र उपस्थित रहता है।[५] तीव्र भावोद्वेग की स्थिति में भाषा स्वतः ही काव्यमय हो जाती है जिसमें मनोवेगों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है।[६]

हिन्दी गीतिनाट्य का मूल स्वरूप

नाट्य, नृत्य और नृत

दशरूपककार धनंजय ने नाटक को अवस्थानुकृतिर्नाट्यं अन्यद्भावश्रयं(नृत्य) औरताललायश्रमम् (नृतं) कहा है। अर्थात् नाट्य रसोद्देश्य, नृत्य–भावोददेश्य और नृत्तं अंग विक्षेपोद्देश्य माना गया है। साथ ही नृत्य और नृत्तं नाटक के उपकरण है। देश विशेष के अभिनय को आश्रय करके होने वाले नृत्य को मार्ग तथा नृत्तं को देशी कहते हैं।[१] नृत्यं और नृत्तं दोनों ही माधुर्य युक्त होने से

---

1. **The word drama can be paraphrased "What is going on. ? Greek tragedy Page- 103**
2. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त– डा० गोविन्द त्रिगुणायत– पृ० १७५
3. **Mohan lal lina- Indian Drama Page 69**
   Drama was built up with music and dance and story either revolved round a mythical theme or touched upon some tropical subject.
4. **Greek Tragedy. Page 116.**
5. **The world of a great poetic dramatist is a world in which the creator is every where present and every where hidden Three voices of the poet, Page - 24 T.S. Eliot**
6. डा० बच्चन सिंह : हिन्दी नाटक पृ० स० ७

लास्य तथा उद्धत होने से ताण्डव कहलाते हैं। नृत्य का उपयोग दूसरे पदार्थों के अभिनय एवं नृत्त का प्रयोग शोभा बढाने के लिए होता है।[२] इस प्रकार भाव और नृत्य के योग से नाटक में कलात्मक सौन्दर्य और प्रेषणीयता का संवर्धन हुआ। भारतीय मनीषियों ने नाटक में वस्तु, नेता और रस तीन प्रमुख तत्व माने हैं। नाटक का मूल उद्देश्य रसानुभूति को माना गया है। केवल नृत्य से भाव दशा और केवल नृत्त से अंग विक्षेप आदि उत्पन्न हो सकते हैं, रस दशा नहीं उत्पन्न होती। रस दशा की प्राप्ति के लिये अवस्थानुकृति अर्थात् कथावस्तु और उस कथावस्तु के अनुकरण कर्ता नेता एवं तद्रूप भावों को कायिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य रूपों में अभिव्यक्त कर अभिनय करना पड़ता था। अभिनय में सात्विक भाव में ही आनन्द स्थिति है जिसे साधरणीकृत रस रूप में जाना जाता है। तात्पर्य यह है कि भारतीय नाट्यकला में गीत, संगीत, नृत्य, रस आदि का प्रमुख योग है। गीति और संगीत ही हमें भावलोक में सात्विक स्थिति तक पहुँचाते हैं। उतने समय के लिए 'स्व–पर' का भाव तिरोहित कर सर्व सामान्य धरातल पर रह कर हम नाटक का आनन्द भोग करते हैं। गीतिनाट्य के आनन्दातिरेक और अपेक्षाकृत स्थाई प्रभाव का यही रहस्य है।

संस्कृत साहित्य के अधिकांश नाटकों में काव्य–भाषा का ही प्रयोग मिलता है। यूनानी नाटक तो केवल काव्य भाषा में ही लिखे गये। नाटकीय भावों की अभिव्यंजना काव्य भाषा में ही सम्भव है। कालिदास, भवभूति और विशाखदत्त की परम्परा तक नाटकों में काव्य भाषा की प्रधानता एवं रस निष्पत्ति ही मूल उद्देश्य रहा है। अतः यह स्वतः सिद्व है कि काव्य नाटक ही नाटकों का मूल है और गीतिनाट्य उसकी एक विकसित विधा है।

रास और रासक

डॉ० दशरथ ओझा का मानना यह है कि "गीतिनाट्यों की धारा हिन्दी की अपनी पैतृक सम्पत्ति है। रास हिन्दी नाटकों की स्वतंत्र शैली है जिसके प्रभाव से आगे चलकर हिन्दी नाटकों सृष्टि हुई।[३]

साहित्य दर्पणकार ने नाट्य रासक को उपरूपकों में पाँचवा स्थान दिया है। रूपकों और उपरूपकों का भेद काल्पनिक न होकर वास्तविक हैं। रूपक नाट्य है और उपरूपक नृत्य इसे लक्ष्य कर आचार्य धनिक ने भी उपरूपकों

---

१. दशरूपकः 1/6-8 धनिक की टीका
२. मधुरोद्वतभेदेनतद् द्वंय द्विविधं पुनः लास्य ताण्डव रूपेण टकाघुपकारकम् दशरूपक 1/10
३. डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक : उदभव और विकास पृ० ७३

को नृत्य भेद माना है। रासक भी नृत्य भेद ही है।

डोम्बी श्रीगदितं भाणोभाणी प्रस्थान रासका :
काव्यं च सप्त नृत्यस्य भेदाः स्युस्तेऽपि भाणवत्।।
दशरूपक, धनिक वृत्ति १/८

डॉ० कीथ ने भी नाट्य रासक को बेले **(Ballet)** कहा है।[1] इसी क्रम में मुनि जिन विषय ने संदेश रासक की खोज की है जो अपभ्रंश राजस्थानी भाषा में १३ वीं शताब्दी की रचना है। राजस्थानी भाषा में रासकों की भरमार है जिसकी गवेषणा की जानी चाहिये।

हिन्दी का गीतिनाट्य साहित्य

हिन्दी साहित्य की अधुनातन विधाओं में गीतिनाट्य प्रमुख विधा है। हिन्दी गीतिनाट्य का जो भी रूप रहा हो किन्तु, वर्तमान हिन्दी गीतिनाट्य पर अंग्रेजी और बंगला का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गीतिनाट्य की विधा गद्य नाटक से तो भिन्न है ही, किन्तु नाट्य कविता अथवा काव्य नाटक से उत्पन्न भ्रम के कारण गीति नाट्य को काव्य नाटक का पर्याय मान लिया गया है जो वस्तुतः एक दूसरे से निकट होते हुए भी भिन्न हैं।

रूपक काव्य और काव्य नाट्य

आज के युग में गीतिनाट्य को प्रायः नाट्य कविता के पर्याय में प्रयोग किया जा रहा है, जबकि मूलतः गीतिनाट्य अपने गठन में नाटक होने के कारण अभिनेय है और दूसरी नाट्य कविता मूलतः काव्य है। नाट्य कविता में यत्र तत्र संवाद आ जाने से अथवा घटनाक्रम से उत्पन्न नाटकीयता के कारण उसे गीतिनाट्य नहीं कहा जा सकता। महाकवि **'निराला'** की **पंचवटी** और **राम की शक्ति पूजा** मात्र नाटकीय प्रसंगों के आधार पर गीतिनाट्य नहीं मानी जा सकती। **प्रलय की छाया** और **पेंशोला की प्रतिध्वनि, महाराणा का महत्व** आदि रचनायें नाटकीय ध्वनि होते हुए भी गीतिनाट्य की श्रेणी में नहीं आतीं। गीतिनाट्य के लिये मंच सज्जा, ध्वनि–लय द्वारा नाटक का नियंत्रण, चरित्र–चित्रण भाव प्रधान कथानक, अन्तर्द्वन्द्व, छन्दोबद्ध कथोपकथन और रससिद्धि आवश्यक

---

1. Dr. Keith : The Sanskrit drama : Page 351

' The Natyarasaks' a ballet and performance.

तत्त्व है। नाट्य कविता या काव्य नाटक में इनका अभाव रहता है। रंगशाला के लिये उपयुक्त रंग निर्देश गीतिनाट्य में आवश्यक हैं। गीतिनाट्य में जिस गीतात्मकता, भाव प्रवणता तथा मानसिक द्वन्द्व की अवधारणा होती है, नाट्य कविता में इसका अभाव होता है। काव्यतत्व के योग से गीतिनाट्य के तत्व प्रभावान्विति करने में समर्थ होते हैं जबकि नाट्य कविता में चरित्र विकास के अभाव में प्रभावान्विति नगण्य होती है।

गीतिनाट्य-कविता और नाटक का समन्वय

गीतिनाट्य में कविता और नाटक एक दूसरे में विलीन होकर आनन्द की सृष्टि करते हैं। हैनरी ग्रेनविल बार्कर गीतिनाट्य को समान रूप से कविता और नाटक दोनों ही मानते हैं।[1]

हिन्दी गीतिनाट्यकार सिद्धनाथ कुमार का कथन है "काव्य नाटक (गीतिनाट्य) काव्यत्व और रूपकत्त्व का संगमस्थल है। काव्य तत्व और नाटक तत्व इसमें आकर एक ऐसे स्वरूप विधान की सृष्टि कर देते हैं, जिसमें काव्यत्व के कारण मानव जीवन के रागतत्व बडी स्पष्टता से उभर कर आते हैं, भावनायें और अनुभूतियां अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती हैं। नाटक तत्व इसका बाह्य स्वरूप निर्मित करता है, काव्य तत्व इसमें आत्मा की स्थापना करता है। नाटक तत्व कथानक का निर्माण करता है, घटनायें देता है, संघर्ष देता है, पात्रों की सृष्टि करता है; काव्यत्व इसमें अनुभूतियों का दान देता हैं।"[२]

गीतिनाट्य में मंच रचना के लिए संगीत, चित्र रचना, नृत्य, अभिनय आदि के प्रयोग से लालित्य और कलात्मकता उत्पन्न की जाती है तथा ध्वनियों के द्वारा भाव और लय के द्वारा वस्तु व्यापार व्यंजित होता है। सात सौ वर्षों से चली आ रही परम्परा में काव्य नाटक एक ओर गीति–प्रभाव से भावानुभूति को जाग्रत करते हैं और दूसरी ओर नाटकीय कौशल से उन भावों को प्रेक्षक तक सम्प्रेषित करने में सफल होते हैं।

---

1. **What we may justifiably call a new poetic drama freed from more formula, equally and integrately valid both as drama and poetry.**
   H.G. Barker- On Poetry in drama, Page 13

२. डा० सिद्धनाथ कुमार : सृष्टि की साँझ "भूमिका" भाग

हिन्दी के प्रमुख गीतिनाट्य

करूणालय

हिन्दी साहित्य में गीतिनाट्य का प्रारम्भ १६१२ में **करूणालय** से होता है। जो 'इन्दु' पत्रिका में इसी वर्ष प्रकाशित हुआ। 'प्रसाद' जी की यह सर्वप्रथम नाट्य कृति है। अतः विषय –वस्तु और शिल्प विधान की दृष्टि से निर्बल है परन्तु प्रथम नवीन नाट्य विधा के प्रयोग की दृष्टि से उसमें जो दुर्बलता है वह मार्जनीय है। इस गीतिनाट्य के प्रणयन में प्रसाद जी ने संस्कृत के 'कुलक', बंगला के 'अमिताक्षर' या अंग्रेजी के ब्लैंकवर्स छन्द का प्रयोग किया है। कथानक की दृष्टि से इस गीतिनाट्य का वस्तुगठन अत्याधिक शिथिल कहा जा सकता है। कथा–शैथिल्य के कारण इसकी वस्तु–योजना में अर्न्तद्वन्द्व, भाव– संघर्ष, स्वर लय–ध्वनि का अभाव है।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार इस नाटक में गीतिनाट्य के प्राणतत्व मानसिक संघर्ष का बड़ा दुर्बल प्रयोग है। हरिश्चन्द्र की कर्त्तव्य भावना और पुत्र–प्रेम के बीच संघर्ष शिथिल है– करीब–करीब नहीं के बराबर है।[1]

प्रसाद जी के यह प्रारम्भिक रचना है। कवि हृदय से निकली प्रकृति शोभा का स्वरूप निश्चय ही बहुत सुन्दर वातावरण का निर्माण करता है किन्तु रंगमंच की दृष्टि से उसका महत्व नगण्य है, उसमें नाटकीय अस्वाभाविकता है। भाषागत कतिपय असंगतियों से कहीं–कहीं पर नाटक के विकास में बाधा पड़ती है।

अनघ

हिन्दी का दूसरा गीतिनाट्य मैथिलीशरण गुप्त द्वारा विरचित **अनघ** है। अनघ में गुप्त जी ने उस राष्ट्रीय आन्दोलन के सामाजिक पक्ष की एक झलक दिखाने का प्रयत्न किया है जो कि गांधीवादी विचारधारा से अनुप्रेरित हुआ था। गुप्त जी का साहित्यिक युग गांधीवाद के प्रभाव में अहिंसावादी अछूतोद्धार आन्दोलन है; गुप्त जी स्वयं गांधीवादी हैं। इसी गांधीवाद की तत्कालीन समस्याओं और उनके समाधानों को गुप्त जी ने बुद्ध युग और बुद्ध के जीवन चरित में देखने की चेष्टा की है। अनघ का रचना काल १६२५ है। इस समय गांधी जी का असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था। सामाजिक कुरीतियों पर

---

१. डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी नाटक पृ.६७

प्रहार, अछूतोद्धार, अंहिंसा और न्याय की मांग इस युग का विवेच्य धर्म था।

तारा

तारा एक पौराणिक आख्यान पर आधारित गीतिनाट्य है। भगवतीचरण वर्मा ने इस गीतिनाट्य में चित्रलेखा उपन्यास की भाँति पाप– पुण्य की समस्या उठाई है। तारा भावनात्मक द्वन्द्व और आन्तरिक उद्वेगों पर आधारित रचना है जिसका कथानक पौराणिक है, किन्तु परिवेश सामाजिक वासना तथा धर्म– भावना का अन्तः संघर्ष ही गीतिनाट्य का प्रणतत्व है, जो इस गीतिनाट्य में आद्यान्त विद्यमान है । वर्मा जी ने इस प्रकार इस नाटक में पाप– पुण्य की समस्या को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रतिपादित किया है। वह उस युग की परम्परा के उनुकूल न होता हुआ भी उस परिवेश और वातावरण में सहज स्वाभाविक है।

तारा समस्या के निर्वाह की दृष्टि से एक सफल गीतिनाट्य है। इसका प्राणतत्व इसका अन्तर्द्वन्द्व है जो कि 'तारा' में आदि से अन्त तक बना हुआ है।

मत्स्यगन्धा, विश्वामित्र और राधा

उदयशंकर भट्ट ने हिन्दी गीतिनाट्य साहित्य को तीन महत्वपूर्ण गीतिनाट्य मत्स्यगंधा, विश्वामित्र और राधा दिये हैं। इन नाटकों में भट्ट जी ने प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी भाव सृष्टि की है। ये तीनों ही नाटक भावप्रधान हैं। इनकी कथावस्तु प्रतीकात्मक है। पौराणिक पात्रों के माध्यम से भट्ट जी ने नर और नारी की चिरन्तन समस्या (प्रेम) को उठाया है। भट्ट जी के तीनों नाटकों में भावोद्वेलन के कारण आन्तरिक द्वन्द्व और मानसिक संघर्ष की सफल एवं सहज अभिव्यक्ति हुई है। यह संघर्ष मत्स्यगंधा, मेनका और राधा के हृदय में यौवन की मादक अभिलाषा के प्रति उत्कट प्रेम को लेकर उठता है।

मत्स्यगंधा गीतिनाट्य नारी की उद्दाम यौवन लालसा का चित्र है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में "यौवन की दुरभि आंकाक्षा–समस्त संसार को अपने में समा लेने की उत्कट अभिलाषा । मत्स्यंगंधा की प्रेरक भावना है। यह भाव–नाट्य एक प्रतीक रूपक है–मत्स्यगंधा चिर यौवन की प्रतीक है, काम यौवन का संगीत है, शान्तनु संसार है, पाराशर मानव के यौवन की दुर्बलता है। यह गीतिनाट्य काव्य और गीतिमय प्रतिभा से परिपूर्ण है। बिम्ब योजना और प्रतीक भाव के अनूठेपन से यह काव्य के अधिक निकट है। इसमें पात्रों के मनोवेगों

और अन्तर्द्वन्द्व की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है।''

विश्वामित्र

विश्वामित्र एक प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है। भट्ट जी के अपने शब्दों में "विश्वामित्र पुरूष है, मेनका नारी और उर्वशी उन दोनों का संघर्ष है। विश्वामित्र अंहकार है, बल है, शक्ति का प्रतीक है, अभिमान है और नर। मेनका प्रेम है, कोमलता है, भाव प्रबलता है, नम्रता है, स्फूर्ति है, जीवन है, और है नारी।''[१]

इस भाव प्रधान प्रतीकात्मक गीतिनाट्य का विषय नारी के रूप–सौन्दर्य की विजय और पुरूष के अहं की पराजय है। विश्वामित्र सांसारिक भोगों से विमुख तपस्यारत ऐहिक जीवन मूल्यों का निषेध करते हैं, मेनका अपने दिव्य रूप और नारी यौवन के प्रभाव से उनके जीवन मूल्यों को खण्ड–खण्ड कर देती है। उस नारी सौन्दर्य पर भी विश्वामित्र समर्पित है–

सब प्रपंच'' आध्यात्म'' एक तुम सत्य हो।
यह सौन्दर्य समग्र सृष्टि का मूल है।

राधा

राधा गीतिनाट्य भी भट्ट जी का प्रतीकात्मक भावपूर्ण गीतिनाट्य है। राधा आवेग की प्रतिमूर्ति और प्रतिदानशून्य प्रेम की प्रतीक है। कृष्ण गीता के विवेकी, मोह–रागातीत जीवन्मुक्त कृष्ण की प्रतिमूर्ति है। राधा के रूप में नारी स्वभाव की कोमलता और उसके अन्तर्जगत के भावों की उथल–पुथल का अंकन इस गीतिनाट्य का विषय है। राधा और कृष्ण की प्रतीक कथा द्वारा निष्काम प्रेम और विवेक का संघर्ष दिखाया गया है जिसमें विवेक को प्रेम के सामने झुकना पड़ता है। इस नाटक में नाट्यत्व की अपेक्षा गीतितत्त्व को प्रध ाानता दी गयी है। वस्तुतः विश्वामित्र मत्स्यगंधा और राधा ही गीतिनाट्यों की अपेक्षाओं को पूर्ण करते हैं। ये गीतिनाट्य ही युग प्रवर्तक हैं।

गिरजाकुमार माथुर के गीतिनाट्य

''कल्पान्तर, दंगा, राम, धरादीप, इन्दुमति, व्यक्तिमुक्त, स्वर्ण श्री, अमर हे आलोक आदि गिरजा कुमार माथुर के प्रमुख गीतिनाट्य है । प्रायः ये सभी

---

१. उदयशंकर भट्ट : विश्वामित्र की भूमिका

लघु गीतिनाट्य मुक्त छन्द में लिखे गये हैं। इन गीतिनाट्यों में रागरागायिक जीवन को अपनी विषय–सामग्री बनाकर प्रतीकों के माध्यम से उसकी सूक्ष्म अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया गया है।

''कल्पान्तर'' अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर अणु युद्व की समस्या पर प्रतीक–पद्धति में लिखा गया गीतिनाट्य है। भारत के विभाजन के पूर्व साम्प्रदायिक समस्याओं पर **''दंगा''** गीतिनाट्य लिखा गया है इसमें एक नगर की गली में रहने वाले मध्यमवर्गीय परिवार के संकट को अत्यन्त ही यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।**"राम"** गीतिनाट्य राम–कथा के उत्तर पक्ष पर आधारित ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु और राम के जीवन दान देने की कथा पर आध ारित है। इसमें राज्य–शक्ति तथा प्रजा अथवा जन साधारण की युगीन समस्याओं तथा अन्योन्याश्रित सम्बन्धों के चित्रण का प्रयास किया गया है । **'धरा-दीप'** गीतिनाट्य प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग तक की भारतीय संस्कृति का दिग्दर्शन प्रस्तुत करता है। इसमें समुद्र मंथन चौदह रत्नों की प्राप्ति, देव और दानव का संग्राम तथा आर्य–अनार्यो के संघर्ष का विश्लेषण किया गया है। इन्दुमती कालीदास के रघुवंश की कथा पर आधारित मौलिक गीतिनाट्य है। इसमें इन्दुमति और आज के विवाह से संबंधित मधुर श्रृंगाार रस का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार गिरिजाकुमार माथुर ने अपने गीतिनाट्यों में कथावस्तु का चयन समसामयिक जीवन से किया है तथा प्रतीकों के माध्यम से जीवनगत् समस्याओं को चित्रित करने में सामान्यतः सफल रहे हैं। चिन्तन परक दृष्टि और कवित्वपूर्ण भवाभिव्यंजना के कारण इन नाटकों का नाटकत्व क्षीण है। विषय–वस्तु के कलात्मक चित्रण पर अधिक ध्यान दिया गया है।

सिद्धनाथ कुमार के गीतिनाट्य

सिद्धनाथकुमार के **''सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक''** में पांच गीतिनाट्य संकलित हैं। **सृष्टि की सांझ** में तृतीय विश्वयुद्ध की विभीषिका की कल्पना की गई है; **लौह देवता** औद्योगीकरण से उत्पन्न सामाजिक विषमता पर प्रभावी है। **संघर्ष** में कला के विकास को चित्रित किया गया है, **विकलांगों का देश** में 'विकलांगों का देश चाहिए नहीं हमें' की ध्वनि को प्रस्तुत करता है जहां व्यक्तित्व से व्यक्ति को प्रमुखता दी गई है। **बादलों का शाप** सामाजिक असमानता को प्रस्तुत करने में समर्थ है।

सिद्धनाथ कुमार के नाटक रेडियो रूपक हैं, रंगमंच के लिए नहीं लिखे गये। अतः इनमें मूल समस्या भी एक है और उसी को केन्द्र मानकर रूपक

रचना का निर्वाह किया गया है। संगीत की वाद्य ध्वनियों से उत्पन्न नाटकीय अभिनेयता को संकेतित किया गया है । इन नाटकों में पात्रों का सशक्त चित्रण सम्भव नहीं हो सका है.। कोई भी पात्र अपना प्रभाव छोड़ने में असमर्थ रहा है। संवाद की दृष्टि से भी इन नाटकों में व्यंजना शक्ति का अभाव है। संवाद ध्वनित न होकर कथित है। लम्बे संवाद व्याख्या परक हो गये हैं, अतः उनमें नाटकीयता भी नहीं रह पाई है। इन रेडियों रूपकों की ही तरह पंत जी के गीतिनाट्य (**रेडियो रूपक ?**) भी स्थायी प्रभाव छोड़ने में असमर्थ रहे हैं।

धर्मवीर भारती का ''अन्धा युग''

अन्धायुग हिन्दी गीतिनाट्य में एक युगान्तरकारी चरण है। हिन्दी के गीतिनाट्यों में केवल इसे ही एक सफल गीतिनाट्य कहा जा सकता है। लेखक ने स्वयं लिखा है कि " मूलतः यह काव्य(गीतिनाट्य) रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखा गया था। [१] स्पष्टतः ही इसमें रंगमंचीय निर्देशन में कोई त्रुटि नहीं पाई जाती। यहां तक कि मंच विधान को थोडा बदल कर खुले मंच वाले लोक नाट्य में भी परिवर्तित किया जा सकता है।[२]

अंधायुग हिन्दी का एकांकी गीतिनाट्य न होकर पांच अंकों का पूरा गीति नाट्य है। पूर्ववर्ती गीतिनाट्य एकांकी रहे हैं। इस गीतिनाट्य की कथावस्तु में महाभारत के युद्ध का अठ्ठारहवें दिवस से लेकर प्रयाग तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक का वर्णन है। महाभारत का युद्ध–जन्य सत्यासत्य, कुण्ठा, स्वार्थान्धता एवं अनैतिकता का काल रहा है, रामायण काल से भी अधिक आचार विहीन और नैतिक मूल्यों के स्तर से नीचे। नाटककार ने इसी पर्त के नीचे आदर्श ज्योति, कर्मवाद और आस्था के तन्तुओं को खोजने का निरन्तर प्रयास किया है।

जानकीवल्लभ शास्त्री के गीतिनाट्य

जानकी वल्लभ शास्त्री ने अनेक काव्यनाटक लिखे है। इसमें **गंगावतरण, उर्वशी, उर्वशीमानभंग, पाषाणी, तमसा, गोपा, मदन-दहन, इरावती** आदि गीतिनाट्य पौराणिक या ऐतिहासिक हैं। **आदमी** सामायिक रचना है। शास्त्री

---

१. अंधायुग – निर्देश पृ० ५
२. अंधायुग – निर्देश पृ० ५

जी ने अपने गीतिनाट्यों को संगीतिका कहा है। ये सभी संगीतिकायें भाव–प्रधान अधिक हैं। इन गीतिनाट्यों में अन्त्यानुप्रसासिक छन्द है। लेखक का मत है कि उसने "अभी तक की नाट्य रचनाओं में संगीतिका की शाब्दिक सार्थकता को लक्ष्य करते हुए जैसे गेयपदों ही क्यों, परिसंवादों के लिये भी अन्त्यानुप्रासों की अनिवार्यता सी स्वेच्छया स्वीकृति है।"[1] गेयता और अभिनय में सर्वत्र संगति नहीं रहती, अतः छन्द और अन्त्यानुप्रास का आग्रह नाटकीयता को भंग करता सा प्रतीत होता है। ये संगीतिकायें रेडियो के लिये लिखी गई थी, फिर भी इनके अभिनय को किन्चित् परिवर्तन से मंच पर अभिनय करने की भी गुंजाइश लेखक ने रख छोड़ी है।

अन्य गीतिनाट्यकार

अन्य गीतिनाट्यकारों में **गिरिजाकुमार माथुर का इन्दुमती, निराला जी** का **पंचवटी प्रसंग** और **मैथिलीशरण गुप्त** का **'लीला'** तथा **सियारामशरण** का **उन्मुक्त** और **कृष्णा** महत्वपूर्ण हैं। नव्य युग के रचनाकारों में **रामधारी सिंह दिनकर** का **मगध महिमा, हिमालय का संदेश** और परिपक्व रचना **'उर्वशी'** विशेष ध्यातव्य है।

दिनकर के गीतिनाट्य

दिनकर के तीन गीतिनाट्य प्रसिद्व हैं– **मगध महिमा, हिमालय का संदेश** और **उर्वशी। मगध महिमा** इनकी प्ररम्भिक रचना है जिसकी परिपक्वता हमें उर्वशी में मिलती है। मगध महिमा का परिवेश ऐतिहरसिक है– इतिहास ही पात्र के रूप में मगध का परिचय देता है। हिमालय का संदेश विश्वशान्ति का संदेश देता है। **उर्वशी उनकी प्रौढतम्** तथा सर्वाधिक श्रेष्ठ रचना है जिसका कथानक ऋग्वेद से लिया गया है।

पंत जी के गीतिनाट्य

ज्योत्स्ना

ज्योत्सना की रचना सुमित्रानन्दन पंत ने १६३४ में की थी। कविवर निराला के शब्दों में "**ज्योत्स्ना** में उनका पहला प्रिय–भावमय श्वेत वाणी का कोमल कवि रूप ही दृष्टिगोचर होता है नाटककार का नहीं।" ज्योत्स्ना पाश्चात्य (allegory) के ढंग का रूपक है जिसमें अमूर्त भावनाएं एवं विचार मूर्त पात्रों के रूप में प्रकट होकर किसी सिद्धान्त विशेष की स्थापना करते हैं।

इस नाट्य रूपक में संसार में सर्वत्र फैली अशान्ति, हिंसा, संघर्ष आदि को दूर करने के लिए रूमानी ढंग का समाधान प्रस्तुत किया गया है। इसमें पंत जी की कल्पना क्षमता और कवित्व के परिचय के साथ ही दार्शनिक विचार धारा के दर्शन होते हैं।

पंत जी ने जो विकसित मानववाद और काल्पनिक समाजवाद द्वारा अपना नया स्वर्ग निर्माण किया है, उसी का उन्होंने इस नाटिका में आख्यान किया है। पंत जी ने सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक प्रेम एवं कला संबंधी भावनाएँ संध्या, ज्योत्सना, छाया, झींगुर, पवन जैसी अमूर्त वस्तुओं के माध्यम से व्यक्त की है। पंत जी ने आधुनिक संसार की समस्याओं को सुलझाने के लिए कुछ मौलिक सिद्धान्तों की सृष्टि भी की है और उन्हीं की वाहिका स्वरूप ज्योत्स्ना है। इसकी कथावस्तु बहुत ही साधारण है। संसार में सर्वत्र ऊहा–पोह और घातक क्रान्ति देखकर इन्दु उसके शासन की बागडोर अपनी महिषी ज्योत्स्ना को दे देता है। स्वर्ग से भू पर आकर पवन और सुरभि अथवा स्वप्न और कल्पना की सहायता से वह संसार में प्रेम का नवीन स्वर्ग, सौन्दर्य का नवीन आलोक , जीवन का नवीन आदर्श स्थापित कर देती है।

पंत जी का संदेश **ज्योत्स्ना** के कवि कुमार (जो स्वयं पंत जी का ही प्रतिरूप है) के शब्दों में व्यक्त होता है " जन्म–मरण, सुख–दुख जीवन के बाह्य विरोधी एवं प्रतीक आविर्भावों के बीच मनुष्य को अपनी सहज बुद्धि से काम लेकर एक बार सामंजस्य स्थापित करना ही पड़ता है। मनुष्य के आधे से अधिक असन्तोष का कारण बुद्धिजन्य है। जीवन के सम्यक् ज्ञान से ही जीवन का सम्यक् उपभोग हो सकता है। समस्त विरोधों के बीच जीवन की अविच्छिन्न एकता खोज कर उस पर हृदय केन्द्रित कर लेना होता है, तब मनुष्य जीवन के उस चरम सूत्र को ग्रहण कर लेता है, जिसके छोरों में बंधे सुख–दुख, जन्म–मरण आदि द्वन्द्व तुला के पलड़ों की तरह–उठते गिरते रहते हैं।"[१]

ज्योत्स्ना का 'दृश्य विधान', गीत और दार्शनिक उद्‌देश्य बहुत ही सशक्त है। दृश्यों के चित्रण में पन्त जी ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। कवि की नूतन दृष्टि और चितेरी कल्पना ने संध्या, ज्योत्स्ना, छाया, झींगुर और एक प्रकार से सभी काव्यगत अमूर्त उपादानों का बड़ा ही सजीव एवं सच्चा चित्रण किया है। प्रत्येक चित्र व्यंजना की सहायता से अपूर्व सत्यता लिये हुए है। झींगुर जैसे चिर परिचित जीव के विषय में पंत जी लिखते है "तांबे का सा

१. सुमित्रानंन्दन पंत कृत ज्योत्स्ना पृ० ७८

रंग, दृढ़ पुट्ठे, लौह–तार सी नाड़ियां, सख्त चौडा पंजा, न मुड़ने वाली अंगुलियॉ, कांच की सी चमकीली भाव–शून्य आंखे, मोटे ओठ, तीर सी तनी लम्बी–लम्बी बंटी मूंछे इस मनुष्य के अंगों में मांस का लचीलापन नहीं, वे मशीन् के पुरजों की तरह एक निश्चित यांत्रिक भाव से संचालित हो रहे हैं।[१] ज्योत्स्ना में अनेक प्रतीकात्मक गीत है। कहीं छाया का अलसाया हुआ गीत है तो कहीं पवन का सनसन गान है। पंत जी के सभी गीतों में भावों की सुकुमारता ,कल्पना की सूक्ष्म ग्राहकता और शाब्दिक–शब्द की चित्रमयता है।

शिल्पी, रजत शिखर और सौवर्ण

शिल्पी, रजत शिखर और सौवर्ण पंत जी के गीतिनाट्यों के संकलन है। इनमेंक्रमशः तीन , छह और तीन गीतिनाट्य संगृहीत हैं जो अंशतः आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रो से प्रसारित हो चुके हैं। पंत जी के इन गीतिनाट्यों में उनका कल्पना–सौन्दर्य और चिन्तन परक रूप देखने को मिलता है।

शिल्पी

शिल्पी नाट्य संग्रह में तीन गीतिनाट्य **शिल्पी, अप्सरा,** एवं **ध्वंस शेष** है। **शिल्पी** गीतिनाट्य में पंत जी ने कलाकार के जीवन की यथार्थवादी व्याख्या उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। **अप्सरा** गीतिनाटय पंत जी सूक्ष्म–सौन्दर्य परक दृष्टि का परिचायक है। स्वयं पंत जी के ही शब्दों में "यह अप्सरा सौन्दर्य चेतना का रूपक है।" पंत जी ने सूक्ष्म सौन्दर्य चेतनापरक दृष्टि से अपने गीतिनाट्यों में मानव व्यक्तित्व का अन्वेषण तथा सौन्दर्य का यथार्थ और सूक्ष्म विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। **'ध्वंस शेष** में विज्ञान और भौतिकवाद से तृप्त सृष्टि को शान्ति और सुख की खोज में प्राचीन संस्कृति की ओर उन्मुख करना पंत जी का लक्ष्य रहा है। अर्थ, राजनीति, विज्ञान आदि विषयों के दार्शनिक चिन्तन से यह नाटक गम्भीर हो गया है। यहां पंत जी ने अध्यात्म की प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयास किया है।

रजत शिखर

रजत शिखर में संकलित गीतिनाट्य अपेक्षाकृत अन्तश्चेतना वादी हैं। इसमें कवि ने (अपने ही शब्दों में) "जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल संचरणों का द्वन्द्व" प्रदर्शित किया है। **फूलों का देश, उत्तरशती, शुभ पुरूष, विद्युत वसना और शरद चेतना** सभी नाटक अध्यात्मवादी संकेत करते हैं। **फूलों का देश** सांस्कृतिक चेतना का धरातल है। पंत जी ने इस गीतिनाट्य में आज के

१. सुमित्रानन्दन पंत–ज्योत्स्ना पृ० ४२

आध्यात्मवाद, भौतिकवाद तथा आदर्शवाद वस्तुवाद या यथार्थवाद संबंधी संघर्षों को अभिव्यक्ति देकर उनमें परस्पर समन्वय लाने की चेष्टा की है। **उत्तरशती** में बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध संग्राम का निदर्शन देकर उत्तरार्द्ध के कल्याणप्रद विकास की ओर आशा का संदेश है। **शुभ पुरूष** गांधी जी के महत् व्यक्तित्व और पावन चरित्र का प्रतीक है। इसमें गांधी जी के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व का चित्रण किया है। **विद्युत वसना** स्वाधीनता के विकास का स्वरूप है जिसमें आत्मनिर्भरता एवं एकता का संदेश है और शरद प्रकृति के सौन्दर्य का ऋतु परक निरूपण है।

सौवर्ण

सौवर्ण गीतिनाट्य संग्रह में **सौवर्ण, स्वप्न और सत्य** तथा **दिग्विजय** गीतिनाट्य संगृहीत हैं। **सौवर्ण** संक्रमणकालीन मानव मूल्यों के विकास का प्रतीक है। **स्वप्न और सत्य** आदर्श और वास्तविकता के बीच युग–संघर्ष का द्योतक है। **दिग्विजय** जीवन सत्य की बहिरन्तर विजय का साक्षी बनकर युग सत्य को प्रस्तुत करता है। यह गीतिनाट्य बाद के संस्करणों में संकलित किया गया है।

पंत जी के प्रायः अधिकांश गीतिनाट्य प्रतीकात्मक हैं जो रेडियो को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। पंतजी के गीतिनाट्य शिल्प की दृष्टि से बड़े ही दुर्बल है। इनमें अन्तः संघर्ष का अभाव है। इन नाटकों में दार्शनिक विवेचन और चिन्तन अधिक है, अभिनेयता कम। अतः ये नाटक सैद्धान्तिक मात्र बनकर रह गये हैं। संवाद की दृष्टि से भी ये नाटक नीरस एवं निर्जीव से प्रतीत होते हैं। इनमें संवादों के लम्बे सम्भाषण गीतिनाट्य की आत्मा का ही हनन कर देते हैं। सबसे बड़ी दुर्बलता तो काव्यात्मकता में नाटकीय अभाव है जिससे ये गीतिनाट्य केवल पाठ्य काव्य रह गये हैं। दार्शनिक विचार धाराओं के प्रतिपादन से इनकी नाटकीयता भंग हो गयी है।

अध्याय तृतीय

पंत जी के गीतिनाट्य

- ज्योत्स्ना से शिल्पी तक संघर्षवादी
- सौवर्ण के गीतिनाट्य—आध्यात्मवादी
- रजत शिखर के गीतिनाट्य—अन्तश्चेतनावादी/दार्शनिक

अध्याय तृतीय

पंत जी के गीतिनाट्य

ज्योत्स्ना से शिल्पी तक गीतिनाट्य संघर्षवादी

ज्योत्स्ना से **शिल्पी** गीतिनाट्यों की रचना तक पंत जी केवल काव्य रचना करते रहे। इस कविता जगत में उन पर नाना प्रकार के प्रभाव पड़े—गांधीवादी विचार दर्शन तथा समाजवाद का साम्यवादी दृष्टिकोण प्रमुख थे। उनका व्यक्तित्व संघर्षवादी दिखाई देता है। इस काल में पंत जी गांधी-दर्शन से प्रभावित थे। साथ ही ऐसी काव्य धारा का प्रभाव भी पंत जी पर पड़ा जो कि मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली। अतः वे मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जन–जीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुए। ज्योत्स्ना और शिल्पी के गीतिनाट्यों में इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इस बीच पंत जी ने काव्य गीतों की रचना की है। पंत जी भावुक कवि है। पश्चिमी कला और सभ्यता की छाप होने पर भी पंत जी सच्चे आस्तिक हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे। विश्व में व्याप्त यही एक अज्ञात शक्ति कभी–कभी प्रियतम के रूप में स्वप्न में आकर पंत जी को छायावन में फिराती है और वे विस्मित से कह उठते हैं–

न जाने कौन अहे द्युतिमान,
जान मुझको अबोध अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान
फूंक देते छिद्रों में गान
अहे सुख दुख के सहचर मौन
नहीं कह सकता तुम हो कौन [१]

वे तो प्रियतम को अणु–अणु में व्याप्त देखकर उसकी मधुर छवि का आभास पाते हैं।

मुस्करा दी थीं क्या तुम प्राण
मुस्कराया था स्वर्ण–विहान।[२]

---

१. डा. नगेन्द्र – सुमित्रानन्दन पंत पृ. ३०
२. डा. नगेन्द्र – सुमित्रानन्दन पंत पृ. ३०

ईश्वर की महत्ता के साथ ही वे जीव की महत्ता को भी स्वीकार करते हैं मानव के गौरव का गुणगान करते हैं–

– मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन ।

जीव, जगत, प्रकृति, सब कुछ प्रिय है। क्योंकि प्रकृति ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। जीवन भी सत्य और सुन्दर है।

अतः वे कह उठते है
जगजीवन में उल्लास मुझे
नव आशा, नव अभिलाष मुझे

इस विषम जीवन को पूर्ण बनाने के लिए उसके अन्तर में प्रवेश करने की आवश्यकता है।

जीवन के अन्तस्तल में
नित बूड़–बूड़ रे नाविक ।

जो कि स्वप्न और कल्पना की सहायता से मनुष्य के सम्मुख जीवन की उन्नत मानव–मूर्तियां स्थापित करके पूरा हो सकेगा। इसके लिए आशा, अभिलाषा, सत्य, प्रेम, सहृदयता, त्याग, उद्यम और सहानुभूति उपादान हैं। यही विचारानुभूति पंत जी को उस संघर्ष की ओर उन्मुख कर रही थी जो विचार–शिल्प से अन्तः–बहिर्संघर्ष के सामाजिक स्वरूप की रचना के लिए प्रेरणा बनी और प्रतीक माध्यम से शिल्पी के गीतिनाट्यों में वर्णित है।

राजनीतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व

जीवन को पूर्ण बनाने के लिए मनुष्य ने हमेशा शासन को महत्ता दी है। राजनीतिक बंधन ही नहीं नैतिक, सामाजिक, मानसिक, कायिक अनेक श्रृंखलाओं में अपने को बांध कर मनुष्य ने मिथ्या के अनियमों और विद्रोह से मुक्ति पायी है। मि० नीलरतन के माध्यम से पंत जी ने शासन के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं "इसी प्रकार चाहे राजतन्त्र हो अथवा प्रजातंत्र मानव सत्य के नियमों से परिचालित होने पर ही वे मनुष्य जाति की सुख–समृद्धि के पोषक बन सकते हैं। सच तो यह है कि मनुष्य को शासन पद्धति अथवा उसके नियमों का आविष्कार नहीं करना है, उसे केवल सत्य की जिस प्रणाली से समस्त विश्व चलता है उसे पहिचान भर लेना है।"[१] उसके लिए शासकों का जनता के प्रति

१. डा. नगेन्द्र– सुमित्रानन्दन पंत पृ० ३२

सेवकों का सा भाव होना चाहिए– यही लोक विज्ञान की चरम परिणती है।

समाज सापेक्ष आदर्श - ज्योत्स्ना

पंत जी का सामाजिक आदर्श पर एक विचार है जिसे कवि ने ज्योत्स्ना के पात्र मि० खेर द्वारा व्यक्त किया है, " जिस प्रकार व्यक्ति समाज का मान नहीं हो सकता उसी प्रकार समाज भी व्यक्ति का मान नहीं बन सकता। हमारे सामाजिक एवं वैयक्तिक आदर्शों का वैषम्य एवं विभिन्नता इसका ज्वलन्त प्रमाण है। समाज एवं व्यक्ति में सामंजस्य स्थापित करना ही होगा।"[१] इसके लिए हृदय की शिक्षा की आवश्यकता है क्योंकि हृदय की शिक्षा में ही हमारी विश्व–संस्कृति के, मानव–प्रेम के एवं समस्त जीव–कल्याण के मूल अन्तर्निहित हैं।[२]

"ज्योत्स्ना" में अपनी प्रतिछाया कवि कुमार के शब्दों में पंत जी का संदेश है "जन्म–मरण, सुख–दुख, जीवन के बाह्य विरोधी एवं प्रतीक आविर्भावों के बीच मनुष्य को अपनी सहज बुद्धि से काम लेकर एक बार सामंजस्य स्थापित करना ही पड़ता है। मनुष्य के आधे से अधिक असन्तोष का कारण बुद्धिजन्य है। जीवन के सम्यक् ज्ञान से ही जीवन का सम्यक् उपभोग हो सकता है। समस्त विरोधों के बीच जीवन की अविच्छिन्न एकता खोज कर उस पर हृदय केन्द्रित कर लेना होता है, तब मनुष्य जीवन के उस चरम सूत्र को ग्रहण लेता है, जिसके छोरों में बंधे सुख–दुःख, जन्म–मरण आदि द्वन्द्व तुला के पलड़ों की तरह उठते गिरते रहते हैं।"[३] पंत जी ने पाश्चात्य जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व के अध्यात्म प्रकाश की आत्मा भर एवं अध्यात्मवाद के अस्थि–पंजर में भूत या जड़–विज्ञान के रूपरंग भरकर, दर्शन की यह "सापेक्षतः परिपूर्ण" मूर्ति निर्मित की है। उनकी यह विचारधारा विकसित साम्यवाद और काल्पनिक समाजवाद के सामंजस्य के रूप में उद्गीर्ण हुई है।

वेदना-भाव

पंत जी ने जीवन–सरिता के प्रवाह को शाश्वत माना है। अतः उसमें जन्म–मरण, सुख–दुख का चिरबन्धन लगा हुआ है । पंत जी के ही शब्दों में–

जग जीवन में है सुख–दुख

१. ज्योत्स्ना सुमित्रानन्दन पंत पृ० ७४
२. ज्योत्स्ना सुमित्रानन्दन पंत पृ० ७८
३. ज्योत्स्ना – पृ० ३२–३३

सुख दुःख में ही जगजीवन ।

यह पंत जी का प्रिय विषय है और इस विषय में **ग्रन्थि** से **गुंजन, गुंजन** से **ज्योत्स्ना, ज्योत्स्ना** से **युगान्त** में उनकी विचारधारा में एक विकास पाया जाता है। पंत जी अधिकतर जीवन को उल्लासमय ही अनुभव करते हैं। **ग्रन्थि** और **पल्लव** का युवक कवि वेदना और आंसू के प्रति आकृष्ट होकर उनको ही जीवन का मूल आश्रय समझते थे। परन्तु समय के साथ नवीन गाम्भीर्य और गाम्भीर्य के साथ ज्यों–ज्यों नवीन संयम आता गया, पंत जी की विचारधारा में एक परिवर्तन दिखायी देने लगा। जीवन के प्रति कवि का दृष्टिकोण बदल गया, उसमें करूणभाव त्यागकर नव आशा, नव अभिलाषा का संचार हो गया। ज्योत्स्ना में यही भावना अधिक प्रस्फुटित हो जाती है और कवि कहता है –

जग जीवन नित नव नव
प्रतिदिन प्रति क्षण उत्सव
जीवन शाश्वत वसन्त
अगणित कलि कुसुम वृन्त
सौरभ, सुख, श्री अनन्त।[१]

इसके पश्चात् जगत में फिर से ज्योतिर्मय जीवन लाने की कल्याण कामना से ओत प्रोत हो उठता है। यह जीवन के प्रति पंत जी का आशावादी दृष्टिकोण है।

शिल्पी के गीत नाट्य-

"**शिल्पी** संग्रह का **अप्सरा** गीतिनाट्य पंत जी की सूक्ष्म सौंदर्य परक दृष्टि का परिचायक है। स्वयं पंत जी के शब्दों में "यह (**अप्सरा**) सौन्दर्य चेतना का रूपक है।"[२] पंत जी ने सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना–परक दृष्टि से अपने गीतिनाट्य में मानव व्यक्तित्व का अन्वेषण तथा सौन्दर्य का यथार्थ और सूक्ष्म विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। इसमें सन्देह नहीं कि पंत जी को इसमें आंशिक सफलता मिली है क्योंकि पंत जी की दृष्टि मूलतः सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति, कल्पना और चिन्तन की ओर विशेष रूप से उन्मुख रही है। प्रस्तुत गीतिनाट्यों में उनका यह रूप सर्वत्र विद्यमान है। पंत जी की इस सुकुमार प्रवृत्ति ने ही उनके गीतिनाट्यों में उन्होंने वर्तमान का स्वर मुखरित नहीं होने दिया। इन गीतिनाट्यों

१. डॉ. नगेन्द्र सुमित्रानंदन पंत पृ० ३५
२. कृष्ण सिंहल– हिन्दी गीतिनाट्य पृ० १०१

में उन्होंने वर्तमान की पृष्ठभूमि पर स्वर्ण–भविष्य के निर्माण की कोशिश की है किन्तु, अपनी रंगीन कल्पनाओं के कारण पंत जी वर्तमान और भविष्य के संबंध स्थापन में सफल नहीं हो सके हैं। कोमल प्रकृति और कल्पनाजीवी कवि पंत के लिए वर्तमान के कठोर यथार्थ और उसमें निहित संघर्षों का अंकन और विश्लेषण करना सम्भव नहीं है। उनके तीनों गीतिनाट्य संग्रह इस तथ्य के द्योतक हैं।

शिल्पी गीतिनाट्य संग्रह का प्रथम गीति–नाट्य **'शिल्पी'** है। शिल्पी में पंत जी ने कलाकार के जीवन की यथार्थवादी व्याख्या उपस्थित करने का प्रयास किया है। सौन्दर्य के कलाकार के अन्तस् में उद्भूत और विकसित संघर्ष की भावपूर्ण अभिव्यक्ति करने में पंत जी काफी अंशों में सफल रहे हैं। आज का कलाकार सामान्य जन के मानसिक स्तर से किंचित ऊपर होने के कारण समस्याओं से समझौता नहीं कर पाता, अतः अन्तर्संघर्ष से पीड़ित रहता है। सहसा उसकी कला जब वास्तविकता के धरातल का स्पर्श करती है तो वह तृप्त हो जाता है।

शिल्पी संग्रह का दूसरा गीतिनाट्य **ध्वंस शेष** है। यह गीतिनाट्य पश्चिम की भौतिकवादी अनीश्वरवाद का प्रतिरोधी जनक पूर्ण आस्थावादी है और आनन्दवादी संस्कृति का समर्थक है। राजनीतिक अर्थ और विज्ञान की विभीषिका के ऊपर आनन्दवाद की प्रतिष्ठा है। कल्पना और गहन दार्शनिक चिन्तन के वैभव से संयुक्त होने पर इस गीतिनाट्य में गाम्भीर्य और दुरूहता आ गई है। स्थूल का परित्याग कर सूक्ष्म का ग्रहण ही उनके गीतिनाट्यों का मूलविषय है। उनके गीतिनाट्य प्रायः

समस्या मूलक रहे हैं। चिन्तन की प्रधानता के कारण उनका संबंध स्वभावतः किसी न किसी मौलिक समस्या से रहा है। व्यक्ति और समष्टि के संघर्ष से उद्भूत समस्याओं को अपने गीतिनाट्य में समाहित करने का उन्होंने प्रयत्न किया है। किन्तु गहन चिन्तन और अतिशय कल्पना के कारण इनसे अपना रागात्मक संबंध स्थापित नहीं कर सके हैं क्योंकि दुर्बोध चिन्तन भावनाओं को स्फुरित होने का अवकाश नहीं देता।

शिल्पी वस्तुतः पंत जी का दूसरा गीतिनाट्य संग्रह है, अतः **रजत शिखर** से किंचित सहज ग्राह्य है क्योंकि यह जीवन के अति निकट है। यदि **रजत शिखर** की तुलना में इसका अध्ययन करें तो **रजत शिखर** में " अरविन्द की चक्कादार उर्ध्वगमन की सीढ़ियों से गुजरना पड़ता है जो जन सामान्य के वश

के बाहर है। ''किन्तु, शिल्पी के ''काव्य रूपक'' परिवेश पर भी प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। इसमें लम्बे–लम्बे रूक्ष सैद्धान्तिक भाषक संघर्ष की अत्यधिक विरलता के कारण नाटकीय तत्व का सर्वथा अभाव है। शिल्पी में शिष्या, गांधी, पटेल आदि की भंगिमाओं और गुणों पर जो प्रकाश डालती है वह नीरस और उबा देने वाला हो गया है। दूसरे दृश्य में पांच सात व्यक्तियों के दुरूह वक्तव्य है जो एक रस है और मंच के उपयुक्त नहीं हैं अन्तिम दृश्य में नाटकीय संघर्ष तक ले जाने का प्रयास दिखायी पड़ता है, पर अंत में पुनः सिद्धान्तों के भंवर में वह डूब जाता है। **ध्वंश शेष** दुरूहतर और **अप्सरा** दुरूहतम हो गया है।[१] इनके माध्यम से जिस '' नवजीवन निर्माण का स्वप्न '' देखा गया है और जिस सौन्दर्य–चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया गया है वह सब कुछ वाग्जाल में इस प्रकार खो जाता है कि श्रोता अथवा पाठक के पल्ले प्रायः कुछ नहीं पड़ता। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से विचार करने पर दोनों संग्रह एक ऐसे कर्कश और घुटन पूर्ण वातावरण की सृष्टि करते हैं कि पाठक तथा श्रोता को उपलब्धि में शून्य ही हाथ लगता है।[२]

सौवर्ण के गीतिनाट्य - आध्यात्मवादी

सौवर्ण के गीतिनाट्य पंत जी की आध्यात्मवादी प्रवृत्ति और दर्शन के गीतिनाट्य हैं। मार्क्सवादी–भौतिक संघर्ष, निरीश्वरवाद अथवा अनात्मवाद से पंत जी जैसे कोमल–प्राण आस्थावादी व्यक्ति को परितोष प्राप्त नहीं हो सका। उसके लिए आस्तिकता अनिवार्य हो जाती है। आत्मा और ईश्वर में ही अन्त में उसे जीवन और जगत का समाधान मिलता है। अतएव **स्वर्ण धूलि** और **स्वर्ण किरण** में, सौवर्ण के पूर्वरंग के रूप में, पंत जी का परिवर्तित दृष्टिकोण दिखाई देता है। यह उनकी आध्यात्मिकता सौवर्ण के पूर्व रंग के रूप में, चेतना है।

पंत जी की आध्यात्मिकता मनोवैज्ञानिक भी है। इसका संबंध सूक्ष्म चेतना से है। पंत जी को आत्मा की सत्ता में अटल विश्वास है परन्तु, वे आत्मा को चेतना का सूक्ष्म रूप मानते हैं, अपने में सर्वथा निरपेक्ष, भौतिक जीवन में एकान्त, अविकृत उसका पार्थिव अस्तित्व नहीं है। प्रवृत्तिमय होने के कारण आध्यात्मिकता स्वभावतः आनन्द रूपिणी है, भूतरत जीवन के काले लौह–पाश से मुक्त अन्तश्चेतना का सोना है। भौतिकता अथवा भूत– लिप्सा मरणोन्मुखी

---

१. डा. बच्चन सिंह– हिन्दी नाटक पृ० १५४

२. डा. बच्चन सिंह– हिन्दी नाटक पृ० १५५

और नाशमयी है और आत्मा का सहज उल्लास सृजनशील है। अतएव पंत जी की इस नवीन आध्यात्मिक चेतना में प्रेम के माधुर्य से समन्वित जीवन की जागृति, सृजन की स्फूर्ति और निर्माण स्वप्नों का सौन्दर्य–वैभव है

खुला अब ज्योति द्वार,
उठा नभ प्रीति द्वार,
सृजन शोभा अपार।
कौन करता अभिसार,
धरा पर ज्योति भरण,
हंसी लो स्वर्ण–किरण।

इस अध्यात्म–चेतना का मूलतत्व है समन्वय–व्यष्टि और समष्टि में अर्थात् ऊर्ध्व विकास और रामदिक् विकास का समन्वय; बहिरन्तर अर्थात् भौतिक और आध्यात्मिक अर्थात् आन्तरिक जीवन का समन्वय–जिसे पाश्चात्य दर्शन में विज्ञान और ज्ञान ; और प्राच्य दर्शन में अविद्या (भौतिक ज्ञान) और विद्या (ब्रह्मज्ञान) कहा गया है।

यही मानव का देवत्व है जिसमें कि जीवन के स्वर्णिम वैभव पर आत्मा का अवतरण प्रतिष्ठित है ; इसी के आधार पर विश्व–संस्कृति की स्थापना हो सकती है, जो इस युग की समस्याओं का एकमात्र समाधान है।

पंत जी की प्रवृत्ति इस जीवन–दर्शन की ओर आरम्भ से ही रही है। मार्क्स दर्शन के प्रभाववश **युगवाणी** और **ग्राम्या** में पंत जी की चिन्तन प्रवृत्ति बहुत कुछ बहिर्मुखी हो गयी थी। अतः इस चिन्तनधारा का स्वाभाविक विकास क्रम टूट गया। सन् १६४४ की अस्वस्थता ने पंत जी को पुनः अन्तर्मुख चिन्तन पर बाध्य किया और **स्वर्ण धूलि** तथा **स्वर्ण किरण** में उपर्युक्त चिन्तनधारा अपनी सहज गति से निर्बाध चल निकली।

सामाजिक चेतना

पंत जी की सामाजिक चेतना का आधार आत्मपरक मानववाद है जिनमें कल्पना के स्थान पर अनुभूति और चिन्तन का प्रभुत्व तथा आत्मा की विशदता दिखाई देती है। इस समाज–दर्शन में जीवन के अतिरिक्त तत्त्गत (Essential) मूल्यों का ही महत्व है, बाहय औपचारिक मूल्यों का नहीं। सदाचार, देश–प्रेम, सामाजिक प्रगति, राजनीतिक उत्कर्ष आदि का मूल्यांकन भौतिक उपकरणों

द्वारा नहीं, वरन् मानसिक एवं आत्मिक उपकरणों द्वारा ही किया जा सकता है। सामाजिक चेतना की इकाई परिवार है जो दाम्पत्य की परिणति है। दाम्पत्य के साथ ही पतिव्रता–धर्म और परकीया प्रणय जन्म लेते हैं। पंत जी ने इसी द्वन्द्व की व्याख्या करने का प्रयास किया है। परकीया में पतिव्रत की व्याख्या करते हुए पंत जी कहते हैं

पति–पत्नी का सदाचार भी
नहीं मात्र परिणय से पावन,
काम विरत यदि दम्पत्ति–जीवन,
भोग मात्र का परिणय साधन।
पंकिल जीवन में पंकज–सी
शोभित आप देह से ऊपर,
वही सत्य जो आप हृदय से,
शेष शून्य जग का आडम्बर।[१]

सामाजिक उत्कर्ष

सामाजिक उत्कर्ष के लिए भौतिक विभव की अपेक्षा मानव–गुणों का उत्कर्ष ही अधिक अभिप्रेत है। और मानव–गुणों के उत्कर्ष का मूलाधार है मनोस्वास्थ्य जिसमें सामाजिक भोग और त्याग, अनुराग और विराग का पूर्ण सन्तुलन हो, जिसमें सामाजिक एवं लैंगिक द्विधा की चेतना न हो । और इस मनोस्वास्थ्य का साधन है आत्म–संस्कार, जिसके लिए प्रीतिपूलक सृजनात्मक भावनाओं का संवर्धन आवश्यक है। आज भी विश्व नारीत्व के संदर्भ में लैगिंक वैषम्य (Gender Discrimination) के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय सोच बदल रही है जिसे कवि ने बहुत पहिले समझा होगा।

रति और विरति के पुलिनों में बहती जीवन की धारा,
रति के रस लोगे और विरति से रस का मूल्य–चुकाओगे।
नारी में फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की,
तुम त्याग भोग की सृजन भावना में फिर नवंल डुबोओगे।[२]

---

१. डा. नगेन्द्र– सुमित्रानन्दन पंत पृ० १६५
२. डा. नगेन्द्र – सुमित्रानन्दन पंत पृ० १६५

राजनीतिक उत्कर्ष

भारत के स्वतंत्रता दिवस १५ अगस्त का स्तवन करते हुए पंत जी मुख्यतः उसके भौतिक उत्कर्ष की नहीं, वरन् उसके आत्मिक ऐश्वर्य की मंगल कामना करते हैं–

नव जीवन का वैभव जागृत हो जनगण में,
आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव मन में।
रक्त–सिक्त धरणी का ही दुःस्वप्न समापन,
शान्ति प्रीति–सुख का भू–स्वर्ग उठे सुर–मोहन।[१]

पंत जी भारत के हित को विश्व हित के साथ एक करके देखते हैं। भारत की दासता उसकी अपनी दासता नहीं थी, वह सारी पृथ्वी की नैतिक दासता थी। इसी प्रकार उसकी मुक्ति एक देश मात्र की मुक्ति नहीं है– वह विश्व–जीवन की मुक्ति है, क्योंकि उन्हें विश्वास है कि अपनी महान सांस्कृतिक परम्पराओं से समृद्ध भारत एक नवीन सांस्कृतिक आलोक को प्रभासित करेगा।

पुनरूत्थान भावना

इस युग की काव्य–चेतना की एक प्रमुख प्रवृत्ति है–पुनरूत्थान की भावना। पंत जी को आरम्भ से ही अतीत की अपेक्षा भविष्य के प्रति अधिक आकर्षण रहा है। वे सदैव भविष्य के स्वप्नद्रष्टा कवि रहे हैं। इन नवीन कविताओं में पहली बार सांस्कृतिक पुनरूत्थान की भावना मिलती हैं। पंत जी पहली बार अपनी प्राचीन आध्यात्मिक पूत संस्कृति, वेद–उपनिषद, सीता, लक्ष्मण आदि की ओर श्रद्धा और सम्भ्रम से आकृष्ट हुए। **''स्वर्ण-धूलि''** के आर्षवाणी कविता खण्ड में वैदिक रचनाओं का भव्य अनुवाद है। इन कविताओं द्वारा कवि आज के भूत–त्रस्त जीवन में शान्ति का संचार करने के लिए मानो भारत की पूत–पावनी संस्कृति की आत्मा का ही आह्वान करता है–

शांति शांति दे हमें शान्ति हो व्यापक उज्जवल,
शांति धाम यह धरा बने, हो चिर जन मंगल ।

बहुत सी कविताओं में उपनिषद मन्त्रों के प्रेरणा–तन्तु विद्यमान है। कहीं उपनिषद के द्वारा सुपर्णा आदि रूपकों को ग्रहण किया गया है, और कहीं उसके आर्ष–वचनों को उदधृत किया गया है।

---

१. डा. नगेन्द्र – सुमित्रानन्दन पंत पृ० १६६

सौवर्ण में संकलित गीतिनाट्य

सौवर्ण संक्रमणकालीन मानव मूल्यों के विकास का प्रतीक रूपक है। इस संग्रह में मूलरूप से दो ही नाटक थे। १९५२ में रचित **"स्वप्न और सत्य"** तथा १९५४ में सृजित **सौवर्ण**। किन्तु, द्वितीय संस्करण में **'दिग्विजय'** शीर्षक काव्य–रूपक भी इन्हीं के साथ जोड़कर तीन गीतिनाट्यों का प्रकाशन किया गया है जो १९६३ में प्रकाशित हुआ। **सौवर्ण** गीतिनाट्य के प्रारम्भ में ही एक स्वर्गिक कल्पना की गई है जहां हिमालय के पुंजीभूत धवल हिम संचय में विश्व संस्कृति के शुभ्र सनातन की दिग् विराट स्वरूप को चित्रित करने का प्रयास है। समस्त देव लोक हिमालय वन्दना में निमग्न है और सुर–नर विस्मय भाव से ऊर्ध्व–प्राण–चेतना को धरा चेतना के निखार का परिणाम जान, जन–मन तप, संयम के मुक्ति द्वार से चिर मंगलमय जीवन की कामना करता है। कवि का आत्मविश्वास है कि मानव जीवन में ही–

नया सांस्कृतिक वृत्त उदित हो रहा क्षितिज में,
मानव जीवन मन का नव रूपान्तर करने।

यह रूपान्तर समदिक् संचरण से उर्ध्व संचरण की ओर प्रगमन है। कवि की अन्तर्भेदिनी दृष्टि में धरती पर होने वाला संघर्ष–आर्थिक/राजनीतिक कैसा भी हो निष्कर्षतः वह मौलिक प्रतिमानों का संकट है–

यह केवल आर्थिक व राजनीतिक ही संकट
जीवन के मौलिक प्रतिमानों का संकट यह।[१]

वर्तमान समाज के यथार्थ चित्रण को अभिव्यक्त करते हुए कवि ने भविष्यत् समाज की नूतन रचना के लिए आह्वान किया है। समाज अथवा शासन को यह आश्वासन देना ही होगा कि मानव जीवन भय और अन्याय, आतंक और विवेक हीन जीवन से मुक्त हो क्योंकि यही तत्त्व मनुष्य को स्वार्थ–साधन बनाकर पलायनवादी बना देते हैं। इसमें एक अनपेक्षित आशंका भी है कि कहीं सामूहिक जीवन व्यक्ति की स्वतंत्रता, संकल्प शक्ति और उन्नत विवेक को ही नष्ट न कर दे।

सामूहिकता चूर्ण न कर दे व्यक्ति–व्यक्ति की
स्वतंत्रता, संकल्प शक्ति उन्नत विवेक को।

अतः निष्कर्ष है कि –

---

१. सौवर्ण – पृ. २३

सत्य भविष्यत् नहीं, भूतमय वर्तमान है
वही भविष्यत होगा जिसे बनाएंगे हम
वर्तमान जो चिर अतीत की परम्परा का
मूर्त रूप है, वही सत्य है, वही प्रगति का
युग विकास का मापदण्ड है—यह अकाट्य है।[१]

किन्तु उर्ध्वचेतस् समाज, मानव कल्याण की परिभाषा और संकल्प क्या है? कवि ने एक दार्शनिक की भांति वैदिक स्वरों को रूपान्तरित कर मन्तव्य प्रकट किया है जिसे एक अंग्रेजी कवि ने भी गाया है—

'Lead Kindly Light Read Thou me on'

वैदिक वाणी के स्वर थे—

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतंगमय।

इसी ऋचा को कवि ने अन्यत्र भी कहा है—

मुझे असत् से ले चलो हे! सत्य ओर !
मुझे तमस से उठा दिखाओ ज्योति छोर,
मुझे मृत्यु से बचा बनाओ अमृत भोर !!

सौवर्ण में भी कवि ने इसी शाश्वत् सत्य की कामना की है—जो सदा असत्, तमस और मृत्यु पर विजयी रही हैं। यही भारतीय संस्कृति हैं।

यहां असत् पर सत् की तम पर सतत ज्योति की
तथा मृत्यु पर विजय हुई अमृतत्व की महत्।

(स्वर्गदूत का कथन पृ० ३०)

यह भारत भूमि अहिंसक, सत्यपोषक और जन मंगलकारी भूमि है। यह विश्व शान्ति की कामना करती है और श्रम पर संयमित जीवन व्यतीत कर उद्योग और व्यवसाय से धन–धान्य पूर्ण है। गांधी जी से प्रभावित पंत ने इस भारत भूमि की अर्थ व्यवस्था को कुटीर उद्योग और चरखा से भी संबंधित किया है। गांधी जी के विषय में कवि ने 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता में भारतीय युग पुरूष के दर्शन १९३६ में ही कर लिए जो १९५२–५४ से उनकी मृत्यु के

---

१. सौवर्ण पृ० २४

उपरान्त वैचारिक रूप में आज भी जीवन्त है। "जड़ता , हिंसा, स्पर्धा में भर चेतना, अहिंसा,नम्र ओज/पशुता का पंकज बना दिया तुमने मानवता का सरोज।" और इसी क्रम में इसी कविता में पंत जी ने लिखा है "उर के चरखे में कात सूक्ष्म, युग–युग का विषय–जनित विषाद/गुंजित कर दिया गगन जग का भर तुमने आत्मा का विकार।" १६३६ का यह विचार १६५४ तक कवि के मन में स्थायी बन गया था। सौवर्ण में इसी विचार की परिणति है जो भारतीय संस्कृति की परिचायक है–

धन्य अहिंसक भूमि, सत्य पर प्राण प्रतिष्ठित,
मानवीय साधन से सुलभ जहां जन मंगल
विश्व शांति कामी ये जनगण भू के प्रेमी,
सरल संयमित जीवन जिनका श्रम पर निर्भर
गृह धंधों उद्योगों से, तकुओं चरखों से,
बुनते संस्कृत आत्म तुष्ट जन जीवन पर जो।

(सौवर्ण पृ. ३२)

पंत जी के आत्म विश्वास और तत्कालीन भारतीय राजनीति में महात्मा गौतम बुद्ध के पंचशील की ध्वनि भी सुनाई देती है जो मध्यमा प्रतिपदा के जीवन दर्शन को प्रचारित करती हुई आज भी प्रासंगिक है। इसी **पंचशील** के सिद्धान्त पर भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने **शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व** के सिद्धान्त को जन्म दिया और समस्त शान्ति–क्रान्तिप्रिय देशों ने उसकी सराहना कर उसे अपनाया–

मध्यमार्ग का पथिक तटस्थ सदा हिंसा से
पंचशील का पोषक, सह जीवन का घोषक,
घृणा द्वेष से विमुख, प्रमुख युग दृष्टा भी जो,
चिन्तन कृशतन, निज महदांकाक्षा सा उन्नत–
चुप न रहेगा वह, जूझेगा धर्म चक्र ले,
जन मंगल का, लोक न्याय का पक्ष ग्रहण कर
निज नैतिक बल डाल सत्य की विजय के लिए।

सौवर्ण – पृ. ३४

मानव जीवन के दो छोरों को परिभाषित कर कवि पंत क्रांत दृष्टा के शब्दों में कहते हैं–" एक छोर चैतन्य चिरंतन रश्मिपंख स्मित/भावों का सतरंग प्रकाश बरसाता अविरत/गुह्य दूसरा छोर अकूल अतल जड़ तम है। धारण

करता जो अपने अविकार गर्भ में/जन्ममरण,भव–जीवन क्रम , सुख दुख के स्पन्दन।" इन दो छोरों के बीच मानव जीवन के समतल संचरण से उर्ध्व संचरण तक की जीवन लीला है। तब फिर जीवन का संचालन कैसे होगा? कवि पंत ने गीता के स्वर में इसे प्रतिभासित किया है– मैं तूफानों में भी जलने वाली अमर ज्योति हूं। मैं रहस्य हूं।[१] कवि इस विराट विभूति के कालदण्ड प्रशासन में आश्वस्त है कि वर्तमान भूत और भविष्य का नियंता केवल गोपेश्वर कृष्ण(गीता में) हैं। वर्तमान संदर्भ में भी–––

"भूत भविष्यत् वर्तमान मुझमें ही जीवित,
विश्व समन्वय से मैं महत्––समष्टि प्रेरणा।
सृजन प्रेरणा,––मूर्तिमान जीवन स्पन्दन में।[२]

इस विश्वास के साथ ही कवि का सन्देश है––

दैन्य दुख मिट गये, छंट गए धूमिल पर्वत
घृणा, द्वेष के स्पर्धा के, भय संशय पीड़न के,
जनशोषण, अन्याय, अनय से मुक्त धरा पर
एक छत्र अब शान्ति साम्य स्वातंत्र्य प्रतिष्ठित
शुभ्र शान्ति, जो सर्वश्रेष्ठ गति मानव मन की।[३]

सौवर्ण गीतिनाट्य में स्वतंत्र रूप से भी ५ गीत कवि ने दिये हैं।

स्वप्न और सत्य

सौवर्ण गीतिनाट्य संग्रह का दूसरा गीतिनाट्य है "स्वप्न और सत्य"। यह गीत नाट्य आदर्श और वास्तविकता के बीच युग–संघर्ष द्योतक काव्य रूपक है। इस गीति नाट्य में ७ स्वतंत्र गीत हैं। यह गीतिनाट्य तीन दृश्यों में समाप्त होता हैं जिनमें दो स्वप्न दृश्य हैं।

स्वप्न और सत्य का अभिप्रेत है आदर्श और यथार्थ के युग–संघर्ष में आदर्श की स्थापना। वर्तमान जीवऩ मूल्यों के ह्रासोन्मुखी होने से संतप्त कवि ने पतझर के प्रतीक से उसे अभिव्यक्त किया है जो एक आदर्शवादी कलाकार की पीड़ा है। झर–झर पड़ता युग का वैभव [४] पंक्ति से युग दशा का चित्रण कर

१. सौवर्ण पृ० ४५
२. सौवर्ण पृ० ४६
३. सौवर्ण पृ० ५०
४. स्वप्न और सत्य पृ० ५८

कलाकार के पहले मित्र ने उसे मनुष्य की कर्तव्य विमुखता से जोड़ दिया है। कलाकार प्रकृति को मानव–जननी मानता है और प्रकृति–प्रेषित मानव की अकर्मण्यता से उत्पन्न सत्–असत्, घृणा–प्रेम, हास–अश्रु, आदि के छायातप से त्रस्त मानवता की ओर इंगित करता है।

आओ, देखो आंख खोलकर मनुज जगत को
कैसा हाहाकार छा रहा आज वहां है।

(स्वप्न और सत्य) पृ० ६३

इसी पंक्ति को दूसरा मित्र इन्हीं शब्दों में दोहराकर यह निश्चित कर देता है कि जगत का यही यथार्थ मानवता की प्रमुख समस्या है। समाज में जो विषमता है उसकी ओर कवि इंगित करता है जिसे हम महानगरों से लेकर मध यम वर्गीय नगरों तक व्याप्त पाते हैं। यह वैषम्य है धनवान और निर्धन का, सबल और निर्बल का ———

एक ओर प्रासाद खड़े हैं, स्वर्ग विचुम्बित
चारों ओर असंख्य घिनौनी, झाड़ फूस की
बौनी झोपड़ियाँ हैं, पशुओं के विवरों सी –

(स्वप्न और सत्य पृ० ६३)

परिणाम स्वरूप ट्रेड यूनियन प्रत्येक विभाग में बनती जा रही है। रूसी साम्यवाद शनैः शनैः जीवन में, विवशता से ही सही, प्रवेश कर रहा है। पहला चित्र कहता है

"लोक साम्य की वृहद भावना से प्रेरित हो
सामूहिक निर्माण हेतु अब उत्सुक भू जन।"

पर क्या यह मानव–पीड़ा का निदान है ? शायद हो, शायद नहीं। नहीं इसलिए कि आज रूस भी साम्यवाद के सामूहिक उत्पादन से विश्रृंखलित हो गया है। कलाकार का पीडित मन अपनी ही छाया से समाधान चाहता है और अन्त में नियतिवादी होकर कतिपय आदर्शों की कल्पना करता है। मानव लोक में प्रेम, क्षमा, दया, विनय, विनम्रता आदि सद्‌गुणों से स्वर्गधाम मिलेगा, ऐसा उसका विश्वास है। विश्वास है या कवि बाइबिल की भाषा बोल रहा है। "धन्य शान्ति कामी प्रभु के शिशु कहलाएंगे" कह कर यही मन्तव्य प्रकट किया गया है। 'प्रभु' को सामने रखकर "ईश्वरीय जन साम्य चाहता मैं पृथ्वी पर" कहकर कलाकार [१] की छाया ने कवि के मन्तव्य को ही प्रकट किया है। कलाकार के

१. स्वप्न और सत्य पृ० ५८

मन में तुलसी के "सियाराम मय सब जग जानी" की ध्वनि उठती है, कभी सूरदास के कृष्ण की वंशी का स्वर मौन निकुंजों को मुखरित करता है तो कभी सूर–तुलसी के राम–कृष्ण मुरली और धनुष बाण लिए उभरते हैं, कभी मीरा गिरधर गोपाल के साथ नाचती प्रतीत होती है, तो कभी कबीर का अनहद नाद आत्म–विभोर कर देता है, जो अपनी चदरिया के ज्यों की त्यों धर देने में ही कुशल देखता है। ये सब भारतीय भक्ति–आन्दोलन की ऐसी दीप शिखायें है जिनसे चिरंतन काल तक जीवनादर्श का आलोक फैलता रहेगा।

कवि इस यथार्थ से भी परिचित है कि जातिगत दलगत राजनीति ने राम राज्य की आदर्श कल्पना को धूल धूसरित कर दिया है जिसका विकल्प केवल सर्वधर्म समभाव ही है। कवि का यथार्थ चित्रण है------

अधोमुखी लघु स्वर्ग, सम्प्रदायों में सीमित,
लटके हैं अगणित त्रिशंकु से, बहुमत पोषक–.
कट्टर पंथी आचारों के झींगुर झन झन
जहां रेंगते, दारूण धर्मोन्माद बढ़ाकर।

(स्वप्न और सत्य पृ० ७८)

कलाकार अपनी ही प्रतिछायाओं से प्रश्न करता है और स्वयं उत्तर देता है। उसका विश्वास है कि संसार में शान्ति मानवीय आदर्शों से ही स्थापित की जा सकती है।

३४ पृष्ठ के इस गीतिनाट्य में कलाकार ही एक पात्र है जो संपादक है और शेष पात्र या तो उसकी छायायें है या फिर उसी के स्वर है या फिर पहला–दूसरा मित्र है जो वह स्वयं है। अर्थात् कुल मिलाकर यह गीतिनाट्य एकल–संवाद होते हुए भी विभिन्न ध्वनियों में ध्वनित है।

इस गीतिनाट्य का मंचन एकल पात्र बहुध्वनियों द्वारा मंच पर 'मोनोलॉग' (Monologue) की भांति किया जा सकता है।

दिग्विजय

कवि ने इस गीतिनाट्य को बहिरंतर विजय का काव्य रूपक कहा है। यह १२ पृष्ठों का एक छोटा सा गीतिनाट्य है जिसमें कुल २ स्वतंत्र गीत संयोजित हैं।

वस्तुतः यह गीतिनाट्य भू से नभ चारण की एक घटना पर आधारित है

जब यूरी गागरिन रूसी अन्तरिक्ष धरातल से चन्द्रयान की उड़ान से चन्द्रमा पर उतरा था। चन्द्रमा भी एक ग्रह–पिण्ड है उसमें निवास करती हुई अप्सरायें चिंतित है कि मनुज ने चन्द्रलोक में आने का दुःसाहस किया है ? मरूत की क्रोध मुद्रा भी स्वर्ग लोक को अंलकृत कर देती है और यह धरती का चन्द्रयात्री खेचर चन्द्रमा से दिखाई देती धरती का सौन्दर्य निरूपण कर इस वैज्ञानिक सत्य को स्पष्ट करता है कि धरती और सागर अनन्त सौन्दर्यशाली है, किन्तु वह स्वयं भारहीन होकर उड़ रहा है । धरती कितनी सुन्दर है इसका वर्णन 'खेचर' के शब्दों में एक प्लैटोनिक इमेज के रूप में देखा जा सकता है–

> इन्द्रधनुष में लिपटी– मुग्ध अनंत यौवना
> नाच रही जो मुक्त उर्वशी सी असीम में
> देख रहे अपलक ज्योति यह, यौवन शोभा
> उड़ता गंध ग्रथित दुकूल, रेशमी पवन का
> शस्य हरित चोली व क्षोजों के शिखरों पर
> झूल रही फेनिल नदियां कष्टहार सी–
> लहराता लंहगा सागर का रत्न मणि जड़ा
> धूप छांह यह रश्मि द्रवित रंगों से गुफिंत ! [१]

इस खेचर (यूरी गागरिन) को सम्बोधित करता हुआ नीलाम्बर गगन पूछ बैठता है –

> क्या पायेगी मनुज जाति इस समदिग जय से
> माना मंगल, चन्द्र, शुक्र में धरा पुत्र ने
> विजय वैजयंती फहरा ली! तो इससे क्या
> तोड़ सकेगा मानव अंधी लौह नियति को ?

क्योंकि – " अभी काल पर जय पाना है धरा पुत्र को " और मृत्यु पर विजय एक ऐसी चुनौती है जो सम्भव नहीं। वह मनुज को प्रबोध भी करता है कि वह स्वयं ब्रह्माण्ड है–

> तू ही सबका केन्द्र, केन्द्र ब्रहमाण्ड–विश्व का
> तेरे ही भीतर सूरज, शशि, ग्रह उपग्रह सब–
> आत्मवान् तू धराधाम को बदल स्वर्ग में
> बांध विविध भू देशों को नव मानवता में ।

यह मानवता का संदेश ही कवि का अभिप्रेत है, यही दिग्विजय है।

---

१. दिग्विजय– (सौवर्ण पृ० ६८)

दिग्विजय वह नहीं जो खगोल को नापे, दिग्विजय वह जो भूगोल को सुखी–समृद्ध बनाये। कवि ने इस छोटी सी नाटिका में यही संदेश दिया है।

रजत शिखर के गीतिनाट्य- अन्तश्चेतनावादी/दार्शनिक

इस युग को पंत जी ने महासंक्रान्ति काल कहा है तथा इस महासंक्रान्ति काल की कविता में पंत जी आस्था और लोकमंगल की भावना को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, जबकि सर्वत्र विघटन, विश्रृंखलता, नैतिक मूल्यों का ह्रास दिखाई पड़ रहा है। उसमें महाकवि पंत का यह स्वप्न(मुझे स्वप्न दो, मुझे स्वप्न दो) एक महान जीवन और आस्था की परिकल्पना करता है। यही वह विश्व निर्माण विश्व एकीकरण का संदेश है, जो समस्त पंत काव्य में प्रवाहित होता हुआ हमें मिलता है तथा थोथी बौद्धिकता तथा सैद्धान्तिकता में भटकी हुई अन्तः शून्य मनुष्यता का ध्यान उसके चिर अपेक्षित अन्तर्जगत और अन्तर्जीवन की ओर आकर्षित करना चाहता है।

पंत जी का समस्त काव्य अन्तर्मुखी काव्य न होकर आत्मोत्कर्षी काव्य है। यह आत्मोत्कर्ष अपनी समग्र संरचना में एक सार्वभौमिक शुभेच्छा तक ले जाता है। यह सार्वभौमिक शुभेच्छा ही वह तत्व है जिसके भीतर से कवि पंत ने विश्व–मानव और नव मानव की परिकल्पना को अपनी कविता में सार्थक किया है। अपनी सम्पूर्ण काव्य सम्पदा के भीतर से उन्होनें एक नये और निजी अध्यात्म की रचना की है। पंत जी का यह अध्यात्म अपनी मंगल कामना में लोकोन्मुखी है। इस पूर्ण सत्य की साधना ही कवि का अन्तिम लक्ष्य है–

" मैं इस सत्य की साधना के लिए इतिहास और सभ्यता ने जो सामूहिक सामाजिक विकास यंत्र प्रस्तुत किया है, उसी को अधिकृत कर उसे राष्ट्रीयता से अन्तर्राष्ट्रीयता और उसके विश्व–मानवता एवं दिव्य मानवता में क्रमशः विकसित कर उस पूर्ण जीवन को एक लोक–जीवन में मूर्त देखना चाहता हूं।"[१]

रजत शिखर के गीतनाट्य

कवि के शब्दों में **"रजत शिखर"** मनुष्य की अन्तश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है। इस काव्य रूपक में जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल संचरणों का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। रजत शिखर संकलन में छह गीतिनाट्य संकलित है। रजत

---

१. श्री सुमित्रानन्दन पंत " तारापथ " की भूमिका पृ० ५२

शिखर, फूलों का देश, उत्तर शती, शुभ्र पुरूष, विद्युत वसना और शरद चेतना। प्रत्येक गीतिनाट्य का एक समसामयिक उद्देश्य है और उसी में निहित प्रसंगानुकूल संदेश भी !

रजत शिखर के गीतिनाट्य **शिल्पी** संग्रह की अपेक्षा अधिक कठिन एवं दुरूह हैं। ये नाटक जीवन की अपेक्षा सिद्धान्तों की व्याख्या हैं । पंत जी के ही शब्दों में "रजत शिखर मनुष्य की अन्तश्चेतना का शुभ प्रतीक है। जीवन के ऊध्-र्व तथा समतल संरचणों का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है।" रजत शिखर गीतिनाट्य में पांच पात्र है– युवक, युवती साधक, मनोविश्लेषक, राजनीतिक और विस्थापित। युवक–युवती रोमांटिक और प्रेम के प्रतिदान में कृपण व आरोपी होने के प्रतीक हैं। व्यथित युवक ने युवती पर प्रेम प्रतिदान न देने का आरोप लगाया है। मनोविश्लेषक युवक की मनस्थिति का विश्लेषण कर उसे साधना की ओर उन्मुख करता है। विस्थापितों की सहायता से समाजिक दुरावस्था का चित्रण है। सम्भवतः भारत विभाजन के उपरान्त लिखे गए इस गीतिनाट्य में विस्थापितों के पुनर्वास की प्रबल समस्या का निदान राजनीतिक स्तर पर खोजने की चेष्टा की गई है। राजनीति भी तब तक सुव्यवस्थित नहीं थी, अतः सहज विश्वसनीय भी नहीं थी–राजनीतिज्ञ अपने को जन सेवक तो कहते थे पर किसी भी नवीनता अथवा योजना को स्वयं दे सकने में असमर्थ थे

मात्र जन सेवक मैं
अन्न, वस्त्र, आवास – कमी है यद्यपि इनकी
मनु के सुत को, किन्तु सदा धीरज धरना है
वैसे कागज की है बनी अनेक योजना ।[१]

अन्ततः युवक अन्तः प्रतीत को धर्म बना कर एक नया संसार बनाने का आह्वान करता है–

आओ, हम अन्तः प्रतीति को धर्म बनाएं
आओ, हम निष्काम कर्म को कर्म बनाएं
हम आत्मा की अमर प्रीति के धरा स्वर्ग में
सब मिलकर जीवन स्वप्नों का नीड़ बनाएं।
आओ हम सब मिलकर मानव का घर द्वार बसाएं।[२]

---

१. रजत शिखर पृ० ३१
२. रजत शिखर पृ० ४१

इस गीतिनाट्य में स्वतंत्र रूप से वाद्य संगीत सहित चार स्वतंत्र गीत है और इस गीतिनाट्य का सन्देश सहयोग से उत्थान एवं शान्ति मय जीवन होना है।

फूलों का देश - रचनाकाल – ५ मार्च १९५१

यह गीतिनाट्य सांस्कृतिक चेतना का धरातल है। पंत जी ने इस गीतिनाट्य में वर्तमान युग में प्रचलित विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं आध यात्मिक विचार धाराओं पर प्रकाश डालते हुए मानव सुख–शान्ति खोजने का प्रयास किया है। वर्तमान में आदर्शवाद,यथार्थवाद भौतिकवाद, भोगवाद तथा आध्यात्मवाद की अनेकानेक सैद्धान्तिक विचारधारायें सामाजिक जनों पर प्रभाव डालती है। पंत जी ने उनमें समन्वय स्थापित कर नव–मानववाद की चेतना को स्थापित करने का प्रयास किया है। एक ओर भयानक यथार्थ है–

केवल सत्य, मनुज के उर की घोर घृणा है
मिथ्या नैतिकता, मिथ्या आदर्श है सकल।
जन पीड़न शोषण के हित जो उद्धृत होते
केवल सत्य, विषमताएं हैं, प्रतिहिंसा है
केवल सत्य अतृप्त पिपासा है तृष्णा है।[१]

दूसरी ओर जन–संगठन जो समाज निर्माण का थोथा दावा करते हैं, वे भी अपने अंदर से कितने खोखले हैं, वे परस्पर ही जाति, वर्ण, और व्यक्तिगत अहं से कुण्ठित पीड़ित है, उन्हें शान्ति, सुख और ऐश्वर्य केवल " एक उर्ध्वदिक् दिव्य संचरण" से ही अपूर्व चेतना का आलोक मिल सकता है। वैज्ञानिक संसाध ान और प्रगति के माध्यम से तभी सुफलदायी हो सकते है जब मनुष्य अन्तर्जीवी बन कर अन्तर्विधान से सर्व–कल्याण के विषय में चिन्तन करें क्योंकि मनुष्य का बर्हिजीवन तो विषम है –

व्यक्तिहीन सामाजिकता निर्जीव ढेर है।
यंत्रों से चालित इच्छाओं क़ा समूह है।
घृणा, द्वेष, स्पर्धा, तृष्णाओं का समूह है।
नारकीय कटुता, निर्ममता का समूह है।
अवचेतन की अंध वासना का समूह है।

इस गीतिनाट्य का उद्देश्य इसके अन्तिम गीत में अभिव्यक्त है–

---

१. फूलों का देश –र.शि.पृ० ६१

विश्वशान्ति बने ध्येय
श्रेय ग्रथित रहे प्रेय
लोक एक्य हो अजेय
पावन जनवास ग्राम ।

उत्तर शती

उत्तर शती पूर्वार्द्ध के संघर्ष और उत्तरार्द्ध की आशा–कल्याणप्रद क्रम विकास का संकेत है। उत्तर शती का प्रथम गीत ही रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता उर्वशी की ओर संकेत करता है। टैगोर की रचना का मर्म है कि उर्वशी न माता है न कन्या है, और न वधू है, वह एक ज्योतिर्मयी सौन्दर्य है जिसके वाम कर में विष भाण्ड है और दाहिने कर में अमृत कुण्ड।

डान होते सुधा पात्र, विषभाण्ड लोये वाम कोरे
तोरंगित महासिंधु...................
कुन्द शुभ्र, नग्न कान्ति, सुरेन्द्र वन्दिता, तुमि अनन्दिता।

इसी भाव को कवि ने गाया है–
दक्षिण कर पीयूष पात्र स्मित
बाम हस्त विष ज्वाल विंकपित?
विचर रही निर्मम अबाध तुम
विश्व विषादिन, लोक प्रसादिन।

भारतीय संस्कृति की महत्ता को कवि मात्र एक भौगोलिक अस्तित्व नहीं मानता वह आश्वस्त है कि जग–संघर्ष में केवल एक ही मार्ग शान्ति सुख का दाता है वह भी शाश्वत जीवन सौन्दर्य के लिए–

गौतम से गांधी तक सत्य अहिंसा का जो
रहे अगर संदेश सुनाते क्षुधित जगत को
मानव जीवन मन में अन्तः कान्ति लिए
मौन प्रवासी, विश्वशान्ति के चिर अभिलाषी।

उत्तर शती गीतिनाट्य की रचना ३१ दिसम्बर १६५० को हुई थी। ठीक दूसरे दिन से उत्तरशती का प्रारम्भ होता है। आज के संदर्भ में यह उत्तरशती भी समाप्त प्राय है। इसी में तीसरे विश्वयुद्ध के भय की आशंका है, फासीवाद

के दर्प–दलन के लिए जो महाशक्तियां एकत्र हुई थी वे सभी आज तीसरे विश्वयुद्ध का संयोजन करने में तत्पर हैं। पूंजीवादी देश निरन्तर हिंसा संहार में निरत है। इससे मुक्ति पाना ही उत्तर शती का उद्देश्य है।

पंत जी की अपनी एक विशेषता है। वैसे तो पात्र नामधारी न होकर गुणध ारी हैं– कवि है, स्त्री, पुरूष है यहां तक कि सन इक्यावन् को मानवीकृत रूप में प्रस्तुत कर कवि पंत ने छायावादी बिम्ब को संजीवन प्रदान किया है। महाकवि टैगोर की जो समय–विषयक धारणा है–" डान होते सुधा पात्र विषमाण्ड लोये वाम कोरे" स्वतः चरितार्थ है। जीवन संघर्ष से शान्ति की ओर ही उन्मुख होता है। अन्त में आज की प्रासंगिकता में कवि का गीत–स्वर है–

नारी–नर हों समान
कर्म निरत लोक प्राण
जग को दें आत्मदान
जनहित जन श्रम फल हो।

यही उत्तमोत्तम लोक तंत्र है।

शुभ्र पुरूष !

महात्मा जी के तपःपूत व्यक्तित्व का शुभ्र प्रतीक है शुभ्र पुरूष। यह गीत नाट्य महात्मा गांधी के जन्म दिवस की जन–गण–मन अधिनायक (गांधी जी) के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम्र श्रद्धांजलि है। **बापू के प्रति** कविता में कवि पंत ने उन्हें सत्य का अन्वेषक कहा है–

सुख भोग खोजने आते सब
आये तुम करने सत्य खोज।

इसी विचार को कवि ने इस गीतिनाट्य में भी चिरंतित किया है–

सत्य खोजने आए जग में,
स्वर्ग लुटाने जन के मन में।

इसी गीतिनाट्य में भारत माता की बंकिम चन्द्र के स्वरों में वन्दना की गई है और जिसे रामराज्य की संचेतना से परिपूरित किया गया है–

आज पुनः दिक् प्रतिध्वनित उल्लसित स्वरों में
वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
तपोभूमि यह,

इसी गीतिनाट्य में 'वसुधैव कुटुम्बकम [1] की ध्वनि गुंजायमान है, इसी में मैथिलीशरण गुप्त की ध्वनि है– रामकृष्ण गौतम लोटे जिसकी शुचि रजपर (जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए है–गुप्त जी)।'

और कवि पंत ने इस गीतिनाट्य के अंत में गांधी स्तवन किया है–
शुभ्र सत्य हो जन मन पथ
शुभ्र अहिंसा का जीवन व्रत
विश्व ग्लानि में नव–प्रकाशवन
निखरो शुभ्र पुरूष युग संभव [2]

विद्युत वसना और शरद चेतना

विद्युत वसना भारत की स्वाधीनता की चेतना का रूपक है जिसकी रचना १५ अगस्त १९५० को हुई थी। स्वाधीनता दिवस की यह कृति कवि पंत के गीत की ध्वनि से जुड़ी हुई है जो वैदिक काल का ही रूपान्तर है कवि पंत ने असतो मा सद्गमय का रूपान्तर अपनी एक कविता में किया है–

मुझे असत् से ले जाओ हे सत्य ओर
मुझे तमस से उठा दिखाओ ज्योति छोर
मुझे मृत्यु से बचा बनाओ अमृत भोर

इसी काव्य को विद्युत वसना गीतिनाट्य के अन्तिम गीत में कवि ने गाया है–

अंधकार रहा भाग, रहा भाग
ज्योतिर्मय उठे जाग, उठे जाग
मृत्योर्माऽ मृतं गमय
जन चिर अनुयायी। [3]

शरद चेतना प्रकृति सौन्दर्य का कल्पाजन्य रूपक है। इस रूपक में आकाश वासिनी शरद ऋतु (शरद चन्द्रमा की आभा) का धरती वासिनी हेमन्त,

---

१. शुभ्र पुरूष – र.शि.पृ० ११२
२. शुभ्र पुरूष – र. शि. पृ० ११८
३. विद्युत वसना – र. शि. पृ० १३३

बसन्त, ग्रीष्म आदि अभिवादन करती हैं क्योंकि शरद श्री धरती पर सर्वत्र सुखशान्ति का संचार कर रही है। पंत जी प्रकृति के ही अद्वितीय कवि है– इस गीतिनाट्य में हेमन्त ऋतु "जीर्ण पलित पीत पात" शिशिर ऋतु– "सनसन बहता समीर", बसन्त ऋतु– "नव बसन्त आया" ग्रीष्म ऋतु – "तरूण तापस वीर", वर्षा ऋतु–"नीलांजन नयना" आदि गीत एक ही स्वर–लय में गाये गए हैं। किन्तु शरद का गीत एक भिन्न 'टोन' में प्रस्तुत है– एक कोमल भाव वाचक स्वर ———

तुम पारदर्शिनी, ज्योतिर्मयि,
अंतः शोभामयि निश्छल री,
अस्पर्श्य, अदृश्य, विभा उर की
वे रूपमयी रज मांसल री ।

यह गीतिनाट्य १ सितम्बर १६५१ को लिखा गया था।

इस युग की रचनाओं में रजत शिखर, स्वर्णोदय, स्वर्ण–किरण आदि प्रमुख हैं जिसमें पंत जी ने अंतर्जीवन, अन्तश्चेतना आदि को अधिक महत्व दिया है क्योंकि भौतिक दर्शन के प्रभाव से इसका विस्मरण हो गया है जबकि यह मानव चेतना के नवीन सांस्कृतिक आरोहण का सूचक है। वैसे सामान्यतः उसमें बहिरन्तर जीवन के समन्वय की ही अधिक प्रधानता दी है जैसा कि "भौतिक वैभव औ' आत्मिक ऐश्वर्य नहीं संयोजित" बहिरन्तर के सत्यों का जगजीवन में कर परिणय" बहिर्नयन विज्ञान को महत् अन्तर्दष्टि ज्ञान से योजित" आदि अनेक पंक्तियों में अनेक रूप में परिलक्षित होता है।

यह कहना भी असंगत नहीं प्रतीत होता कि इसी समयावधि में पाश्चात्य साहित्य में जो उपन्यास रचना हुई है उसे 'स्ट्रीम ऑफ कान्शसनैस' शीर्षक देकर साहित्य मनीषियों और समीक्षकों ने अन्तश्चेतनावादी संज्ञा से अभिहित किया है। इसी विचारधारा का प्रभाव वहां की सामाजिक जीवन शैली पर भी पड़ा है और कविताओं पर भी। फिर हमारा देश तो बीजरूप में ही आस्थावादी आस्तिक और आत्मवादी दर्शन का अनुयायी रहा है। पंत जी पर यह आत्मवादी प्रभाव अन्तश्चेतनावादी विचारों से परिपुष्ट होकर मानवता की कल्याण कामना में उत्स की भांति फूट निकला है। गांधी–विचार भी इसी आत्मवादी चेतना का सामाजिक विस्तार है और पंत जी का चिन्तन भी गांधीवादी चेतन धर्म से प्रभावित रहा है।

परिशिष्ट

3.1 रजतशिखर

`रजत - शिखर' का प्रकाशन काल सन् 1952 है।[१] अपने इस संकलन के बारे में पंत का कहना है, ``इन रूपको में चौबीस मात्रा का अतुकांत रोला छंद प्रयुक्त हुआ है, जिसमें नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिये यति का क्रम गति के अनुरूप ही बदल दिया गया है एवं तेरह-ग्यारह के स्थान पर दो-बारह अथवा तीन-आठ मात्रा के टुकड़ों को रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है। पद के अंत में दो गुरु मात्राओं के स्थान पर लघु-गुरू या दो लघु मात्राओं का प्रयोग कथोपकथन की धारावाहिता के लिये अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है। `सौवर्ण' आदि में प्रवाह के अनुरूप छंद की मात्राएँ घटा बढ़ा दी गई हैं। पद्य नाट्य में लय की गति को अक्षुण्ण रखने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि पढ़ते समय प्रत्येक के अंत में यथेष्ट विराम दिया जाये।'' इसी संदर्भ में बच्चन जी का कहना है–``खड़ी बोली को अन्त्यानुप्रासहीन रोला में इतना ढालने, माँजने का काम इससे पूर्व किसी कवि द्वारा नहीं हुआ था। सीमित क्षेत्र में ही सही, इसने वर्णनात्मक और, प्रकार के अर्थ में, नाटकीय काव्य के लिये रोला की उपयोगिता सिद्ध की। अंग्रेजी काव्य का हिंदी में अनुवाद करने वाले `ब्लैंकवर्स' छंद के जोड़ के हिंदी छंद की तलाश में रोला पर ही आकर अटके। शेक्सपियर, मिल्टन, एसकिलस (जो अंग्रेजी के माध्यम से अनूदित हो रहा है) के अनुवाद, अतुकांत रोला में, इन रूपकों के बाद ही सामने आए और जाने या अनजाने रूप से उनसे प्रेरित और प्रभावित रहे ......। `मैकबेथ' और `ओथेलो' के अनुवाद में रोला के प्रयोग में मैंने पंत जी द्वारा ली स्वतंत्रता पर दो कदम और आगे बढ़ाए। ...... कथोपकथन में स्वाभिकता लाने के लिये मैनें `रन आन' चरणों का प्रयोग किया , जिसमें चरण के अंत में नहीं, विचार के अंत में रुका जाता है, चाहे वह जगह पंक्ति के बीच में पड़े। दूसरी बात मैं यह की कि चरण में 24 मात्रा रखने के बजाए दो पंक्तियों को मिलाकर, कहीं कहीं 48 मात्राएँ रखीं या तीन को मिलाकर 72 जिनमें अकेली पंक्तियाँ 23, 25, या 26, 23,

---

१ प्रथम संस्करण : भारती भण्डार, प्रयाग ।
वर्तमान संस्करण : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6।

23 की भी हो सकती है। ''[१] अपने द्वारा ली गई स्वतंत्रता का विवेचन करते हुये बच्चन जी जिन दो तथ्यों पर प्रकाश डालते हैं; यदि तनिक-सा ध्यान देकर पंत के काव्य रूपक पढ़े जाएं, तो वे तथ्य रूपकों में वर्तमान मिलेंगे।

`रजत शिखर' के अंतर्गक छः काव्य रूपक है–`रजतशिखर', `फूलों का देश', `उत्तरशती', `शुभ पुरूष' `विद्युत वसना' और `शरद चेतना'। प्रत्येक में जीवन को उसकी संपूर्णता में ग्रहण करने का आग्रह है।

`रजत शिखर' रूपक जीवन की वास्तविकता के यथातथ्य चित्रण के माध्यम से ऊर्ध्व और सम संचरण के समन्वय एवं जीवन को उसकी संपूर्णता में अपनाने की अनिवार्यता को घोषित करता है। मानवता तभी तक विषण्ण है जब तक मनुष्य ऊर्ध्व और सम संचरण की मूलगत एकता और पारस्परिक सहयोग भूल कर उन्हें द्वंद्व तथा भेद के रूढ़ाचार में बंदी कर देता है।[२] जीवन अपनी पूर्णता में ही मंगलमय, मानवोचित सुखद और शिवमय हो सकता है। ऊर्ध्व और सम का आरोहण तथा अवरोहण किसी अयथार्थ सत्य की स्वप्निल गुत्थियाँ नहीं सुलझाते वरन् इस जीवंत तथा अनुभूत तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि ऊर्ध्व और सम एक ही सत्य के दो पक्ष है। मनुष्य तभी स्वस्थ अनुभव कर सकता है जब कि उसके देह तथा मन के सभी अंगों के बीच उचित संयोजन हो, जीवन तभी विकासोन्मुख और मंगलमय हो सकता है जब कि हम उसके दोनों पक्षों के समुचित संयोजन के महत्त्व को समझ लें। समतल का आरोहण और तदनुरूप ऊर्ध्व का अवरोहण एक ही क्रिया के दो रूप हैं। `रजतशिखर' में स्त्री-पुरुष स्वर, युवक साधक, युवती, मनोविश्लेषक, राजनीतिज्ञ, विस्थापित आदि के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा जीवन की एकांगिता एवं संकीर्णता पर प्रकाश डाला गया है। युवक का हृदय अंतर्द्वंद्व से व्यथित है क्योंकि वह मिथ्या विभेंदो को सत्य मान लेता है। एक ओर वह वन मर्मर की इस सुंदर घाटी के प्रति आसक्त है जहाँ प्राणों की मुखर सरिता कल-कल बहती है और आवेशों के फेनिल मानस पुलिनों को डुबा देती है। दूसरी ओर उसका विकसित बोध

---

१. `कवियों में सौम्य संत', पृ. 153-154

२. `सांस्कृतिक सामंजस्य की प्रवृत्ति पंत के संपूर्ण आध्यात्मिक काव्य की विशेषता कही जा सकती है।'
`पंत के समन्वयात्मक दृष्टिकोण की परिणति विश्व-संस्कृति के निर्माण की आकांक्षा में होती है।'
शम्भूनाथ चतुर्वेदी : `पंत की नयी कविता'
`युग चेतना', वर्ष 4, `अंक : 10 अक्टूबर' 58, पृ. 16-17 (संपादक : डा. देवराज)।

अंदर ही अंदर चेतना के शुभ्र प्रकाश को अपनाने के लिये आकुल हो उठता है। युवक यह समझने में असमर्थ है कि बोध और आसक्ति एक दूसरे के पूरक हैं–आसक्ति बोध की बाँहों में ही विकसित होकर अपनी सार्थकता प्राप्त कर सकती है। वह बोध का उज्वल आश्रय लेने के विपरीत राग-रंग की स्वार्थपूर्ण संकुचित मायापुरी में भटक जाता है। युवती, जो कि युवक की इच्छाओं से गुंजरित घाटी की प्रेयसी है, जीवन को उसकी सतरंगी किंतु सतही आभा में सरलता से स्वीकार कर लेती है। उसका बोध युवक की भाँति जाग्रत् नहीं है अतः उसके लिये युवक का अंतर्द्वंद्व अबूझा है–

'...... ये दुर्बल उच्छवास मात्र हैं, !
तुम परिणीत नहीं इन थोथे विश्वासों से !'

युवक का मनोवैज्ञानिकक मित्र सुखव्रत जीवन को निम्न प्रवृत्तियों एवं अवचेतन से शासित मानता है और यह विश्वास रखता है कि जब प्राणों का स्वास्थ्य मुक्त वेग से बहेगा तथा काम चेतना युग-युग की कृमि जटिल ग्रंथियों के उत्पीडन से मुक्ति पा लेगी तब मनुष्य का अंतर सुखी और सामूहिक सहजीवन स्वथ्य हो जावेगा। किंतु युवक मानव मन को देवासुर संग्राम का क्षेत्र मानता है जहाँ उच्छृंखल मुक्त कामना के शासन ने जीवन को कुत्सित और अमानवीय बना दिया है। उसके अनुसार प्राण चेतना का ऊर्ध्व प्रवृत्तियों से युक्त हो जाना ही जीवन का स्वर्ग बन जाना है। निम्न और उच्च एक ही सत्य के अंग हैं, उच्च से विच्छिन्न निम्न अपनी एकांगिता में ध्वंसात्मकत और नारकीय है। किंतु सुखव्रत की स्थूल रागात्मक दृष्टि विस्थापितों को देखकर जीवन का सम्यक् यथार्थ परिचय पा लेती है।

'नारकीय प्रतिहिंसा, घोर घृणा का उत्सव!
नग्न वासना नृत्य, प्रेत ज्यों अवचेतन के
अट्टहास भर, बाहर सकल निकल आये हों।'

फॉएड और मार्क्स के सिद्धांतों की एकांगिता तथा सांप्रदायिकता एवं धर्मांधता पर करारा प्रहार करने के साथ यह रूपक 'रजतचेतना' (बोधयुक्त भू चेतना अथवा ऊर्ध्व और समय के समन्वित जीवन) की शोभापूर्ण झाँकियाँ प्रस्तुत करता है।

`प्रीति पाश में बाँधे हम नव मानवता को;
जिसका दृढ़ आधार एकता हो आत्मा की,'

X X X

`आओ, हम अंतः प्रतीति को धर्म बनाएँ'

X X X

आज बहुत ही बड़ा चाँद आया है नभ में,
अंतर का खुल गया रूपहला हो वातायन,–'

`फूलों का देश' सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। आज का युग वादों के संघर्ष से अभिभूत है विशेषकर वह भौतिकवाद आदर्शवाद एवं अध्यात्मवाद का गला अपने हिंसक हाथों से जकडे है। वह अध्यात्मवाद को पलायन, भीरुता और निष्क्रियता एवं जीवन अनुभवों को रिक्तता की उपज मानता है। भौतिकवाद के लिये आर्थिक समत्व, बाह्य संगठन शक्ति ही सब कुछ है। संस्कृति, सभ्यता साहित्य का मूल्य उपयोगितावादी है। `फूलों का देश' विश्वजीवन में बहिरंतर संतुलन की अपेक्षा रखता हुआ मात्र बाह्य संगठन की अक्षमता को सिद्ध करता है। बाह्य संगठन न केवल अपने आप में थोथा है वरन् उसने मनुष्य को जड़ भौतिकता का दास बनाकर हृदयहीन बना दिया है। मनुष्य को मनुष्य बनाने एवं भगवान् की सृष्टि के संरक्षण के लिये उसे भीतर से प्रबुद्ध बनाना है आत्मिक जागरन के समांतर ही बाह्य संगठन उपयोगी है। यह आध्यात्मिक भौतिकवाद एवं आदर्शवादी वस्तुवाद है जिसका गीत `फूलों का देश' है। यह रूपक ज्योति मानस का ही रूपक है जिसके विजन छाया वन में एक स्वप्न द्रष्टा कवि एकांकी जीवन व्यतीत कर रहा है। जीवन का संघर्ष, करूण क्रंदनस चीत्कारें उसके भाव जगत् को छूकर मर्म गीत में परिणत हो जाती हैं। विश्व को विनाश की ओर अग्रसर देख उसका मानस अनवरत चिंतातुर रहता है और एक दिन उसे अपनी जिज्ञासा का समाधान मिल जाता है :-

`धरती का जीवन सहसा निज ज्योति केन्द्र से
पुनः युक्त होकर, हो उठता पूर्ण काम है।'

....

किंतु नगरों में रहनेवाले विद्रोही नर - नारी कवि की शांत संतुलित और संयत मनोवृत्ति को उसकी असामाजिकता और अमानवीयता का चिन्ह मान लेते हैं। उनकी घृणा `पत्तो के प्रच्छाय नीड में' रहनेवाले पर फूत्कार कर उठती है।

कवि अपने अंतर्द्वंद्व की दुहाई देते हुए कहता है कि शांत मन से ही जीवन की दारुण समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं। मानव को उस मार्ग को अपनाना चाहिये जो कल्याणकारी है, न कि ध्वंसकारी। पशु प्रवृत्तियों को उभारकर एवं 'हिंसा का बदला हिंसा' के सिद्धांत को अपना कर मनुष्य ध्वंस की ओर ही बढ़ेगा।

'कलाकार हूँ मैं, पर जीवन संघर्षण से
विरत नहीं हूँ ! ....

X X X

'मैं नव मानवता की प्रतिमा यहाँ गढ़ रहा
अंतर्मन के सूक्ष्म द्रव्य से !'

जनगण के कटु नित वाक्य कवि को परास्त नहीं करते । उसका विश्वास अक्षुण्ण तथा अनुभूति सत्यता, सार्वभौमिकता और गहनता से ओतप्रोत है। इसीलिए वह कहता है कि आस्थाहीन सामूहिक जीवन मानव के लिये हितकर नहीं हो सकता।

'आज पुकार रहे चिल्लाकर-बाह्य संगठन
मात्र सत्य है ! बाह्य संगठन चरम लक्ष्य है।'

X X X

'भीतर ही रे मानव, भीतर ही सच्चा जग,
जाति वर्ग श्रेणी में नहीं विभाजित है जो,
उसे नव्य संगठित, पूर्ण सक्रिय, चेतन कर
बहिर्जगत् में स्थापित करना है मानव को।'

किंतु क्रोध के अंध प्रवाह में बहने वाले विद्वेषी एवं विद्रोही जनगण कुछ भी सुनने को तत्पर नहीं हैं।

'ध्वंस भ्रंश कर देंगे हम इस आदर्शों की
माया मोहक पंचवटी को, ...'

....

'बर्हिजगत की लौहमुष्टि फिर अंतर जग का
नव निर्माण करेगी जीवित आधातों से ! .....'

ज्ञान-विज्ञान, आदर्श-यथार्थ, भाव-रूप, अध्यात्मवाद-वस्तुवाद एक दूसरे

से समन्वित होकर ही मानव-जीवन का कल्याण कर सकते हैं। कवि इस समग्र दृष्टि का प्रतीक है। उसकी दृष्टि मानवतावादी होने के कारण व्यापक है, यथार्थ और आदर्श के शिवमय समवेत जीवन की प्रतीक है। वैज्ञानिक आविष्कारों को श्लाघनीय और आश्चर्यजनक मानते हुये वह वैज्ञानिक से समयोपयोगी प्रश्न करता है--

> `किंतु पूछता हूँ मैं तुमसे, आज मनुज क्या
> स्वामी है या दास प्रकृति का ? ....[१]

मानव–कल्याण के लिये आर्थिक समत्व को आवश्यक मान कर वैज्ञानिक कहता है कि संयुक्त कर्म ही भू-तम का विनाश कर सकता है। किंतु कवि संगठित जीवन, संयुक्त कर्म एवं बाह्य संगठन को बिना आत्मिक संगठन के अपूर्ण मानता है और अंत में इसे स्वीकार करते हुये वैज्ञानिक कहता है:

> `स्पष्ट देखता हूँ मैं, अंतर का विधान ही
> मानव है ! अंतः संयोजित, ऊर्ध्व समन्वित !
> आज मनुज मर गया ! ...... पराजित हो भीतर से
> दौड़ रहा है वह बाहर, व्यक्तित्वहीन हो !
> व्यक्तिहीन समाजिकता निर्जीव ढेर है।'

कवि की आस्था चिर आशावान् है। उसकी अटूट आस्था वर्तमान के अंधकार में भविष्य का स्वर्णिम प्रकाश देखती है। भगवान् की सुंदर प्रकृति में लहरों की रूपहली पायलों की छम-छम उसे सुनाई देती है। वह कहता है खेतों में हँसमुख हरियाली सोना उगल रही है। यह मनुष्य की पाशविक हिंस्त्र प्रवृत्ति है जो जीवन की रमणीयता को विनष्ट कर रही है। उसकी मानसिक सीमाओं ने ही सृष्टिकर्ता के सुंदर सृजन को निष्प्रभ और विषण्ण बना दिया है। अवश्य ही मन की सीमाएँ दुर्लंघ्य नहीं हैं। मानव अमृत पुत्र है। एक दिन अमृत प्रकाश उसके जीवन को उज्जवल बना ही देगा।

---

१. यही विचारधारा पंत के काव्य संग्रह गीत हंस' में भी मिलती है। चन्द्रलोक में मानव के पदार्पण (एपोलो-11) करने पर उनकी भू-कल्याण की आशा बलवती हो जाती है —

> `यह जो हो, दिग् चालक मानव
> बने न जन भू घातक
> भू को छोड़ चंद्र को वरना
> होगा दारुण पातक !
> (गीत हंस)

`आओ, हम दोनों बहिरंतर के प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलों के प्रदेश की,
नव युग जीवन में परिणत कर, सत्य बनाएं!'

`विंश शती' में घटित संघर्ष और उसके साथ ही मानव को भविष्य के सुखद जीवन की आशा प्रदान करने वाला काव्य रूपक `उत्तर शती' है। `उत्तर शती' के पूर्वार्ध में संग्राम का संक्षिप्त निदर्शन तथा उत्तरार्ध में कल्याणप्रद क्रम विकास की ओर संकेत है। गलित प्रथाओं, युग के परम्परागत बंधनों, पाशविक प्रवृत्तियों के विनाश और मांगलिक चेतना के अभ्युत्थान के लिये ही मानो महाकाल के मुक्त वक्ष पर `निष्ठुर हासिनी' प्रकृति उन्मादिनी होकर नग्न नृत्य करती है। भुक्त अर्धशती अनेक संक्रामक स्थितियों को पार कर उत्तर शती में पहुँची है। उसने बोअर युद्ध का दारूण क्रंदन और भीषण गर्जन सुना है। दो महायुद्धों ने उसके जन-जीवन को रक्त तरंगित कर दिया है। युग के कर्दम से अब नई धरती निखर रही है। अर्धशती की समाप्ति के साथ ही विश्व दो महान् शक्तिशाली विरोधी शिविरों, साम्यवाद और पूँजीवादी में विभाजित हो गया है।

वर्गहीन मानवता के उच्च ध्येय और अभिनव आकांक्षा से प्रेरित होकर साम्यवाद ने रक्तक्रांति को अपनाया है। किंतु क्या रक्तक्रांति द्वारा मानवता, सचमुच में ही वर्गहीन हो जायेगी ? कवि का निष्कर्ष हैं :–

`आवेशों की नई धरा वह ऊष्ण बहिर्मुख,
जिसे चाहिये जीवन मंथन, अंतदर्शन !'

फिर भी साम्यवाद की महत्ता का निराकरण नहीं किया जा सकता। उसकी आभा च्तुर्दिक् फैल रही है। साम्यवादी रुस एवं लोहिताक्ष नक्षत्र के संपर्क से भारत का पड़ौसी देश, रक्तजिह्वध्वज चीन भी लोक संगठन की करवट ले रहा है। आर्थिक साम्य, लोक-संगठन, जनमानवता के पंत मुक्त प्रशंसक हैं किंतु साथ ही, इस सबके लिये सांस्कृतिक चेतना को मूलाधार मानते हैं। इसीलिये विंश शती में भारत का सत्य, अहिंसा एवं करुणा का धर्म, विश्व सभ्यता को मात्र अर्थभित्ति पर खड़ा देख चिंतननिमग्न है। धनिक-श्रमिक के बीच रक्त की खाई जीवन-विकास के लिये बाधक है। आत्मिक ऐक्य तथा मानव समानता का बोध ही जीवन को स्वथ्य और प्रसन्न बना सकता है।

सन' 51 का आगमन युग चेता कवि के मन में वर्गहीन नैतिकता और आंतरिक उन्नयन में समन्वय के स्वप्न सँजो ही रहा था कि विश्व क्षितिज में युद्ध

के मेघ दृष्टिगोचर होने लगे। पूँजीवाद ने हिंसा का `धूमकेतू ध्वज' उठा लिया तो साम्यवाद लोक राष्ट्र की बृहत् जन साम्य योजना को भूल कर अपने जन तंत्रों को सैन्य शिविरों में बदलने लगा।

`घूम रही है धरा समय के घोर भँवर में।
दम साधे है खड़ा भयंकर अणु का दानव
भू व्यापी संहार, प्रलय हुँकार छेड़ने !!'

कवि कहता है कि भारत के पास वह आध्यात्मिक दायधन है जो विश्व को विनाश से बचा सकता है। भारतीय संस्कृति युग के बहिरंतर को संगठित कर उस आत्म-शक्ति एवं विश्व चेतना को उद्रबुद्ध कर सकती है जिसके बिना धरती का रूप कुत्सित तथा ध्वंसात्मक हो गया है । यह धरती मानव प्रयास से मंगलमय बन सकती है क्योंकि केन्द्रीय चेतना एवं आत्मिक सत्य शिवमय है।

महात्मा गाँधी की जन्म तिथि के अवसर लिखी श्रद्धांजलि की `शुभ्र पुरुष' है। इस रूपक में कवि ने गांधी जी के राजनीतिक व्यक्तित्व के साथ ही उनके सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति भी प्रणत श्रद्धा समर्पित की है। निःसंदेह `ऐसा करके उन्होनें कोई नई बात नहीं की'[१] क्योंकि वे गाँधीजी को अपनी अन्य कविताओं द्वारा भी श्रद्धांजलि अर्पित कर चुके है। किंतु क्या युग पुरुष एवं महापुरुष को श्रद्धांजलि कुछ निर्धारित बार, गिन कर, दी जाती है और गणना के सिद्धांत की सहायता लेकर `बस' कह कर हृदय को रीता कर दिया जाता है। क्या श्रद्धांजलि का मूल्य इस पर निर्भर नहीं है कि, चाहे वह सौवीं बार क्यों न हो, वह कितनी भावभीनी सच्चाई तथा किस नई प्रेरणा से अर्पित की जाती है ?

गांधी जी भारतीय स्वातंत्र्या संग्राम की आत्मा थे। भारत -भूमि को तमोग्रस्त देख कर उनकी महत् करुणा विगलित हो गई और वे जीवन रण में जनता के सारथी बन गए। कवि को प्राचीन भारत का यशस्वी जीवन याद आ जाता है जिसे मध्ययुगीन पलायनवादी असामाजिक प्रवृत्ति ने विकृत कर दिया है। यह जीवन भागवत जीवन ही है। राष्ट्रपिता जगत् वंद्य महात्मा जी के व्यक्तित्व ने भारत की सुप्त आत्मा को जात् कर दिया है। अब वह जन हित के लिये नव जीवन का निर्माण करने के क्रम में आतंरिक एकता-आत्म-बल, अहिंसा की नींव–पर लोकतंत्र का सुदृढ़ भवन खड़ा कर रही है।

---

१ बच्चन : `कवियों मे सौम्य संत', पृ. 127

गांधी जी के अहिंसक व्यक्तित्व ने भारत के `वसुधैव कुटुम्बकम्' के शाश्वत धर्म का पुनर्जागरण किया है। विविध मतों, वर्गों, प्रांतों में बिखरे जन मन को मनुष्यत्व के सूत्र में बाँधने का अथक प्रयास किया है। गांधी जी की महानता के प्रति भारत का हृदय सदैव आदर से प्रणत रहेगा। जिस समय हिंसा पृथ्वी पर नग्न नृत्य कर रही थी, भू का जीवन भौतिकता से जर्जरित हो गया था, अंबर से महानाश का पावक बरस रहा था तथा राष्ट्रों के कटु स्वार्थों और स्पर्धा-लिप्सा से धरती में जीवन यापन दुर्बह हो गया था उस समय वे सदाचार की रजत शिखा लेकर अवतरित हुए–

`अमृत स्पर्श से आहत जगती के व्रण भरने',

....

`धन्य मर्त्य के अमर पांथ, तुम निखिल धरा को
गूँथ गए नव मनुष्यत्व के स्वर्ण सूत्र में'

`विद्युत् वसना' एक छोटा-सा रूपक है जो स्वाधीनता दिवस के उपलक्ष्य में लिखा गया। प्रकृतितः यह स्वाधीनता की चेतना को प्रतिच्छवित करता है। स्वधीनता की चेतना विद्युत् वसना के रूप में नव युग के लिए अमर संदेश लाती है : स्वाधीनता ध्येय नहीं, साधन मात्र है; ध्येय है, अंतरनिर्भरता तथा एकता। विश्व बोध से संपन्न इस युग के लिये स्वतंत्रता का अर्थ विश्व मानवता की स्थापना है एवं `लोक मंगल', लोक एकता तथा लोक जीवन की चरितार्थता है। जीर्ण जर्जर का विनाश और नव्य चेतना का सृजन ही स्वतंत्रता है। विद्युत वसना दुर्गा ही है, वह दुर्गा के संहार और सृजन का प्रतीक है।

`महानाश के खंडहर पर जन मन उन्मादिनि
नाच रही है विद्युत् वसना लोक चेतना
अट्टहास भर, शत स्फुलिंग बरसा अंदर से,
नव जीवन के अग्नि प्ररोहों में रोमांचित।',

`विद्युत् वसना' के सृजन और निर्माण से परिचित एवं स्वतंत्रता के बोध से युक्त जन के स्वर उसका अभिवादन करते हैं जिसे वह स्वीकार करते हुए कहती है :–

`पतझर के वन को मांसल कर,
नव रूप रंग भर जाती हूँ।'

अभिवादन है इस परिवर्तन का जो गलित प्रथाओं, गत आदर्शों, जर्जक

रूढ़ि-रीति और स्वार्थी प्रवृत्ति का अंत कर नव निर्माण की शक्तियों को जन्म देता है।

`आज खुल रहे युग युग के व्रण,
उमड़ रहा भू का अवचेतन
अयि जीवन तम अशने !
विद्युत वसने !'

X X X

`मैं महा प्रलय के पंखों की
छाया में सर्जन की सेती'

किंतु यह सर्जन, यह स्वतंत्रता किस मनोल्लास को अभिव्यक्ति दे रही है? क्या इसका महत् उद्देश्य है, क्या प्रेरणा ! वह जीवन का कौन सा आदर्श है जो अगणित जनगण को एक प्राण कर चला रहा है?

`साधन केवल जन-स्वतंत्रता,' मनुज एकता
लोक साम्य औं-विश्व प्रेम ही प्राप्य ध्येय हैं।
....
`अंतर्निर्भरता ही युग का परम लक्ष्य है!
अंतरनिर्भरता ही `मृत्योर्माऽमृतं गमय' का बोध है।'

`शरद चेतना' प्रतीतितः प्रकृति सौदर्य का रुपक है। इसमें पंत ने अपने प्रकृति प्रेम का सर्वांगीण परिचय देते हुये प्रकृति प्रेम का सर्वांगीण परिचय देते हुये प्रकृति के रूप-रंगों में मानवीय संवेदन को स्पंदित कर दिया है। शरद चाँदनीं का अद्वितीय सौंदर्य वह अमर चेतना है जिसके प्रकाश से ही फूलों की पंखड़ियाँ कोमल रंग बरसाती हैं, लोल लहरियाँ सरसी के उर में लय हो जाती हैं तथा ताराओं की पलकें झिलमिल कर सो जाती है। `शरद चेतना' द्वारा कवि ने अंतः सौंदर्य, अंतः सत्य को वाणी दी है। अंतः सत्य की अभिव्यक्ति होने के कारण समस्त प्रकृति उसके सम्मुख प्रणत है। धरती की ऋतुएँ – हेमंत, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा आदिचिर निर्मल नभवासिनी शरद ऋतु का अभिवादन करती है। ऋतुओं का प्रणत होना ही शरद ऋतु की `अमर चेतना' का अवरोहण

है।[1] पृथ्वी पर चारों ओर श्री सुख शांति की वर्षा है।

रूपक 'शरद चेतना' के स्वागतपूर्ण वर्णन से प्रारंभ होता है।

'शरद चेतना !
प्रीति द्रवित अमृत स्त्रवित'
....
'तृण तरु पर मुक्त हास,
लहरों पर ज्योति लास,
सारस रसना।'

इसके साथ ही वाचक वाचिकाएं शारदागम का व्यापक मनमोहक वर्णन करते हैं। प्रकृति में सर्वत्र उल्लास है। हँसमुख व्योम की नीलिमा में अधिक निखार आ गया है। वर्षा का रिमझिम आकाश झाड़ियों में बरस कर धरा में छा गया है। रंग - बिरंगे फूलों की चंचल चितवन इन्द्रधनुष का आभास देती है। फूलों की सौरभ धरती की सौंधी सुगंध से घुलमिल कर मुग्ध हृदय को सहज ही समुच्छसित कर देती है। प्रकृति का यह आनंद, उल्लास, मंजरियों का नर्तन, मकरंद की सुगंध सुंदर हँसमुख सुरबाला-सी शारदीया के धरती पर साकार होने को प्रतीक है।शारदीया अशरीरी होते हुये भी शरीरी है। वह धरती की गंध है जिसका अर्थ है।

'मधुर प्रणय का स्वप्न हृदय की पलकों में ज्यों
प्रथम बार मुसकाया सद्योज्वल विस्मय में !

---

१ 'शरद चेतना' कवि ने उस चंद्रिका को कहा है जो शरद चंद्र से पृथ्वी पर उतरती है। मानव के सम्यक् विकास के क्रम में निम्न चेतना ही नहीं ऊपर उठती, ऊर्ध्व चेतना नीचे भी उतरती है। इसी को हमारे दार्शनिकों ने मर्कट न्याय और मार्जार न्याय कहा है। बंदर का बच्चा ऊपर उछलकर माँ के पास पहुँचता है, बिल्ली नीचे झुककर अपने बच्चे को उठा लेती है। इसी को भी श्री अरविंद ने Double Ladder या दुहरी सीढी कहा है ।''

बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत', पृ. 134

मर्कटन्याय और मार्जार न्याय को भक्ति और प्रपत्ति के संदर्भ में समझने का बच्चन जी ने यदि कष्ट किया होता तो Double Ladder की महिमा स्पष्ट हो जाती। भक्ति आस्था और प्रेम की अनिवार्यता को मानती है, भगवत् अनुकम्पा का इनके द्वारा उपार्जन किया जाता है। यह मर्कट न्याय है। जिस भाँति बंदर का बच्चा अपनी माँ से चिपक जाता है (ना कि उछलना) उसी भाँति भक्ति में भक्त भगवान के प्रेम में लीन हो पूर्ण आत्म-समर्पण कर देता है। मार्जार न्याय में बिल्ली अपने बच्चे को मुँह से पकडकर उठाती है। अथवा प्रपत्ति में भगवत् अनुकंपा अपने आप बरसती है।

नहीं भूमिजा वह, वैदेही भाव शरीरी,
उसके अंचल की पावन छाया में आओ !'

शारदीया की पावन छाया में क्रम से हेमंत, शिशिर, वसंत आदि ऋृतुएं आती हैं जिनके स्वभाव, रूप और व्यापार का जीवंत, यथातथ्य किंतु हृदयस्पर्शी वर्णन कवि ने किया है। शरद का गीत तो ऋृतुओं की आभा को परिपूर्णता ही प्रदान करता है। वह स्वच्छ चाँदनी में विहँसता हुआ चंद्रकमल है जो अंतर की विशुद्धता और उल्लास में एकाकार हो जाता है। फूलों और प्रकृति के मधुर गीत, प्रकृति का मुक्त हास, उसका इंद्रधनुषी छायांचल, लहरों का नृत्य, उषा की मौन सलज लालिमा सुंदर, सुखद स्निग्ध जीवन की लोरी गातें हैं –

'जो घृणा द्वेष की अँधियाली इस धरती में फैली रहती
तुम उर का प्यार उडेल उसे धो डालो है, ज्योत्स्ना कहती ! '

यह मानवता का प्यार है जो मंगल पीयूष की वर्षा कर जीवन को आनंदित और उल्लसित करता है। मनुष्य को इस अतल प्यार के मर्म को समझने के लिये अपने हृदय के रूद्ध द्वार को खोलना होगा।

'जीवन रे वृथा भार
अंतर में जो न प्यास!'

अंतर के प्यार की प्यास भू जनों को ज्योतिर्मय चेतना से सिक्त करके आह्लादित कर देगी, यही साध्य तथा इष्ट है।

'अब हंसों के पंखों में उड
हँसता धरती का उर चेतन !'

'रजत शिखर' के काव्य रूपक अपने आप में एक मापदण्ड स्थापित करते हैं।[१] ये कवि की व्यापक दृष्टि, शब्दों और छंदों की आंतरिक पैठ, अभिव्यक्ति की सक्षमता, चित्रयन्ता, ध्वनि-संगीत तथा, सम्मोहन शक्ति के जीवत रूपक हैं।

१ 'कविवर सुमित्रानंदन पंत ने कई सफल संगीत - रूपक लिखे है – 'फूलों का देश', 'मानसी', 'विद्युत् वसना' इत्यादि। ...... ये संगीत रूपक सांकेतिक हैं। इनमें नवयुग का संदेश भरा हुआ है। 'शरद चेतना' नामक संगीत रूपक में आप ने प्रकृति सौंदर्य का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। ग्रीष्म, शरद, वसन्त, हेमन्त, शिशिर आदि इसके पात्र हैं, जो इन ऋृतुओं में होने वाले वातावरण का संगीतमय वर्णन करते है। पंत जी का 'रजत शिखर' नामक एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है, जिसमें काव्य-सौष्टव तथा वर्णन की चित्रोपमता है। .... काव्य के क्षेत्र में 'रजत शिखर' के संगीत - रूपक अपना स्थायी महत्व रखते हैं।'
रामचरण महेन्द्र : 'हिन्दी में ध्वनि-एकांकी की प्रगति' कल्पना, दिसम्बर 1952, पृ. 880।

इन रूपकों के सशक्त माध्यम द्वारा कवि सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, मनोज्ञानिक और जैव सिद्धांतों की एकांगित पर प्रकाश डालता है। विभिन्न विषयों का ज्ञान अपने आप में स्तुत्य है किंतु जब इन विषयों के सीमित क्षेत्र को विस्मृत कर, प्रत्येक विषशय को अपने आप में पूर्ण मानकर उसके एकाधिकार के लिये मनुष्य प्रयत्नशील हो जाता है तो वह जीवन को अभिशप्त करने में ही सहायक होता है। इसीलिये पंत उस दृष्टिकोण को अपनाते हैं जो सब सिद्धांतों का होते हुये भी किसी एक सिद्धांत का नहीं, जो संपूर्ण जीवन एवं समग्र मानवता का है। उनके लिये न संकीर्ण समाजवाद वरेण्य है, न संकीर्ण अध्यात्मवाद। उनका सिद्धांत व्यापक प्रेम का सिद्धांत है, वे उसी समाजवाद, अध्यात्मवाद, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवशास्त्र अथवा विज्ञान के सम्मुख प्रणत है जो प्रत्येक मनुष्य के मनुष्यत्व एवं व्यक्तित्व का आदर करता है, प्रत्येक को उसकी पूर्णता प्राप्त करने का अधिकार देते हुये उसे व्यापक प्रेम, मानव प्रेम और एकता के बोध से युक्त करता है। `रजत शिखर' के सभी रूपकों का केन्द्रीय सत्य एक है -- जीवन के अपूर्ण एवं एकांगी अनुभव और ज्ञान ने मानव को उत्पीडित कर दिया है। किसी भी `वाद की अतिशयता अपने आप में उत्पीडन एवं आत्मपीडन है। इन रूपकों के माध्यम से पंकु अपने पाठकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का प्रयास करते हैं, ज़ीवन सत्य के प्रति उन्हें प्रबुद्ध करते है।[१] युग जीवन एवं युग चिंतन के विस्तृत वर्णन द्वारा वे जीवन के सभी प्रमुख अंगों का आलोचनात्मक गीतिमय वर्णन करते हैं। पंत के लिये काव्य जीवन का सत्य ही है। वही सच्चा गायक (कवि)है जो समग्र रस के सत्य का द्रष्टा है। वार्तालाप की नाटकीयता के साथ वे इन रूपकों में व्यक्त कर देते हैं कि यथार्थ एवं सत्य को सीमित सिद्धांतों और वादों की लौह दीवारों में बंद नहीं किया जा सकता। पूँजीवाद, साम्यवाद, फ्रॉएडीय मनोविज्ञान, विज्ञान, मायावाद, रूढ़िवादी धर्म, नैतिक-सामाजिक मान्यताएं आदि तभी उपयोगी हो सकती हैं जब उनका मूल्यांकन सम्यक् सत्य अविच्छिन्न अंग के रूप में युग के अनुरूप किया जाए। विकासशील जीवन के क्रम में स्थिर या अपरिर्वनशील नियम

---

१ तुलना कीजिए : `रेडियो से संबंध स्थापित हो जाने के पश्चात् `विद्युत वसना' आदि उन्होंने कई ध्वनिरूपक लिखे हैं, जिन्हे `ज्योत्स्ना' की परम्परा की लघु रचना कह सकते हैं। इनके पात्र भावनाओं और प्रकृति के उपकरणों के प्रतीक होते हैं।''
भवानीशंकर त्रिवेदी : `आधुनिक महाकवि', भारती सदन, 20 मॉडल बस्ती, दिल्ली : तृतीय संस्करण, 1955 तथा
`समतल और ऊर्ध्व-मानों की द्वन्द्वमय विवृति पंत की एक काव्य-लब्धि है।' शंभुनाथ चतुर्वेदीः पंत की नयी कविता। युगचेतना, अक्टूबर 58, गचेतना कार्यालय, लखनऊ, पृ. 13।

अपना अर्थ खो देते हैं। उनके सापेक्ष महत्व को स्वीकार करना ही होगा।

जिस स्पष्टता, दृढ़ता, सहजता और विश्वास के साथ पंत अपने मत का प्रतिपादन करते हैं वह स्वतः प्रत्यक्ष होने के साथ ही अत्यधिक श्लाघनीय है। किसी भी प्रतिभावान् लेखक की प्रतिभआ इसीलिये वंदनीय कहलाती है कि उसने युग-सत्य का कितना सही मूल्यांकन किया है, वह जीवन के निर्माणात्मक तत्वों के विकास में कहाँ तक सहायक है। जन - गांगल्य की आकांक्षी और संस्थापक प्रतिभा ही मानवता का अभिवादन प्राप्त करती है। पंत के काव्य रूपकों को उनकी काव्य प्रतिभा को समझने के लिये, – जैसा कि उनके समस्त काव्य के बारे में कह सकते हैं, – उनकी भावभूमि, मानवता के प्रति अगाध प्रेम एवं भारतीय विचारधारा और संस्कृति का बोध अनिवार्य है। वे भारतीय संस्कृति और चेतना के अमर गायक हैं। उनके लिये भागवत जीवन प्रेम का जीवन है, प्रेम अर्थात् कल्याण, मानवता का कल्याण, भगवत की सृष्टि का सुंदरतम तथा कल्याणतम रूप–यही पंत काव्य का इष्ट है जिसे वे अपने भावभीने गीतों द्वारा मूर्त करने का अनवरत प्रयास करते हैं। कुछ आलोचकों को उनके इन रूपकों के लिये यह कहना, और बार-बार कहना आनंद देता है कि इनमें अरविंदवाद के अतिरिक्त कुछ नहीं है।[१] जिस किसी ने भी अरविंद दर्शन पढ़ा होगा वह उसकी श्रेष्ठता को निष्पक्ष रूप से स्वीकार करेगा किंतु पंत पर आरोपित `अरविंदवाद' को समझने के लिये उन्हें मात्र `हार' और `ज्योत्स्ना' को उन्मुक्त हृदय से पढ़ना होगा। `ज्योत्स्ना' का भाव-तारल्य ही यहाँ यथार्थ की भूमि में विचरण करके रूपायित होता है। `ज्योत्स्ना' की संवेदना, स्वप्नलता का आभास देते हुए भी, सत्यनिष्ठ है क्योंकि मानव-प्रेम का ठोस आलम्बन उसे वायवी नहीं रहने देता। `स्वर्ण किरण', `स्वर्ण धूलि' और `उत्तरा' की यथार्थता जो मूलतः ज्योत्सना का सारतत्व है, `रजतशिखर के रूपकों, विशेषकर प्रथम तीन रूपकों, में अत्यधिक व्यापकता, दृढ़ता और विस्तार पा लेती है तचथा इस कारण इनमें सर्वत्र जीवन स्पंदित होता रहता है।

---

१ देखिए अध्याय : पंत और वादों का विश्व

परिशिष्ट

3.2 शिल्पी

`शिल्पी' का प्रकाशन काल 15 सितम्बर, '52 है। इसके अंतर्गत तीन काव्य रूपक हैं – `शिल्पी', `ध्वंसशेष' और `अप्सरा'। तीनों ही संघर्षरत वर्तमान भू जीवन पर प्रकाश डालते हुये यह प्रमाणित करते हैं कि अंततः विश्व जीवन एक व्यापक अतः संयोजन की अपेक्षा रखता है। यह जीवन का गहन आंतरिक बोध तथा आत्मिक ऐक्य का अभिज्ञान है।

`शिल्पी' में कला-मूल्यों का संघर्ष प्रस्तुत कर उनका समाधान किया गया है। यह उच्च ध्येय से प्रेरित कलाकार के अंतः संघर्ष का दर्पण है। कलाकार के लिये कला, कला के लिये नहीं है। वह जीवन के लिये है, जीवनसत्य की अभिव्यक्ति है। मानव इतिहास के पृष्ठों पर उन साधकों और कलाकारों का गौरव स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हैं जिन्होने मानव के अंतरतम को छुआ है, उसे विकसित और सुसंस्कृत बनाया है। कलाकार एवं `शिल्पी' का अंतर-द्वंद्व उस तप और साधना को मुखरित करता है। जो मानव कल्याण के लिये है। शिल्पी, शिष्या, आमंत्रित जन तथा जननायक के स्वागत भाषण और कथोपकथन द्वारा कलाकार के चिंतन-मनन एवं मानसिक मंथन का व्यापक वर्णन स्वतः स्पष्ट कर देता है कि वही कला श्रेष्ठ और सच्ची है जो महत् जीवन की प्रेरणा प्रदान करती है। महत् जीवन प्रेममय लोकमंगल का जीवन है, वह जीवन की उसकी संपूर्णता में स्वीकृति है, उसकी विभिन्नता में एकता का आनंद निहित है।

तीन दृश्यों में विभाजित यह रूपक अपने प्रथम दृश्य में कलाकार की मनः स्थिति का चित्रांकन करता है –

> `निर्मम हृदय शिला ! (निश्चल)
> कैसे आँकूँ प्रियतम की छबि
> जड़ पाषाण जिला !'
>
> ....
>
> `मन ने ममता का तम पाला

अमर चेतना स्पर्श बिना कब
मानस कमल खिला !'

शिल्पकार का मूर्ति निर्माण करना मानो वर्तमान जीवन को कुंठाओं, स्वार्थों और अहं से मुक्त कर नयी चेतना को रूपायित करना है। उसका संघर्ष आत्मिक होते हुए भी वस्तु परक है। विस्तृत जीवन के संघर्षों में साम्य-संगति स्थापित करने के लिये ही शिल्पकार पाषाणवत् मनुष्य हृदय को चेतना के अंकुश द्वारा सचेत (आत्म-चेतन)करने का दुर्लभ प्रयास करता है। वह भलीभाँति जानता है रुढ़िग्रस्त आत्मा के जड़ संस्कार बदलना किस महत् शक्ति, संकल्प और साधना की अपेक्षा रखते हैं। किंतु उसका तो जीवन ही कलाकार का है, इष्ट की प्राप्ति का जीवन वह अपना सर्वस्व - गुलसुम, फुलना, तिलरा, खेरना तथा अपनी कला-शक्ति - ध्येय की प्राप्ती के लिये अर्पित कर देता है। प्रयोग के क्रम में उसे प्रस्तर के अंतर में मनुष्यत्व की ज्योति जगती दीखती है:

'ईश्वर ![१] ... अब जाकर पाषाण सजीव हुआ कुछ ! .....'

कलाकार का अहं इस ज्योति के आभास मात्र से आत्म-प्रशंसक हो उठता है, पर शीघ्र ही, उसे भासित हो जाता है कि यह वह अहंकार है जो कला के प्रस्फुटन में अवरोध उत्पन्न करता है –

'कलाकार के अहंकार, तू बाधक मत बन'

---

१ ''आस्थाहीन शिल्पी घोर परिश्रम करने पर भी मूर्ति - निर्माण में सफल नहीं होता, तब उसके हृदय में ईश्वर के प्रति आस्था उत्पन्न होती है और सहसा ही मूर्ति सजीव हो उठती है — ईश्वर ! अब जाकर पाषाण सजीव हुआ कुछ !''
विश्वम्भर नाथ उपाध्याय – 'पंत जी का नूतन-काव्य और दर्शन', पृ. 737 कहने की आवश्यकता नहीं कि एक सामान्य पाठक भी यह समझ लेगा कि 'ईश्वर' यहाँ पर संबोधन कारक है और शिल्पी पहिले से ही आस्थावान व्यक्ति है अन्यथा उसका आंतरिक संघर्ष अर्थशून्य है।

२ 'शिल्पी आस्थाशील मन से गांधी, पटेल, गौरीशंकर, राधाकृष्ण आदि की मूर्तियाँ बनाता है। इन मूर्तियों के चित्रों के वर्णन काव्य के सौंदर्य से ओत-प्रोत है। ..... शुद्ध काव्य की दृष्टि से शिल्पी के कुछ चित्र बड़े ही मोहक बन पड़े हैं –
'प्रस्तर के उर में युग जीवन का समुद्र ही'
....
'अहा इधर शोभित हैं मनमोहन मुरलीधर
....
'मधु ज्वाला ने रोमांचित गलबाहों दी हो।'
....
पंत के काव्य-रूपकों की एक विशेषता है 'स्वप्नों का चित्रण'। कल्पना की भव्यता के लिये ये दृश्य दार्शनीय है।' वही, पृ 738-740

अपने साध्य की खोज में कलाकार अनेक निरुपम प्रतिमाओं[१] को गढ़ कर अधूरा ही छोड़ अथवा तोड़ देता है। यह उसका अपने सृजन के प्रति असंतोष है, असंतोष जो विकास का सूचक है। यह पंत का अपनी कला के प्रति यभार को भी अभिव्यक्ति देता है। उनका कलाकार अपनी कला से संतुष्ट नहीं है, ``कुछ अच्छा लिख पाता'' – यही उनके मुँह से अधिकतर सुनने को मिलता है।

जिस भगवान् की लीला यह विश्व है उसके स्वरूप को जगत् में मूर्तिमान करने की आकांक्षा शिल्पी में प्रबलतर होती जा रही है। वह नहीं समझ पा रहा है कि नित्य बदलती हुई वास्तविकता के पट में मनुज आत्मा का चिरन्तन सत्य कसे मूर्तित हो सकता है। बाह्य क्रांति के साथ ही अंतर का आदर्श भी परिवर्तित हो रहा है, – इस सबको, युग की आत्मा को कला में प्रतिष्ठित करने में वह अपने आप को असमर्थ पाता है।

इसी बीच कलाकार के कक्ष में दर्शकों का प्रवेश होता है। गांधीजी की विभिन्न मुद्राओं की प्रतिमाएँ, बुद्ध, ईसा, रवीन्द्र, पटेल, चन्द्र कौमुदी, मेघ दामिनी, पूर्ण चन्द्र सागर बेला, मनमोहन मुरलीधर की प्रतिमाओं से कला कक्ष शोभित है। इन प्रतिमाओं का वर्णन चित्रमत्ता और प्रतीकात्मकता के अद्वितीय सम्मिश्रण के साथ भाव-माधुर्यपूर्ण है। इन प्रतिमाओं के लिये बच्चन जी का कहना है, ``उसने (शिल्पी) विध्न विनाशन एकदंत, मनमोहन, मुरलीधर, गौतम बुद्ध, मसीह, गांधी जी, कवीन्द्र, रवीन्द्र, सरदार पटेल आदि की प्रतिमाएँ बनाई हैं। क्या ये द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविताओं और राजा रवि वर्मा के चित्रों की बहनें नहीं हैं? फिर उसने शिल्प कला में अभिनव प्रयोग किए हैं। उसने `चन्द्र कौमुदी', `मेघ दामिनी', और पूर्ण चन्द्र सागर बेला की प्रतिमाएं बनाई हैं। ब्रायवीय कल्पना को मूर्त करने वाले शिल्प स्वप्न की ये स्वप्न सृष्टियाँ क्या छायावादी कविताओं और अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के चित्रोन की सहोदराएँ नहीं हैं ......।[१]'' बच्चन जी की आपत्तियाँ विचित्र हैं। वे ये भूल जाते हैं कि यथार्थ की भूमिका पर आधारित काव्य नाट्य यदि उन चित्रों को मूर्तिमान कर देता है जिनका संबंध उसके देश और काल से है तो यह उसकी सफलता मानी जायेगी। बिना यथार्थ को अपनाए उस आदर्श की सृष्टि नहीं हो सकती जो यथार्थ का ही विकित मानवोचित रूप है। वैसे यह मनाना होगा कि छायावादोत्तर काल की कविताओं की मूर्तियाँ बनाना पंत भूल गए हैं।

---

१ बच्चन : `कवियों में सौम्य संत', पृ. 135

प्रथम दृश्य में मुरलीधर की मूर्ति एक श्रेष्ठिपुत्र क्रय कर लेते हैं और द्वितीय दृश्य में उनके द्वारा बनावाए हुए मनोरम देवालय में मुरलीधर की मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाती है। भक्तिभावपूर्ण कीर्तन रामयुग, कृष्णयुग और पौराणिक गाथाओं के सत्य स्वरूप को जीवंत कर देता है। श्री राम ने आत्मा का उन्नयन किया था, मनोभूमि में उतरकर मनश्चेतना को देह-भीति से विदेह कर दिया था। यमुना की लहरें, गोपियों का मधुमय जीवन, कृष्ण की वंशी उस काल के प्रीतिमय जीवन को मर्मरित करते हैं। कृष्ण पूर्ण व्यक्तित्व के प्रतीक हैं, उनमें भक्ति, ज्ञान और कर्म मूर्तिमान हो उठा था। भक्ति प्रणत स्पंदित अंतर से भक्तजन कीर्तन में लीन हैं। युग युग से वे कीर्तन-वंदन तथा मुनियों के प्रवचन सुनते आए हैं। किंतु क्या धार्मिक उपदेशों ने चिर रहस्य को उनके हृदय में व्यक्त कर दिया है ? जनगण का जीवन अंध प्रवाह में बह रहा है। उनका कीर्तन परम्परागत है। उनका जीवन दैन्य, अविद्या, अंधकार के अतल गर्त में डूला है। प्रतिमा पूजन के नाम पर वे मृत आदर्शों का पूजन कर रहे हैं।

'संस्कृति और कला के जीर्ण प्रतीक मात्र जो
उन प्रतिमाओं के सम्मुख नत मस्तक होना
अपमानित करना है मानव की आत्मा को, —'

....

'कोई भी आदर्श नहीं जो पूर्ण चिरंतन
इस परिवर्तनशील जगत में, ...'

अपने स्वभाव के अनुरूप मनुष्य ने समस्त जड़ जगत् को आकृति दी है। प्रतिमा पूजन का यही महत्त्व है कि वह उसके हृदय की गहनतम आवश्यकताओं को मूर्त करता है। प्रतिमा वह मूर्ततत्व है जो उसके भावों को साकार करता है किंतु मानव दुर्बलता ! भावों, आदर्शो को भूलकर मात्र पाषाण पूजन करती हैं।

'जड़ प्रतिमा तो मात्र भाव का कला रूप है।
जीवन के प्रति श्रद्धा, मानव के प्रति आदर,
जीवों के प्रति स्नेह, यही प्रभु का पूजन है।'

X X X

'कलाकार का हृदय विकल है नवजीवन की
प्रतिमा अंकित करने को सर्वांग पूर्णतम —

जनयुग की निर्मम पाषाण शिला के उर में ! ----'

तृतीय दृश्य में अपने कलाकक्ष में बैठा शिल्पी अपनी अधूरी प्रतिमा के निर्माण में मग्न है। प्रतिमा का निरीक्षण करते हुये वह संक्रमण काल पर विचार करने लगता है। मनुज का विगत मनः संगठन ध्वंस हो रहा है। यह ध्वंस निर्माण का उद्घोषक है। इसके समांतर एक मनोरम दिव्य मूर्ति प्रस्फुटित हो रही है जिसका उर निखिल विश्व की आकांक्षाओं से स्पंदित है और लोचन प्रीति मौन निस्तल करुण से द्रवित है। मनुज आत्मा के इस वैभव को भू जीवन की निर्मम वास्तवता संवरण नहीं कर पा रही है। शिल्पी अपनी प्रतिमा को इस विरोध से मुक्त करने का प्रयास करता है और उसे सफलता भी मिल जाती है

`आह, अंत में दृष्टि शून्य पाहन पलकों पर,

मूर्त हो उठा स्वर्ण स्वप्न मानव अंतर का !'

शिल्पी की उन्मेषिनी कल्पना जल तक जन मन को नव जीवऽ शोभा से वेष्टित नहीं करती तब तक वह उपेक्षणीय ही है। कला चेतना लोक जागरण का मापदण्ड बनकर ही जी सकती है। जन समूह शिल्पी के कलाकक्ष में प्रवेश करते ही कहता है —

दुखः दैन्य से जर्जर जब जनगण का जीवन, —

....

`आप व्यस्त हैं, यश की लिप्सा से प्रेरितच् हो,'

....

`आत्मभाव रत, जीवित जनता से विरक्त हो।'

किंतु मूर्ति का दर्शन उनमें उच्च भावोन्मेष करता है। वह स्वीकार करते हैं कि कला और अन्न दोनों ही जीवन के सहधर्मी हैं। यदि श्रमजीवी अन्न-वस्त्र से प्राणों की रक्षा करते हैं तो कला प्राणों की मानवीय बनती है। जीवन और कला एक ही हैं। मात्र अन्न की लालसा दुर्दमनीय प्रतिद्वंद्विता, क्रांति, विद्वेष को जन्म देती है तो मात्र स्वप्निल भाव बच्चे के दिवास्वप्न की भाँति हैं। दोनों का महत् योग भू जीवन को श्रेष्ठ बनाएगा।

`निज कर्मों में मूर्त करेंगे इसका वैभव ! --
युग युग तक गाएंगे जनगण इसकी महिमा !'

`शिल्पी' कला और जीवन के अनन्य समन्वय का पोषक होने के साथ ही विद्रोही है। यह विद्रोह जीवन-वियुक्त कला, स्थूल वस्तुवाद और रुढ़िवाद के प्रति है। वह जो मानव के लिये कल्याणकारी नहीं हैं, अवांछनीय है। पौराणिक आख्यानों की आस्था युक्त व्याख्या, `कला के लिये कला' के सिद्धांत तथा निर्जीव परम्परा पर मानव-कल्याण के खड्ग से समयोचित प्रहार पंत के कलाकार हृदय की ही पुकार नहीं है वरन् सभी सच्चे कलाकारों के हृदयों की व्यथा है। यह कलाकारों के आत्म-जीवन, आत्म-संघर्ष और आत्म-स्वरूप की गाथा है। इस अर्थ में यह पंत की स्व-जीवनी भी है। कलाकार युग-प्रबुद्ध मानस है। वह जीवन की प्रत्येक इच्छा-आवश्यकता से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने की क्षमता रखता है। वह जानता है कि धरती से अन्न उपजाने वाले प्राकृत शिल्पी अभिनंदनीय हैं क्योंकि क्षुधापूर्ति उन्हीं के श्रम से संभव है। देह और आत्मा की अनिवार्य इकाई मनुज श्रमजीवी और कलाजीवी दोनों पर समांतर भाव से निर्भर है। दैहिक संतोष आत्मिक संतोष के बिना अधूरा है, अधोमुखी है। मात्र प्राणिक जीवन ने मानव सभ्यता को तिमिराच्छन्न कर दिया है। श्रमजीवी के प्रति पंत का प्रबुद्ध हृदय युगवाणी-काल से ही प्रणत रहा है।

चार दृश्यों में वर्णित `ध्वंस-शेष' का कथानक युद्ध विभीषिका के लोमहर्षक वर्णन के साथ नव जीवन निर्माण के स्वपन को आकार देता है।[१] वृद्ध, युवती, पुरुष, प्रकृति, नागरिक, सैनिक, द्रष्टा और प्रतिनिधि अपने कथोपकथन द्वारा पृथ्वी के अणु-त्रस्त जीवन, ध्वंस और पुनर्निमाण पर प्रकाश डालते हैं। प्रथम दृश्य में युवती युद्ध को युग-मन के परिचय द्वारा आगामी विभीषका का संकेत

१ `ध्वंसशेष' काव्य की दृष्टि से अत्यधिक सफल काव्य-रूपक है। धर्म, राजनीति, दर्शन, वर्गसंघर्ष के ऊपर आधारित दर्शन आदि का ध्वंसावशेष यहाँ चित्रित है। विज्ञान की चरम उन्नति के युग की विकृतियों को कवि ने सफलता पूर्वक चित्रित किया है। प्रकृति के ऊपर विजय के मद में मदान्ध मनुष्य के प्रयत्नों से प्रकृति क्रुद्ध है। ...... यौंत्रिक युग में महाविनाश के जो बादल उमड़ रहे हैं, उनका बड़ा ही विराट् व मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। कामायनी के `चिंता' शीर्षक सर्ग से इस प्रलय वर्णन की तुलना की जा सकती है।
'प्रलय-बलाहक से घिर घिर कर विश्व क्षितिज में'
....
`घुमड़ रहे विद्युत् घोषों के पंख मार कर'
`....... कवि ने पूरी शक्ति से विनाश के इस चित्र का अंकन किया है। लोमहर्षक विनाश के इस वर्णन को पढ़कर युद्ध - पिशाच केवल हँसकर ही रह जाएँगे किंतु शांतिप्रिय जनता के लिये युद्धों का यह विरोध पंतजी के महत्व को निश्चित रूप से बढ़ाता है।'
विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : `पंतजी का नूतन-काव्य और दर्शन', पृ. 740-741``

देती है। सन् 52 में लिखा गया यह रूपक उस समय का आशंका, तृतीय युद्ध की संभावना पर आधारित है। विश्व में सर्वत्र ध्वंस, कोलाहल, आंदोलन संघर्षण ही वर्तमान है। भू जीवन की यह कुरूप वास्तविकता उसी के निर्मम जीवन संघर्षण का बाह्यरूप है।

`शुभ्र शांति की छद्म ओट में महाप्रलय का
खर तांडव रच रहे, भयंकर अणु दानव को
पाल पोस कर, समर संगठित कर जन-बल को !'

युवती के मुँह से जीवन विस्फोटकारी तत्वों के बारे में सुनकर वृद्ध विस्मय विमूढ और अनुताप दग्ध हो जाता है किंतु हताश नहीं होता। उसका जीवन-अनुभव और दर्शन आशवस्त है कि जब-जब मानव अंतर में विकास प्रेरणा प्रबल होती है दानवी शक्तियाँ क्रुद्ध होकर संघर्षरत हो जाती हैं। दानवी शक्तियों एवं पशुता को ऊर्ध्व संचरण के वशीभूत करना मनुष्य का वास्तविक स्वभाव है

`पर मानव शासक है भू की अंध नियति का
पिघला सकता लौह बज्र की निर्ममता वह
और बदल सकता भू पथ जीवन प्रवाह का ! '

यही संदेश द्वितीय दृश्य में पुरुष और प्रकृति के संलाप द्वारा युद्ध त्रस्त मानवता को दिया गया है, जब महाध्वंस की विकराग छाया देखकर प्रकृति कातर होकर पूछती है –

`अग्नि प्रलय क्या हाय, भस्म कर देगा मनु की
इस सुंदर मानसी सृष्टि को, जिसे जल प्रलय
मग्न नहीं कर पाया दुस्तर महा ज्वार में ! '

और उसका ममत्व व्याकुल हो उठता है – माँ की मृदु ममता से जिस सृष्टि का मैंने पालन-पोषण किया है उसका दानवी शक्ति द्वारा ध्वंस मैं कैसे देख सकूँगी? उसका क्रोध अणु दावन पर उबल पड़ता है –

`किसने जन्म दिया इस दुर्मद अणु दानव को,
कौन बज्र की कोख रही वह विश्व घातिनी ?'

पुरुष के आश्वासन की गहनता पंत के आस्थावान् दार्शनिक मन की गहनता है जो यह मानता है कि सृष्टि का विनाश असंभव है। अणु विस्फोट मानसिक-विस्फोट का चरण-चिन्ह है। मानव मनों में गहन क्रांति जन्म ले रही है

– नई सभ्यता, नव मानवता नव शिखरों पर आरोहण कर रही है।

`नाश नहीं होता विकास-प्रिय अमृत सत्य का

मिथ्या का संहार अवश्यंभावी जग में !'

तृतीय दृश्य दस वर्ष का अंतराल लिये आता है। अणु-विस्फोट से बचे हुये लोगों को अनुभव की परिपक्वता ने दृष्टि की व्यापकता और ऊर्ध्वता प्रदान कर दी है। वे फावड़े, कुदाल आदि लेकर बर्बरता और नृशंसता के इतिहास का उत्खनन कर रहे हैं। खुदाई के क्रम में रक्त पंक इतिहास, वर्ग सभ्यता, भौतिक युग की विज्ञान मूर्ति, जीर्ण-धर्म, वासना गर्त में डूबा मनोविश्लेषक, मनुश्य को निम्न जीवयोनियों की भाँति मात्र परिस्थितियों के वश में माननेवाला डार्बिन वर्गक्रांति के दूत कार्ल मार्क्स की प्रतिमा तथा घिनौनी मिलती हैं। ये मृत प्रतिमाएं नए अमृत सत्य के आविर्भाव की सूचक हैं– प्रलय और सृजन अमरता का लिबास पहने हैं। अशुभ का विनाश ही सत्य का अभ्युदय है। नव आभा देही संस्कृति की प्रतिमा स्वर्ण हंस सी निःस्वर जन भू पर उतर रही है। उसका हृदय विश्व प्रीति से स्पंदित है, मस्तक ज्ञान से दीपित और दृष्टि करुणा विगलित है। मानवता इसके पावन स्पर्श से नवीन चेतना सम्पन्न हो रही है।

संस्कृति वह शाश्वत गत्यात्मक सत्य है जो युग की आवश्यकताओं से युक्त होकर रूपांतरित होता रहता है। चतुर्थ दश्य आध्यात्मिक द्रष्टा और वैज्ञानिक एवं साम्यवादियों के वैचारिक आदान-प्रदान द्वारा उस विश्व संस्थान की स्थापना करता है जो सम्पूर्ण जीवन है, जीवन की व्यापकता और महानता है। द्रष्टा देखता है कि सांस्कृतिक चेतना के प्रादुर्भाव से मानव जीवन में संयोजन आ गया है । सांस्कृतिक चेतना एरं दिव्य चेतना से संचालित जीवन आनंदमय है। आत्मिक ऐक्य के भाव ने अहंता को मिटा दिया है, श्रद्धा और इडा समन्वित हो गई हैं। मनुज-मन जीवन के प्रति विरक्त नहीं है, वह उसका वास्तविक भोक्ता है। आनन्दमय जीवन के भोक्ताओं के इस संस्थान में सैनिकों का प्रवेश होता है। द्रष्टा अपने आध्यात्मिक आश्रग का परिचय उन्हें देता है–

`यह जीवन संस्थान मात्र है !'

....

`आत्म समर्पण से, श्रद्धा विश्वास, प्रीति से

आवाहन कर रहे महत् जीवन का भू पर ।'

`भगवत् जीवन ही भू जीवन का भविष्य है।'

तब जीवन की इच्छाओं से परितृप्त जन सहज ही उच्च संदेश को समझ लेंगे । सच है, `भूखे भजन न होइ गुपाला।' सफल लोकतंत्र के भोक्ताओं का मन अतः शिखरों पर आरोहण के लिए उद्यत हो जाता है –

`महत् प्रेरणा, दिव्य जागरण के हित उत्सुक
बहिर्गमन से श्रांत, खोजते जन अंतर-पथ'

लोकतंत्र और अध्यात्म का ऐक्य एवं आध्यात्मिक सामूहिक जीवन को प्राप्त करना ही पंत के `ध्वंसशेष' का ध्येय है। `यह' लक्ष्य उदात्त और महान् है।'

`बौद्धिक वादों, स्थूल मतों से युक्त धरा जन
स्वतः खिल रहे पुष्पों-से अंतः प्रतीति स्मित,
उर के सौरभ में मज्जित कर स्वर्ग लोक को !'

चार दृश्यों से आवेष्टित `अप्सरा' रूपक अप्सरा, कलाकार, ध्वनियों, प्रतिध्वनियों द्वारा युग-जीवन के कर्दम से नवीन सौंदर्य चेतना को प्रस्फुटित करता है। पंत के लिये सुंदरम् और शिवम् एवं मांगल्यम् एक ही हैं और ये बिना मानवता से संपृक्त हुए अवांछनीय एवं अमूर्त है। सौंदर्य चेतना मानव कल्याण की चेतना है जो सच्चे कलाकार के अंतरतम के सत्य की अभिव्यक्ति है।

प्रथम दृश्य में कलाकार मनः क्षितिज की आभआ चेतना में ध्यान मौन बैठा है। उसके हृदय सरोवर में भावोद्वेलन है। उसे लगता है जैसे कोई शोभा छाया उसके मन से लिपट गई है। यह सौंदर्य मधुरिमा जिसे वह समझ नहीं पा रहा है। उसके मन को बरबस खींच कर अव्यक्त आकुलता से भर दे रही है -

`चंचल हो उठता फिर फिर मन .... ! यह क्या केवल
प्राणों का उद्वेलन है ? या मन का भ्रम है ?'
`एक नया सौंदर्य ज्वार उठता अंतर से
धरती के जड़ पुलिनों को प्रक्षालित करने !'

यह अकथनीय सम्मोहन, मादकता और उद्वेलन की द्वितीय दृश्य में मानसिक संघर्ष को जन्म देता है। कलाकार जीवन वास्तविकता से दूर असंबद्ध ईकाई का जीवन नहीं बिता सकता । उसके मन को लोक मंगलमय सौंदर्य चेतना सम्मोहित किये हुये है। जीवन की असंगति एवं युग कुरूपता को इस सौंदर्य से प्लावित कर देने की प्रेरणा ने उसे आकुल कर दिया है। उसके

सम्मुख एक ही चिंता और प्रश्न है – युग कल्मष से पंकिल घरणी के प्रांगण में नव्य सौंदर्य चेतना कैसे उतर सकती है ? कलाकार के लिये यह जीवंत चुनौती है। वह धरती की सौंदर्य चेतना का प्रतिनिधि है, मानव कल्याण का शास्ता ! उसे जीवन को मंगलमय बनाना ही होगा –

'युग आवेशों के कटु कोलाहल में उसको
नव जीवन की स्वर संगति भरनी है व्यापक:'

यह भाव और विचारोन्मेष तृतीय दृष्य में कलाकार का सर्वस्व बन जाता है। वह स्पष्ट देखता है कि कला का प्राण सौंदर्य, मानव शुभ एवं मानव कल्याण है। जन भू पर जो देवासुर संग्राम छिड़ा हुआ है उससे धरा चेतना को मुक्त करने के लिये एक ऐसे लोक पुरुष को प्रतिष्ठित करना होगा जो जीर्ण मान्यताओं के जर्जर चाप को तोड़ने के साथ भू की विश्रृंखलता में नव्य संतुलन भर देगा और आर्थिक समता तथा वर्गहीनता के छोरों को अंतरैक्य के रश्मिसेतु में बाँध देगा। ऐसे व्यक्ति सत्य की प्रतिष्ठा करना जगती को ईश्वरमय बनाना है।

'ईश्वर का ही अंश जगत, आरोहण पथ पर,
जिसका पूर्ण प्रकारांतर होना निश्चित है ।'

चतुर्थ दृश्य कलाकार के बोध, विश्वास और आस्था को मूर्तिमान करता है। वह जीवन सत्य को आत्मसात् कर लेता है। अप्सरा रूप में उसकी सौंदर्य चेतना जीवन आनंद को सर्वत्र बरसा देती है –

'सौंदर्य चेतना मैं मन की,

....

छिप हृदय कुंज में मुसकाती !'

कलाकार की यह सौंदर्य चेतना अपने क्रूर ह्रास-नाश को देखकर अनुतापित हो जाती है –

'शोभाजीवी डर को जीवन की कुरूपता
नागन सी डँसती रहती शून फन फैलाए।'

उसकी प्राण चेतना प्रार्थनारत हैं –

'जीवन मंगल का ही उत्सव
श्री सुख सुषमा का हो वैभव,

नव रस के निर्झर से झर तुम
जन मन तृषा हरो !'

शिल्पी के तीनों ही नाट्य-रूपक न केवल युग जीवन की विभीषिका और उसका समाधान प्रस्तुत करते हैं वरन् वह कलाकार के उच्चोन्मेषों का मनोवैज्ञानिक दिग्दर्शक भी कराते हैं। 'शिल्पी' और 'अप्सरा' आत्म-जीवनी, आत्मसंघर्ष का आभास देते हुये वस्तुगत धरातल पर विचरण करते हैं। तीनों ही काव्य रूपकों में यथार्थ और आदर्श, प्राचीन और अर्वाचीन एवं सापेक्ष और निरपेक्ष मूल्यों का संघर्ष है। तीनों का ही लक्ष्य यह समझाना है कि कवि, शिल्पी या द्रष्टा पुरुष युग-सत्य एवं युग-धर्म को उसके मानव विकास और कल्याण में सहायक होने पर ही स्वीकार कर सकता है। परम्परा एवं मान्यताओं तथा विभिन्न 'वादों' को उनके सापेक्ष और परिवर्तनशील अर्थ में ग्रहण करने के कारण ही वह एकांगिता, असहिष्णुता, पक्षपात, पूर्वग्रह तथा घातक हठधर्मिता के उस दोष से मुक्त है जो जीवन को विषण्ण बना रहा है।

कवि का दायित्व महान् है। उसकी कल्पना बच्चे के दिवास्वप्न की भाँति नहीं है। कवि-कल्पना कवि का शिशु है, वह शिशु जिसे वह विश्व वास्तविकता का दूध पिलाता है, सार्वभौमिकता के परिवेश में लालन-पालन करता है, जिसके विकास और कल्याण के लिये वह सब कुछ न्योछावर कर देता है तथा जिसको ह्रदय से चिपका कर वह जीता है। पंत के लिये, इसी अर्थ में, सृजन जीवन है। जीवन से अछूता काव्य स्वप्नों के इन्द्रधनुष से रंजित रिक्त कुहासा है। उसे जीने के लिये यथार्थ में चरण रखने ही होंगे। शिल्पी, कवि एवं कलाकार का संघर्ष साहित्य और कला के जीवन संबंधी मूल्यों, उनके आत्मगत और वस्तुगत संबंध तथा संगति को सिद्ध करता है।

परिशिष्ट

3.3 सौवर्ण

'सौवर्ण' में भारतीय दर्शन एवं ब्रह्मवाद के निष्क्रिय स्वरूप, वर्तमान का अति वैयक्तिवाद, निजत्व को भूले हुए पाश्चात्य कलाकारों की प्रतिध्वनियाँ करने वाले रीढहीन कलाकार तथा रिक्त वितंडावादों में खो जाने वाले नेताओं पर प्रहार है। हिमालय को मानव जाति के सांस्कृतिक संचय का प्रतीक मानकर लेखक स्वर्दूत, स्वर्दूती, देव, देवी, कवि सौवर्ण तथा अन्य स्त्री-पुरुष स्वरों द्वारा वर्तमान विश्व सत्य की स्थापना करता है जो लोक मंगल के लिये अनिवार्य है।

हिमालय विगत सांस्कृतिक वैभव की ही शुभ्र, सनातन स्थिति है। देवगण उसके परमोत्कर्ष की वंदना करते हैं और नव्य युगांतर का गुह्य संकेत पाते है। हिमाद्रि की वंदना शिवरूप में की गई है। जिसका सृजन संहार है, संहार सृजन है। इसीलिये एक युग का अंत दूसरे युग का आविर्भाव है यह आविर्भाव मंगलमय है।

देव और देवी का संवाद भू मानस विकास की संक्रमण बेला पर चिंतन है। भूतनिशा (जो कि देवताओं के जागरण की बेला है) में देवता दिखते है कि उपचेतन गोपन-आभास पाकर आशान्वित संगीत की सृजनलय में पल्लवित हो रहा है। मानव संस्कृति का अमर दाय-धन, अधिमानस का शैल हिमालय युगांतर से जाज्वल्यमान है। उसके अंतर से नवीन सभ्यता जन्म ले रही है। यह मानव संस्कृति की संक्रमण बेला है – विगत का समापन और आगत का आरंभ।

> 'नया सांस्कृतिक वृत्त उदित हो रहा क्षितिज में'
>
> ... ...
>
> 'सक्रिय फिर से दिव्य चेतना, नव्य संचरण'
>
> ... ...
>
> 'जन भू को मज्जित करने जीवन शोभा में!'

नये युग का आव्हान कर देव-देवी अंतर्धान हो जाते हैं। स्वर्दूत और स्वर्दूती जगत् का पर्यवेक्षण करते हैं। वे देखते हैं कि सर्वत्र एकांगिता का वरण किया जा रहा है। इस जगती में उन ऋषी-मुनियों का वास भी है जो विश्व से विरत,

पलायनवादी प्रवृत्ति को अपना कर ऊर्ध्व मानस श्रेणियों पर आरोहण कर रहे हैं।

`अखिल व्याप्त सत्ता के सक्रिय अमर सत्य को,

आत्म रूप में परिणत कर निष्क्रिय साक्षीवत् !'

वैज्ञानिक उन्नति का शिरोमणि यह युग आत्म-विरोधी प्रवृत्तियों से भयभीत है। वैज्ञानिक अनुसंधानों ने मनुष्य को महत् शक्ति प्रदान कर दी हैं – सब प्करा की सुख-सुविधायें दे दी हैं। वह चाहे तो मानवता को अभाव मुक्त कर सकता है। किंतु रूढ़ि-रीतियों ने उसे द्वेष, घृणा को अपनाना सिखा दिया है। विश्व का एक भाग पलायन एवं मायावाद को अपनाये हुये है तो दूसरा भाग प्रतिद्वंद्विता और विद्वेष से त्रस्त है। पूर्व और पश्चिम दोनों ही आत्म-घातक अतिवाद को अपनाये हुये हैं। किंतु यह अतिवाद पूर्ण विनाश का सूचक नहीं है, यह नवीन का उन्मेष है। स्वर्दूती कहती है–

`घनीभूत होती विनाश की भीषण छाया

....

`नव्य युगांतर का आवाहन करते भू पर !'

एक वृत्त शेष हो रहा है। क्रांति, विप्लव, भू युद्धों, गृह संघर्षो से धरा चेतना त्रस्त और क्षुब्ध हो गई है, मनुष्य की बुद्धि भ्रांत हो गई है। उसका जीवन बर्हिमुखी और लक्ष्यहीन हो गया है। किंतु यह सब घोर निराशामय नहीं है। शाश्वत अपने को विभिन्न रूपों में व्यक्त कर रहा है —

`शाश्वत तथा अनित्य विरोधी तत्व नहीं दो,

एक सत्य ही विविध स्वरूपों में अंतर्हित',

....

नव मानव मूल्यों में कुसुमित सामाजिकता

विश्व विषमताओं में नवल समत्व भर रही !'

यह नवीन मानव मूल्य कहाँ से आएंगे ? पश्चिमका एक विशिष्ट बौद्धिक वर्ग जनवादी तंत्रों से पीडित होकर प्रतिक्रियावादी हो गया है। वह जीवन के मौलिक प्रतिमानों को संकटपूर्ण देखता है क्योंकि वह बाहुबल से शासित सामाजिकता से त्रस्त है —

`वही भविष्यत् होगा जिसे बनाएँगें हम !'

....

`हम्हीं सत्य हैं! वर्तमान क्षण के पुट में ही

हमें बाँधना होगा जीवन के शाश्वत को !'

इस व्यक्तिवाद ने पूर्व को प्रभावित किया है। पूर्व के तोते अनुकरण के आनंद में डूबे हुये कहते हैं —

`हम थोड़े, जो जीवित है, अस्तित्ववान हैं,

हम्हीं सत्य हैं, शेष व्यर्थ भूभार मात्र हैं, —'

राजनीतिज्ञों ने भी जीवन को भय और अन्यायग्रस्त कर दिया है। दुखी जनता को धरा स्वर्ग का आश्वासन देकर जब वे शक्ति पा जाते हैं तो अपने क्रूर संघ स्वार्थों की प्राप्ति के लिये मनुज को साधन बना लेते हैं। बाहुबल से शासन करने वाले सामाजवादी, अति व्यक्तिवादी बुद्धिजीवी और जीवन को अवास्तविक माननेवाले अध्यात्मवादी — सभी को अपना पुनर्मूल्यांकन करना होगा।

स्वर्दूती-स्वर्दूत भारत आते हैं और देखते हैं भारत में महत् सांस्कृतिक संचरण जन्म ले रहा है। यहाँ उस युग मानव ने जन्म ले लिया है जो लोक सत्य से अनुप्राणित है। बर्बर हिंस्त्र जगत को उसने प्रेम का साधन एवं अहिंसा का अस्त्र दे दिया है। ग्रामों के जन आज सृजन कर्म में रत हैं।

`धन्य अहिंसक भूमि, सत्य पर प्राण प्रतिष्ठित,

मानवीय साधन से सुलभ जहाँ जन मंगल !'

किंतु भू जीवन विरोधी शिविरों में बँटा हुआ है —

`कुछ भी निर्णय नहीं कर सका शाँति मिलन यह,

....

रिक्त वितंडावादों में सब समय खो गया !'

x x x x

`घृणा द्वेष स्पर्धा के दारूण दुर्ग संगठित

हिंस्त्र प्रचारों के झींगुर चीत्कार भर रहे,'

... ...

रंग बदलते रह-रह अवसर वादी गिरगिट,'

x x x x

प्रतिध्वनित हो रही मृत्यु की चाप दिशा में,

भीषण रण यानों से मंथित उदर गगन का !'

किसी भी क्षण विश्व युद्ध की घोषणा हो सकती है। किंतु विश्व विनाश संभव नहीं है। मानवता के संरक्षण के लिये अवश्य ही कोई 'महत् कर्म' जन्म ले रहा होगा। स्वर्दूत और स्वर्दूती देखते हैं कि भारत में एक क्रांत द्रष्टा पुरुष लोक प्रेम के महत् ध्येय से प्रेरित हो स्वगत भाषण कर रहा है –

'व्यक्ति समाज, समाज व्यक्ति, – कैसी विडंबना!'

....

'बाहर भीतर, — शब्द जाल सब, केवल वाग्छल !

यांत्रिक बौद्धिक तत्व, रिक्त दर्शन के क्षेपक,

जीवन वर्जन के थोथे दर्शन ने मानव विकास की प्रगति को कुंठित कर दिया है। इस आत्म-विघातक दर्शन की रिक्तता अब समझनी ही होगी —

'नेति नेति का, आत्म निषेधों का दुर्गम गढ़ !'

....

'शीतल, हिम-शीतल जीवन की जड़ समाधि यह !

स्पंद शून्य भैरव नीरवता महाशून्य की

घेरे इसको महामृत्यु के बृहत् पंख सी !'

क्रांत द्रष्टा के बोध की सच्चाई उस साकार मूर्ति को जन्म देती है जो विद्या और अविद्या, दर्शन और विज्ञान का संतुलन है। यह मूर्ति वह जीवंत सत्य है जिसकी अनुभूति भू जीवन को स्वर्णिम बना देगी -

'नया सृजन आ रहा सूर्य के स्वर्णिम रथ पर

अग्नि पुरुष यह, प्राण पुरुष यह, लोक पुरुष यह !

'मैं हूँ वह सौवर्ण, लोक जीवन का प्रतिनिधि !

नव मानव मैं, नव जीवन गरिमा में मंडित,

....

`युग युग से विच्छिन्न चेतना के प्रकाश को
मैं जीवन सूत्रों में करने आया गुंफित !'

`सौवर्ण' पंत की गहन अनुभूति, व्यापक दृष्टि, स्वस्थ चिंतन का प्रतीक होने के साथ उनके अडिग आत्म-विश्वास, आशावादिता, मानव-प्रेम तथा निर्भीकता का परिणाम है। पश्चिम के वैज्ञानिक भौतिकवादी मानस तथा पूर्व की निष्क्रिय, पलायनवादी, जीवन-निषेधात्मक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके कवि भारत के सांस्कृतिक वैभव के प्रति आकर्षित होता है। वह मानता है कि भारत का सांस्कृतिक पुनर्जागरण ही विश्व में शांति, साम्य और स्वातंत्र्य को प्रतिष्ठित कर सकता है। जीवन को कुत्सित और घृणित बनाने वालों के प्रति उसका क्रोध व्यंग्योक्ति की सीमा पर पहुँच जाता है। यह व्यंग्योक्ति शिष्ट होते हुये भी पैनी है। अतिव्यक्तिवाद, अहंतावाद, संघवाद, पलायनवादी, वैराग्यवाद एवं जीवन की अधोमुखी और मरणासन्न बनाने वालों को दण्डित और शिक्षित करने के लिये वह `सौवर्ण' का आव्हान करता है। `सौवर्ण न श्री अरविंद है, न `दि लाइफ डिवाइन' का डिवाइन मैन', न कवि स्वयं और न सावित्री काव्य का सत्यवान ही है।[१] यह वह औपनिषदिक शाश्वत सत्य है जो जीवन की हानि देख कर विदेह होने पर भी संदेह हो जाता है और धरती का प्रयोजन पूर्ण करने पर पुनः अपने चिद्-विग्रह में लीन हो जाता है। यह सौवर्ण मानव-कल्याण के लिये नीत्से के अतिमानव शौर्य से युक्त है।

`कौन आ रहा वह भीषण सुंदर, भुवनों को
अपनी दुर्धर पदचापों से कंपित करता ?
झंझा सा, जन मन में भैरव मर्मर रव भर,
भू समुद्र को हिल्लोलित, भय मंथित करता !'

नीत्से का अतिमानव क्रूर शौर्य, घोर अहंवाद, उच्छृंखलता और तानाशाही संस्कृति का द्योतक तथा सभ्यता के लिये अभिशाप होने के साथ ही दो दुर्धर्ष विश्व युद्धों का कारणअथवा प्रेरक है। इसके विपरीत सौवर्ण का शौर्य गीता का विश्व रूप है जिसे पंत का वैज्ञानिक-वेदांत विश्व संरक्षण और जन मंगल के लिये प्रतिष्ठित करता है। पंत पहिले अभाव गस्त प्राणियों के कल्याण के आकांक्षी

---

१ बच्चन : `कवियों में सौम्य संत,' पृ. 149
तथा डा. राजेन्द्र मिश्र : `आधुनिक हिन्दी काव्य', पृ. 200 ग

हैं और उसके बाद ही किसी अन्य सत्य के श्री अरविंद और उनमें यह एक मूलगत अंतर है।

भारतीय दर्शन की पलायनवादी प्रवृत्तियो तथा पाश्चात्य जीवन की दिग्भ्रांत बुद्धि, उन्मुक्त वासना और औद्योगित प्रतिस्पर्धा का जिस मुक्त दृढ़ता और अभिज्ञानपूर्ण विश्वास के साथ पंत विरोध करते हैं वह उनका कोरा चिंतन या कोरा ज्ञान नहीं है, न वह उनकी गगनचुम्बी कल्पना ही है, वरन् वह व्यापक और गहन जीवन अनुभूति है जिसके बिना लेखक और जो कुछ भी दे पर चिरस्थायी साहित्य का सर्जन नहीं कर सकता। जीवन सत्य से रिक्त काव्य भुजंग की फुफकार, ताराओं की जगमगाहट, प्रतीकों का चमत्कार, बादल की घड़घड़ाहट उत्पन्न करने पर भी मानव-जीवन के लिये कल्याणकारी नहीं हो सकता।

जीवन में सर्वत्र ही समन्वय और संयोजन की आवश्यकता है। अति एकांगिता, चाहे वह आदर्शवाद में हो या वस्तुवाद में, टिक नहीं सकती। 'स्वप्न और सत्य' का यही विषय है। कलाकरा, दो मित्र और छाया चेतनाओं के माध्यम से आदर्श और वास्तविकता, स्वप्न और सत्य के बीच युग संघर्ष का द्योतक यह काव्य-रूपक वार्तालाप की गहनता में प्रवेश करता हुआ जीवन का पूर्ण विश्लेषण करता है। यह विश्लेषण दार्शनिक और गहन होते हुये पारदर्शी, सरल और सुगम है। लेखक कलाकार के अंतः संघर्ष, सामान्य जनश्रुति, लोक पुरुषों तथा जनप्रिय श्रद्धास्पद कवियों की वाणी द्वारा अपने अभिमत को स्थापित करता है।

प्रथम दृश्य में कलाकार का प्रकृति प्रेमी हृदय रंगीन खड़ियों से पतझर का रेखा-चित्र बनाता है। किंतु वह मानव जीवन से विमुख नहीं है–यह पतझर उसे जग जीवन के पतझर के विषाद से चिंतामग्न कर देता है। इसी समय उसके दो मित्र प्रवेश करते हैं – एक यथार्थवादी है दूसरा आदर्शवादी बौद्धिक। कलाकार की आंतरिक स्थिति से अनभिज्ञ यर्थाथवादी मित्र व्यंग्य करता है —

> 'निर्निमेष भावुक प्रेमी से
> मात्र प्रेयसी का प्रिय मुख देखा करते हो !'
> 'एक ओर प्रासाद खड़े हैं स्वर्ण विचुंबित,
> चारों ओर असंख्य घिनौनी झाड़ फूँस की
> झोपड़ियाँ है पशुओं के विवरों सी, —'

`और कलाकार, उसकी दृष्टि में, जन समाज से विरत हो अपने ही भावलोक में मुग्ध है।

कलाकार का सहज उत्तर है –

`कहीं छोड़ सकते हैं बच्चे !
मां का अंचल ?'

X X X

`कलाकार के लिये, सत्य ही, विश्व प्रकृति यह
निखिल प्रेरणाओं की जननी है रहस्यमय!'

आदर्शवादी मित्र वैज्ञानिक विजय को पराजय मानता है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मानव विनाश के अंध गर्त की ओर बढ़ रहा है–

`भौतिकता से बुद्धि भ्रांत, जीवन तृष्णा से
पराभूत हो, भूल गया नर आत्म ज्ञान को !
`घोर अराजकता है प्राणों के जीवन में!!'

अपने मित्रों के घोर विरोधाभासों को सुन कर कलाकार का मन ऊब जाता है तथा कल्पना ल्कांत हो जाती है। इसी समय बाहर से नारे लगाने की आवाज आती है, `क्रांति की जय हो! प्रजातंत्र की जय हो, ... जन मंगल की जय हो।'

कलाकार सोचता है कि नीरस तर्कों के बोझिल शब्दाडम्बर से कहीं अधिक प्रेरणाप्रद ये नारे है क्योंकि इनमें जन-प्राण शक्ति का स्पंदन कंपन है। वह भावमग्न हो सो जाता है।

दूसरा दृश्य `स्वप्न दृश्य' है। कलाकार अपनी स्वप्न स्थिति में अंतर्जगत् के सूक्ष्म प्रसारों एवं स्वर्गों में विचरते हुये महान् आत्माओं के संपर्क में आता है। स्वर्ग की स्वर-संगति देख कर उसे मध्ययुगीन संस्कृति स्मरण आ जाती है। यह संस्कृति मात्र ऊर्ध्वमुखी होने के कारण एकांगी हो गई थी। मुक्ति, कोरी कल्पना होने के विपरीत, वह वास्तविक सत्य है जिसे जन समाज में प्रतिष्ठित होना है। स्वर्ग में कवि को महापुरुषों की छायाओं के दर्शन होते हैं। ` धरा के स्वर्गिक प्रतिनिधि उससे कहते हैं कि हम सभी ने लोक कल्याण को अपनाया था और अब भी स्वर्गलोक में हम भू जीवन के श्रेय के लिये संघर्षशील हैं। मानव

जीवन आत्मोन्नति का प्रांगण है, मानव ईश्वर ही है, उसे अपने जीवन और कला द्वारा जन जीवन को सार्थकता प्रदान करनी है। ईसामरीह की छाया उससे कहती है–

'वही प्रेम ईश्वर जिसका मंदिर मानव उर:'

गौतमबुद्ध की छाया उसे समझाती है कि जीव दया और जन सेवा का पथ महत्वपूर्ण है तथा मोहम्मद की छाया का कहना है कि ईश्वर पर विश्वास रखना ही धर्म का सारतत्व है। महात्म गांधी की छाया धर्म की संकीर्णता से ईश्वर को मुक्त करने की अनिवार्यता को बतलाती है —

'ईश्वर सत्य न कहके, कहूँ, सत्य ईश्वर हैं ?

....

जन जीवन पट बुना सरल लोकोज्वल मैने

जनगण के श्रम बल के मूल्यों पर आधारित'

इन लोक पुरुषों की छायाओं के दर्शनों और वचनों के अतिरिक्त उसे संतों की वाणी सुनाई देती है। तुलसी का 'सियाराम मय सब जग जानी' का मंत्र मानव जाति की एकता का मंत्र है तथा सूर के 'श्याम रसो वैसे है और मीरा के 'सर्वस्व' उसकी भवभीनी तन्मयता, सर्वव्यापी मधुर अनुभूति है। कबीर की 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' तथा अनिर्वचनीय प्रेमी हृदय लोक समाज को प्रेरणा देता है। कवीन्द्र की वाणी विश्वप्रेम तथा मानवता का नवीन मंत्र देती है। इन वाणियों को सुन कर कलाकार अपनी स्वप्नावस्था से अर्ध जाग्रतावस्था में आ जाता है, उसे लोक कला के लिये महत् प्रेरणा मिल जाती है—

'सभी महाकवियों की वाणी जन मंगल की

महत् भावनाओं से प्रेरित रही निरंतर!

....

'सभी महापुरुषों के लक्षण एक रहे हैं, —'

आत्मत्याग, जन सेवा, दया, विनय, चरित्रबल और उसकी आत्मा अनेक उच्च तथा सूक्ष्म प्रसारों में विचरण करती हैं —

'यह प्राणों का हरित स्वर्ग सा लगता सुंदर,

जीवन की कामना जहां हिल्लोलित अहरह।'

....

`सदाचार के स्तम्भों पर तर्कों से वेष्टित,

यहाँ जगन्मिथ्या की निष्क्रियता छाई है !'

X X X

`अधोमुखी लघु स्वर्ग, संप्रदायों में सीमित

लटके हैं अगणित त्रिशुंक से, बहुमत पोषक, ...'

कलाकार का हृदय कराह उठता है

`कहाँ स्वर्ग सुख शांति, कहाँ रे

धरती के दुख भरे कलपने!'

`क्यों विभक्त कर दिया सत्य को मानव उर ने, ...'

और उसके स्वप्न का द्वितीय दृश्य प्रारंभ हो जाता है। वह जनश्रुति, अंधविश्वास तथा निष्क्रिय आस्था के गीत से प्रारंभ होता है।

`चार दिवस की मधुर चाँदनी

रैन अंधेरी फिर उदास है !'

....

`मनुज प्रकृति का क्रीत दास है!

लिखा करम का नहीं टलेगा'

कलाकार कर्त्तव्य विमूढ होकर आलस्य, इंद्रियलोलुपता और मूढ कर्मवाद की बातें सुनता है। वह समझ जाता है कि ये मनुष्य गत युग के जीवन मृत शव मात्र हैं जो भाग्य भरोसे रेंग रहे हैं और एक दूसरे का जीवन-श्रम लूट रहे हैं। हठी, कुटिल-मति, भेदवभाव से भरे विषैले, पर-द्रोही, प्रतिशोध क्षुधित, निर्बल के पीडक ये लोग नारकीय कीडों से हैं। अबलाओं, विधवाओं और शिशुओं की दशा भी अकथनीय है —

`हाय, कौन जीवन बंदिनी सिसकती है वह ?......'

....

`छिन्न लता सी कौन अधमरी वह ? क्या विधवा ?

कौन माँगते गा गाकर ये ? ...... क्या आनाथ शिशु ?

अह, कैसी जीवन विभीषिका जन धरणी पर
जो मानव को वंचित रखती मनुष्यत्व से !!'

संस्कृति पीठ, कला–साहित्य द्वारा क्षुद्र मतों, कुटिल गुटों में बदल गये हैं

'पर-परिभव हित तत्पर रहते, स्पर्धा पीडित !'

....

'बुद्धि जीवियों का आहत अभिमान प्रदर्शन
यहाँ मात्र वाणी की सेवा, कलाकारिता !'

कलाकार अनुभव करता है कि किसी प्रकार के महत् साहित्य एवं कला का सर्जन संभव नहीं है क्योंकि व्यक्ति का जीवन शापित, वह उस मन के घृणित विकारों की छाया है जो सामाजिक संतुलन खो चुका है। किंतु कलाकार का लोकमांगल्यमय विश्वास उभरता है और उसे स्पष्ट प्रतीति होती है कि वैयक्तिक कुंठाएँ तथा संघर्ष लोक-जागरण का कारण बन जायेंगी। धीरे-धीरे निर्मम स्वार्थों की श्रृंखला टूट कर जीवन में मंगल प्रभात ला देगी –

'विहँस उठा मानस-उज्वल मंगल प्रभात में !
निश्चय ही वह अंधकार था नहीं अकेला,
अलसाया जीवन प्रकाश था, ...'

मनुष्य भौतिक-सामाजिक विकास की उस स्थिति को अवश्य ही प्राप्त कर लेगा जो 'शाश्वत मधु से सतत रहेगा गंध गुंजरित।'

किंतु कलाकार के इस मधुर स्वप्न को रणनाद, विप्लव, संक्षोभ, चीत्कारें तथा कोलाहल युद्ध विभिषिका में बदल देते हैं। वह ध्यान मौन अवस्था में देखता है –

'युग परिवर्तन का दुर्बह क्षण
डाल अचेतन का अवगुंठन
आरोहण करचा नव चेतन
प्रलय सृजन क्रम दुर्निवार है !'

गागारिन की सर्वप्रथम अंतरिक्ष यात्रा पर लिखा गया 'दिग्विजय' रूपक उसकी दिग्विजय पर हर्षोल्लास के साथ ही संदेशवाहक है। निःसीम नील में;

जहाँ अमर भी श्रद्धानत और निःशब्द विचरते हैं तथा अप्सरियाँ नूपुरों को उतार कर आती जाती हैं, आज प्रथम बार मनु का कोई प्रमत्त पुत्र उसकी शुभ्र शांति भंग कर रहा है। क्षितिज में मरुत और अप्सरा इस अघटनीय बात से आश्चर्यान्वित हैं। किंतु नभचर रजत-नील-प्रभ स्वप्नलोक में विचरता हुआ प्रसन्न है। अमित नील के बारे में जो वह धरतीवालों को बतलाता है वह पौराणिक आख्यानों की पवित्रता से सुगंधित है। उच्च वायुओं की शुचिता में अवगाहित और निखिल का महत् स्पर्श पाकर खेचर का मन तन्मय हो गया है –

`भार मुक्त तन तैर रहा आनंद राशि में!'

....

`आः, अति रोमांचक, रहस्यमय, महा दिशा का

निःस्वर नीलम मणि प्रसार यह! --- जहाँ धरा के

लघु जीवन संघर्ष लीन हो आरोंहों में

अर्थहीन से लगते न नीरव अनंत में !---'

पृथ्वी की ओर जब नभचर देखता है तो उसे लगता है कि पृथ्वी मुग्ध अनंत यौवना मुक्त उर्वशी सी असीम में नाच रही है। भू के बहु देशों, राष्ट्रों महाद्वीपों को वह पलक मारते पार कर ले रहा है। सभी देशों की विशेषताएं उसे याद आ जाती हैं। उसे अपने स्वदेश, परिवारवालों, प्रियजनों की याद आ जाती है जो उसकी कुशल क्षेम के लिये चिंतित होंगे तथा अपने शत्रुओं की जो,

`हँसते होंगे ..... मोम के पंख लगा कर'

....

``पर, मैं मानव अंतर की आशाऽकांक्षा का

केवल प्रथम प्रतीक मात्र हूँ – जो अनादि से

शब्दहीन इस महानील के चिर रहस्य को

चीर, ज्योति स्वर-लिपि में अंकित, गुह्योच्चारित,

उसके बीजाक्षर मंत्रों को पढने के हित

चिर आकुल था ....

पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण कर नभचर अंतरिक्ष के रजत-हर्ष को धरती माँ के चरणों पर अर्पित कर अपने गोपन अनुभव का जन-जन को आभास देने को व्यग्र हो जाता है। हठात् निर्वाक् निःसीम में गहन गंभीर ध्वनि उठती है,

`ठहरो दिग्चर ठहरो, – भू की परिक्रमा कर
खोल नील का वातायन, तुम गर्व स्फीत हो
लौट रहे अब दिग् विजयी बन कर धरती पर!
झूठा अरुणोदय ले जाकर —मानवेन्द्र बन !'

....

`क्या पाएगी मनुज जाति इस समदिग् जय से ? ---'

....

`आत्मवान्, तू धराधाम को बदल स्वर्ग में !
बाँध विविध भू देशों को नव मानवता में —
आज विरोधी शिविरों में जो बँटे हुए हैं।'

मात्र भौतिक उन्नति अणु युद्ध को किसी भी क्षण आमंत्रित कर सकती है, यह स्वतः स्पष्ट है। आत्म-उन्नयन करके ही मानव विजयी हो सकता है। मनुज, मनुज को समान मान कर ही वह जन-भू पर स्वर्ग बसा सकता है। अन्यथा दिग् विजय एवं मात्र वैज्ञानिक वैभव और उन्नति मनुष्य की हिस्त्र लालसा और अहं को जीवन विनाश की ओर द्रुत गति से बढ़ा रहे हैं। नभचर स्वीकार करता है कि,

`ज्ञान दीप्त विज्ञान पंथ ही नया पंथ है।

....

खुला सर्व हित मात्र यही सामूहिक पथ है! --'

नभचर के पृथ्वी पर उतरने के साथ ही नर नारी समवेत गान पाते हैं,

`अभिनंगन, वंदन है !
पृथ्वी के हित खुला स्वर्ग का
स्वर्ण क्षितिज तोरण हे !'
`शुभ्र चेतना की अप्सरियाँ,

धरा-स्वर्ग रचना मंगल में

भरती आलिंगन हे !

वंदन अभिनंदन हे !'

इन रूपकों को सैद्धांतिक आलोचक 'वादों' की तुला पर कैसे उतारते है, यह उन्हीं की एकांगी हठधर्मिता बतला सकती है। सत्य की तुला में ये अवश्य ही खरे उतरेंगे – इनकी मनोभूमि उदात्त है और क्षेत्र अत्यधिक व्यापक, गहन तथा श्रेष्ठ। मानव स्वभाव का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक परिचय देते हुये ये मनुष्य की उच्च आकांक्षाओं से लेकर उसकी क्षुद्रतम प्रवृत्तियों तक का चित्रण करते हैं। इन रूपकों ने भावना, कर्म और चेतना के किसी भी पक्ष को अछूता नहीं छोडा है। विविधांगी जीवन का इतना जीवनत चित्रण एवं दार्शनिक, राजनीतिक, धार्मिक सत्यों तथा सन्यासी, तत्वज्ञानी, समाज-सुधारक, कलाकार, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, श्रमजीवी आदि का वर्तमान विश्व स्थिति के अनुरूप यथातथ्य व्याख्या व्याख्याकार के निष्पक्ष चिंतन, गहन, व्यापक अध्ययन, अनुभूति तथा जीवन दृष्टि को प्रतिबिंबित करती है। पंत के निःस्वार्थ भावलोक तथा मानव प्रेम ने उन्हें किसी 'वाद' में नहीं बँधने दिया किंतु साथ ही उन्हें उस वरदान से चरितार्थ किया जिससे प्रत्येक 'वाद' के अमृत रस का पान वे कर सके। इस अमृत पेय ने उनकी व्यापक सहिष्णु दृष्टि को ज्योतित कर उन्हें उस संयोजनात्मक दृष्टिकोण से युक्त कर दिया जो मनुष्यत्व की पुकार और थाती है।

पंत के काव्य-रूपक यथार्थ का भूमि में विचरण करते हुये समस्त जीवन का — विस्तृत भाव, विचार और कर्मभूमि का, भूत, वर्तमान और भविष्य का तथा समदिक् और ऊर्ध्व संचरण का विशद, मर्मभेदी, सहज, सम्मोहक तथा सम्यक् वर्णन करते है। भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म की विजय पताका फहराते हुये वे उसकी मध्ययुगीन निष्क्रिय और पलायनवादी प्रवृत्ति पर कठोर प्रहार करते है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने भारत की अतीत गाथा के बारे में कुछ सूत्रों को ही कंठस्थ नहीं किया है, उन्होंने स्वयं इतिहास और दर्शऽ का गहन अध्ययन किया है, स्वतंत्र चिंतन-मनन के माध्यम से तथ्यों को आत्मासात किया है। भारतीय चैतन्य की चारों ओर से घेरी हुई कालिमामृत रुढ़ि - रीतियों, बाह्याडम्बर, पूजन के विधि विधान, जीवन निषेधात्मक तथा समाज और मानव-कल्याण के विमुख दृष्टि की इतनी विवेक सम्मत स्वस्थ आलोचना करना भारतीय अध्यात्म के अनन्य उपासकों और प्रेमियों के लिये असंभव तथा

वर्जित था। पंत भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म के अनन्य भक्त और प्रेमी हैं। किंतु वे उसके अंध प्रशंसक नहीं हैं, उसकी सीमाओं के प्रति पूर्ण प्रबुद्ध है। उनकी आध्यात्मिक चेतना वैज्ञानिक विवेक तथा मानव-कल्याण की दृष्टि से युक्त है। काव्य एवं साहित्य के क्षेत्र में पंत से पूर्व के लेखकों एवं उ नके युग के लेखकों में भारतीय दर्शन-प्राचीन वेदांत– का सभवतः इतना दृढ और न्यायसम्मत समर्थन किसी अन्य ने नहीं किया है। उनके विचार उस भारतीय मानस के विचार है जिसे वैज्ञानिक सभ्यता ने झकझोरा तथा जीवन के कटु यथार्थ ने प्रताड़ित किया है।

जिन्होंने भी पंत के इन रूपकों का प्रसारण सुना होगा उनका हृदय इनकी मधुर मर्मस्पर्शी अनुगूँज से अवश्य ही भीग गया होगा। बाद में उनकी विद्रोही आलोचनात्मक बुद्धि ने विद्रोह किया हो, वह बात दूसरी है। कुछ लोगों की आपत्ति है कि इन रूपकों की भाषा अत्यधिक क्लिष्ट है, इतनी अधिक कि वे हिंदी के अच्छे ज्ञाता एवं प्रतिष्ठित लेखक होने पर भी उन्हें नहीं समझ पाए, और इसलिये, उनका कहना है, ``रेडियो से तो ऐसी ही भाषा की प्रत्याशा की जाती है जो सचमुच ही श्रवण-सुबोध हो।'' वे भूल जाते है कि ये रूपक `भारत-भारती' के अंतर्गत उच्च स्तरीय कार्यक्रम सभी प्रकार की श्रेणियों के श्रोताओं के लिये होते हैं तथा `भारत-भारती' के श्रोता केवल साधारण श्रोका के वर्ग में नहीं आ सकते। रेडियो, –चाहे वह बी.बी.सी. हो, चाहे वॉयस ऑफ अमेरिका हो या आकाशवाणी, सभी वर्ग, सभी श्रेणी के श्रोताओं को संतुष्ट और शिक्षित करने के लिये विभिन्न स्तरीय कार्यक्रमों का प्रसारण करता है–नन्हें-मुन्ने की शैतानी, पाक-शास्त्र, महिलाओं का फैशन, घरेलू झगड़ों से लेकर परिवार नियोजन, आइन्सटाइन का सापेक्षवाद, शंकर का मायावाद, राजनीति आदि सभी विषयों पर वह वार्ताएँ या रूपक प्रसारित करता है।

पंत के रूपकों की भाषा विषयानुरूप है। किंतु ऐसे श्रोता के लिये क्या किया जाये जो हिन्दी-उर्दू के विरोध को मन में रख कर उन्हें सुनता है अथवा अपनी भाषा के काव्य को अंग्रेजी ज्ञान के आधार पर कविता और नाट्य-रूपक आदि की शैली विशेष के भेद को भूल कर, समझना चाहता है। हिंदी भाषा का प्रश्न यदि यहाँ पकर उठाना अनिवार्य ही है तो यह उसके उद्भम और विकास का प्रश्न है। किसी भी भाषाविद् के लिये यह स्पष्ट है कि हिंदी अपनी समृद्धि और अपार क्षमता के लिये संस्कृत की ऋृणी है। और यह बात हिंदी के लिये ही नहीं एक-आध को छोड़ सभी भारतीय भाषाओं के लिये सत्य है। संस्कृत के गर्भ से जन्म

लेने के कारण ही हिन्दी भारतीय चेतना या राष्ट्रगत एकता की प्रतीक है। हिंदी को एक सरल एवं सर्व सुबोध भाषा बनाना खिचड़ी पकाना नहीं है। हमारे देश में लोगों के भीतर भाव बोध के जितने स्तर हैं उन सब के समझ में आने के लिये सरल भाषा की बात करना या अपनी सुविधानुरूप सोचना कि कुछ उर्दू के शब्दों के मिश्रण से भाषा सरल तथा सुबोध हो जायेगी कपोल कल्पना मात्र है। सुबोध भाषा का क्या अर्थ है, सुबोध भाषा किसके लिये चाहिये? हिंदी समझनेवाला उर्दू या फारसीमिश्रत हिंदी से अधिक सरलता पूर्वक संस्कृतनिष्ठ हिंदी समझता है। जहाँ तक अहिंदी भाषियों की बात है वे संस्कृतनिष्ठ हिंदी समझता है। जहाँ तक अहिंदी भाषियों की बात है रे संस्कृतनिष्ठ हिंदी के प्रेमी हैं। आकाशवाणी की 'सरल हिंदी' की नीति के विरुद्ध सन'63 का आंदोलन स्पष्टतः सिद्ध कर देता है कि संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही स्वीकार कर सकते हैं, संस्कृतनिष्ठ हिंदी न केवल भारतीय एकता का प्रतीक है वरन् वह अधिकांश भारतीयों के लिये सुबोध भी है। हिंदी को प्रत्येक प्रांत का चोला पहिनना – उर्दूवालों के लिये उर्दूनिष्ठ, तमिलवालों के लिये तमिलनिष्ठ, कन्नड़वालों के लिये कन्नड़निष्ठ, बंगलावालों के लिये बंगलानिष्ठ आदि– एवं प्रत्येक प्रांतवालों के लिये उन्हीं की भाषा का रूप देना न उस प्रांत की भाषा के हित में होगा, न हिंदीके। 'जैसा देश वैसा भेष' की अवसरवादिता हिंदी के निजत्व को तो विलीन कर ही देगी यह भारतीय चेतना को विद्वेष की आग में भी झुलसा देगी।

काव्य-रूपकों की भाषा और अंतर्तथ्य पर अपना अभिमत देते समय यह ध्यान में रखना न्यायसंगत होगा कि साहित्यिक और सांस्कृतिक काव्य श्रोता सामान्य नाटकों, नौटंकी, दशहरे के अवसर पर होने वाले अशिक्षित स्तर की नाटकीय धमाचौकडी के दर्शकों से कहीं अधिक परिष्कृत रुचि का होता है। रंगमंच के सामान्य नाटक जनसाधारण के मनोरंजन के हेतु होते है। किंतु इन सांस्कृतिक नाटकों का लक्ष्य मात्र मनोरंजन नहीं होता है। श्रोताओं के मर्म को छूते हुए ये उनके आंतरिक परिष्कार, सांस्कृतिक रुचि के उन्नयन को लक्ष्य बनाते हैं। इन नाटकों का मूल्य भी उन्हीं के लिये है जो साहित्यिक और बौद्धिक संस्कार युक्त एकाग्रचित्त तथा संगीत और कला के प्रेमी हैं। चित्त की चंचलता श्रोता को छंद-नाट्य के सारतत्व से दूर रख सकती है और फिर खिझते हुए वह कह सकता है – न जाने लेखक क्या कहना चाहता है, कुछ समझ में नहीं आता चित्त की एकाग्रता एवं मनोयोग परिष्कृत रुचि अभ्यास तथा छंद लय के प्रति तन्मयता के द्योतक हैं। अच्छे श्रव्य काव्य की सफलता इसीलिये श्रोता की

संस्कृत रुचि तथा उसके काव्य प्रेम की अपेक्षा रखती है। काव्य का आस्वादन वही कर सकता है दिसका अंतर पूर्वग्रह और दलबंदी से मुक्त तथा काव्य-रस से सिक्त हो। रंगमंचीय. नाटकों, चलचित्रों को देखने वालों ने यदि कभी अपना विश्लेषण करके देखा हो तो उन्हें विदित होगा कि प्रारंभ में उनकी समझ में कम आता था। धीरे-धीरे अभ्यास, रुचि और मनोयोग से ही नाट्य मंचन उन्हें बोधगम्य हुआ। श्रव्य-काव्य के बारे में तो यह महत्वपूर्ण तथ्य है, इसे भूला नहीं जा सकता एवं इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। क्योंकि जहाँ केवल श्रवण से ग्रहण करना है, एक ही इन्द्रिय की सहायता लेनी है वहाँ अभ्यास और एकाग्रता का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है।

रेडियो छंद-नाट्य, जैसा कि स्पष्ट है, श्रव्य नाट्य है। इसमें स्वभावतः शब्द ध्वनि की प्रमुखता है। शब्द ध्वनि को हृदयस्पर्शी, मार्मिक और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये भाषा की सरलता, सजीवता तथा संगीतात्मकता अनिवार्य है तथा सरल शब्दों के साथ छोटे वाक्यों का होना भी आवश्यक है अन्यथा बोलने वाले की साँस भारी-भरकम, लम्बे शब्दों और वाक्यों में उलझ जाती है। श्रव्य-काव्य की प्राण संगीत और लय है। इनके माध्यम से ही वह श्रोता के दृदय को झंकृत कर उसे सत्य का बोध कराता है। पंत के ये साहित्यिक-सांस्कृतिक श्रव्य-काव्य अपने लक्ष्य में सफल हैं, इसमें संदेह नहीं है। इनकी भाषा की स्निग्धिता, सहजता, ओज, अभिव्यंजना शक्ति तथा चित्रमत्ता ने इन्हें सजीवता और प्रेषणीयता से युक्त कर श्रव्य-काव्य की परम्परा का सूत्रधार बना दिया है।

`गद्यपथ'[१] का प्रकाशन सन् 1953 में हुआ। इसमें दो खण्ड हैं: प्थम खण्ड में `वीणा' की अप्रकाशित भूमिका, `पल्लव', `आधुनिक कवि', `युगवाणी' तथा `उत्तरा' की प्रस्तावनाएं एवं भूमिकाएं हैं तथा द्वितीय खण्ड में आकाशवाणी से प्रसारित संस्मरण एवं वार्ताएँ है। गद्य पथ इस दृष्टि से भी अमूल्य है कि `वह पंत के काव्य रतत्नागार की स्वर्ण कुन्जी तो है, उसके द्वारा आधुनिक काव्य के अनेक रहस्यों का उद्घाटन् भी सहज ही होजाता है।'' तथापि उसके प्रकाशन से पंत प्रसन्न नहीं ही हो पाए। उसका रूप तो सामान्य था ही, छापे की भी इतनी भूलें थीं कि उनका मन उदास हो गया । अतः `रश्मिबंध' के परिदर्शन, `चिदम्बरा' के चरण-चिन्ह तथा आकाशवाणी से प्रसारित कई अन्य वफार्ताओं से युक्त होकर यह पुस्तक 20 मई 1961 में एक नये रूप और आवरण के

१ प्रकाशक : साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद

आवेष्ठन में 'शिल्प और दर्शन'[1] के नाम से प्रकाशित हो गई। किंतु यह पुनर्जम्न इसे छापे की भूलों से मुक्ति प्रदान नहीं ही कर पाया, पुस्त खोलते ही दो पृष्ठ का शुद्धि पत्र मुस्कुरा उठता है।

'शिल्प और दर्शन' की भूमिकाएं अपनी सहज संश्लिष्ट भाषा में पंत काव्य के आंतरिक और बाह्य स्वरुप के विकास अथवा उनके जीवन दर्शन पर प्रकाश तो डालती ही हैं, वे अपने विश्लेषण में वस्तुपरक और मूल्यपरक भी हैं। ये कवि की उस अंतरात्म को अभिव्यक्त करती हैं जो द्रष्टा होने के साथ ही सर्वात्मा से अभिन्न अनुभव कर विश्व कल्याण की याचना करती है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका की चर्चा करते हुये नगेन्द्र दी का कहना है 'पंत जी की काव्य-चेतना का मूल आधार कल्पना है – इस तथ्य की अत्यंत निर्भ्रान्त स्वीकृतिभी यहाँ पहली बार मिलती है : 'मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ-मेरा विचार है कि 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है। ....' इस स्पष्ट स्वीकारोक्ति में पंत काव्य की शक्ति और परिसीमा निहित है। पंत जी ने भाव अथवा अनूभुति के साथ कल्पना को जीवन का सबसे बड़ा सत्य माना है। इसी संदर्भ में वे कल्पना के सत्य को अनूभूति के सत्य से रीता मान लेते हैं। और प्रश्न करते हैं, ``प्रत्यक्ष अनुभूति की आग में तपे बिना जीवन की मूर्ति पूर्णतम कैसे हो सकती है?''[2] वे भूल जाते हैं कि कवि की कल्पना उसकी अनुभूति एवं जीवन होता है, यथार्थ की तुलना में जिसे कल्पना कहते हैं, वह उस वायवी दृष्टि की सूचक नहीं है, वरन् उस विराट् दृष्टि की जिसे जीवन में प्रतिष्ठित होना है। सभी महान् कवियों ने इसी कल्पना के सहारे अपने काव्य को मानवोचित धरातल पर ग्राह्य एवं शिवमय बनाया है।[3]

'शिल्प और दर्शन' का द्वितीय खण्ड पंत के जीवन एवं व्यक्तित्व के साथ उनकी साहित्यिक मान्यताओं को गुंफित कर देता है, दोनों एक ही प्रतीत होते हैं। अतः यह खण्ड भावना के तरल प्रवाह में कई साहित्यिक तथ्यों, संस्कृति के विभिन्न पक्षों तथा मान्यताओं और विचारधाराओं एवं 'वादों' पर प्रकाश डालता है। कुछ निबंध महाकवियों एवं महापुरुषों के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं और

---

१ प्रकाशक : रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद

२ 'विचार और विश्लेषण', पृ 100

३ देखिये 'सुमित्रानन्दन पंत जीवन और साहित्य', प्रथम खण्ड, अध्याय 11, पृ. 190, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

कुछ व्यक्तिगत जीवन-संस्मरण के आवरण में अत्यंत रोचक तथा मर्मस्पर्शी हैं जैसे – `पुस्तक, जिनसे मैंने लिखना सीखा, `मेरी पहली कविता', `मेरी सर्वप्रथम रचना' आदि। '' वस्तुतः पंत का `शिल्प और दर्शन' एवं उनका गद्य कवि-हृदय के रूप-रंग, उसकी आस्थावान् प्रगतिशील दृष्टि तथा प्रकृति प्रेम के स्वरूप को पाकर एक नवीन वातायन खोल देता है एवं गद्य को संदरम् और शिवम् की स्निग्धता और मृदुता से प्रोज्वल तथा मार्मिक बना देता है। अथवा पंत का गद्य एक छायावादी कवि का गद्य है जो संदर्भानुसार वैज्ञानिक और तार्किक शक्ति से युक्त हो जाता है। इस दृष्टि से उनका गद्य जीवन सौंदर्य की वाणी को अपनाकर मानव मंगलाशा को अभिव्यक्ति देता है।

अध्याय चतुर्थ

पंत जी के गीतिनाट्यों का सौन्दर्य सौष्ठव

- कला–सौन्दर्यवादी, दृष्टि, भौतिक यथार्थवादी दृष्टि और मानव मूल्यों की स्थापना
- भाषा सौष्ठव
- पात्र–विधान : पुरुष, नारी अदृष्ट और भावनात्मक पात्र
- गीति–विधान
- संगीत/वाद्य–विधान
- गीतिनाट्यों का रसात्मक बोध
    - प्रतीकात्मकता
    - बिम्बात्मकता
    - संगीतात्मकता
    - विचारात्मकता

अध्याय चतुर्थ

पंत जी के गीतिनाट्यों का सौन्दर्य–सौष्ठव

पंत जी के प्रायः अधिकांश गीतिनाट्य प्रतीकात्मक हैं जो कि रेडियो को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। ये पाठ्य एवं श्रव्य हैं तथा पाठकों एवं श्रोताओं की भावनाओं को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की कल्पना अलग - अलग होती है, अतः कल्पना से निर्मित बिम्ब भी पृथक-पृथक होते हैं। श्रव्य प्रधान होने के कारण रेडियो नाटक में ध्वनि और पृष्ठ-संगीत द्वारा ही भावाभिव्यक्ति होती है। पंत जी ने अपने गीतिनाट्यों में रेडियो तकनीक को ध्यान में रखकर ध्वनि, संगीत और कोरस का संयोजन किया है। पंत जी के गीति-नाट्यों में उनका कल्पना - सौन्दर्य और चिन्तनपरक रूप दृष्टिगोचर होता है।

कला

(सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण, भौतिक यथार्थवादी दृष्टि और मानव मूल्यों की स्थापना)

पंत जी के गीतिनाट्य रेडियो से सम्बद्ध हैं। ध्वनि प्रधान होने के कारण पाठकों एवं श्रोताओं की भावनाओं को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की भावना पृथक-पृथक होती है अतः उससे निर्मित बिम्ब भी पृथक - पृथक होते हैं। पंतजी के अब तक शिल्पी, रजतशिखर और सौवर्ण नाम से तीन गीति-नाट्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। तथा आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से समय -समय पर प्रसारित हो चुके हैं। इनमें क्रमशः तीन, छः और तीन गीतिनाट्य संग्रहीत हैं।

शिल्पी –

शिल्पी
अप्सरा
ध्वंस शेष

रजतशिखर –

रजत शिखर
फूलों का देश
उत्तर शती
शुभ्र पुरूष
विद्युत वसना
शरद चेतना

सौवर्ण –

सौवर्ण
स्वप्न और सत्य
दिग्विजय

पंतजी के इन गीतिनाट्यों में कला सौन्दर्य एवं चिन्तन की प्रधानता है। पंतजी सुन्दरता के ही कवि हैं। पंतजी के काव्य में प्राकृतिक मानरिाक और आत्मिक सौन्दर्य ही प्रमुख विषय हैं जो कि उनकी कविताओं में हमें यत्र - तत्र प्राप्त होता है।

कल्पना

पंत जी कल्पना लोक के श्रेष्ठतम कवि हैं। प्रकृति के सुकुमार एवं कठोर रुप की चित्रात्मकता उनके सम्पूर्ण काव्य साहित्य में विद्यमान है - कोमल सुकुमारता अधिक कठोरता कम । कल्पना द्वारा प्रकृति लोक का मानव जगत से साम्य-वैषम्य स्थापित करना उनके गीति नाट्यों में प्रायः पाया जाता है -

एक अचेतन की तरंग के प्रबल घात से
बालू का सा दुर्ग यान मानव जीवन का
तहस नहस हो गया, तिमिजिंल पुच्छ पात से। (रजत शिखर से)
कठोर नियति का स्वरुप-दर्शन है तो दूसरी ओर
लो जीवन की नव मंजरित प्रथम वसंत की
प्राण सखी आ रही इधर ही राह भूलकर
या गत स्मृतियों से प्रेरित हो ? कोयल उसका
अभिनन्दन करता है उत्सुक मर्म कूक भर
कुहूँ कुहूँ - लहरों - से उठते स्वरावेश में
मेरे प्राणों की उत्कंठा बरस रही है।

(रजत शिखर से)

प्रकृति सुषमा के अनेक ऐसे ही स्वरुप पंत जी की कल्पना से निकलकर मानव जगत की व्याख्या लगभग सभी गीतिनाट्यों में करते हैं।

कल्पना को अंग्रेजी में इमेजीनेशन कहा गया है। कल्पना सत्य नहीं होती किन्तु, सत्य का निकटतम आभास अवश्य देती है। कल्पना समय और स्थान की स्वरुपवत्ता को भी मूर्त करती है। कल्पना समय सीमा में आबद्ध नहीं की जा सकती जिसका अंकन कविता है और चित्र की स्थान-सीमा उसी कल्पना का मूर्तरूप है। पंत जी का रुपाकंन कविता के माध्यम से मूर्त का बिम्बात्मक चित्रण है जो समय और स्थान की एकरुपता को स्थापित करता है। बैसिल ने चित्रकला को ``आँख की कला'' और कविता को ``कान की कला'' कहा है।[१] कवि पंत ने दृश्यमान जगत को अनुभव कर उसके प्राकृतिक सौन्दर्य को, भौतिक और नैतिक स्वरुप को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। वस्तुतः जगत के सत्य को हम केवल यथातथ्य स्वरुप में चित्रित नहीं करते अपितु अपनी कल्पना के

१. बेरिल वर्सफील्ड - जजमेंट इन लिटरेचर पृ. ८६

अनुसार उसे इस भांति प्रस्तुत करते हैं जिससे वह मनुष्य द्वारा अपने मूल रुप में स्वाभाविक ढंग से ग्राह्य हो सके।[१] कल्पना हमें मानसिक रुऐसे ही प से भौतिक धरातल से उठाकर चिन्तन धरातल तक ले जाती है जहां हम एक नये मानसिक मंच की रचना में कल्पना द्वारा सत्य और तथ्य के निरुपण में तन्मय हो जाते हैं। पंत जी के गीतिनाट्य स्वर प्रधान हैं अतः `कान की कला' की सुन्दरतम कविता हैं कि जिसे हम चाहे महात्मा जी के शुभ्र पुरुष में देखे और चाहे सौवर्ण के कल्पना लोक में। कल्पना पाठक या श्रोता में रसानन्द की अनुभूति करती है। साहित्य में कल्पना का स्थान आनन्द सृष्टि में सहायक ही होता है।

बिम्बात्मकता

कल्पना (Imagination) का मूर्त स्वरुप है बिम्ब। बिम्ब (Image) निर्मित `आँख की कला' है अतः वह मूर्तवान होकर मानसिक रुप में उभरकर कलात्मक सृष्टि की रचना करती है। पंत जी के काव्य में यह बिम्बात्मकता सौन्दर्य की रचना करती है। इस नैसर्गिक सौन्दर्य का चित्रण कवि मानवीयकरण से भी करता है -

पृष्ठभूमि में शोभित मौन हिमाद्रि श्रेणियाँ
विश्व सांस्कृतिक संचय सी स्थित शुभ्र सनातन -
दिग् विराट यह दृश्य योग्य अमरों के निश्चय!
परिक्रमा कर रहे देवगण धरा शिखर की
अर्ध अगोचर, जगमग छायातप में भूषित
श्लक्ष्ण मधुर कंठो से गाते - दिव्य वन्दना
नव्य युगान्तर का मन में संकेत पा सहसा ।

(सौवर्ण)

भावों का स्वरुप चित्रित करना अत्यंत कठिन है किन्तु, पन्त जी के लिए वही कितना सरलीकृत है। `एब्सट्रेक्ट' को `रियल' बताना कल्पना-बिम्बों द्वारा ही सम्भव है। कवि पंत ने इसे सौन्दर्य से आवृत्त कर मूर्तमान किया है -

देख रहा मैं खड़ा धरा चेतना शिखर पर
युग प्रभात नव जन्म ले रहा विश्व क्षितिज में,
स्वर्ण - शुभ्र धर रश्मि मुकुट भू-स्वर्ग भाल पर
युग युग से स्तंभित, निरुद्ध, आत्मस्थ स्वार्थरत

---

१. बेसिल वर्सफील्ड - जजमेंट इन लिटरेचर पृ. ५० उदधृत - Du. Vrai Ch. VIII

मानव के अध्यात्म जाड्य को ज्योति मुग्ध कर ।

(सौवर्ण)

स्वर्गलोक, नीलाम्बर, धरणी, आकाश, पंछी आदि प्रकृति स्वरुपों को मन, आत्मा, चेतना, चिन्तन, मनन आदि के आधिभौतिक स्वरुपों से तुलना कर नव्य बिम्बों की रचना करना पंत-काव्य की विशेषता है। दूसरी ओर दृश्य बिम्ब, श्रवण बिम्ब, अनुभूति बिम्ब, स्पर्श बिम्ब आदि अनेक ऐसे स्तर हैं जहाँ कवि अमूर्त के मूर्त विधान चित्रण में सफल है।

कवि पंत पर अंग्रेजी कवियों वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि की रोमांटिक कविताओं का प्रभाव तो है ही बंगला के कविकुल गुरु रवीन्द्र के काव्य - प्रतिमानों और संगीतिकाओं को भी पर्याप्त प्रभाव है। काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जिनसे यह प्रतीति होती है कि कवि पंत ने उनका छायानुवाद किया है या कि यह भाव साम्य है।

सौन्दर्य भावना (प्रकृति)

अंग्रेजी के प्रत्यक्ष एवं बंगला के माध्यम द्वारा प्राप्त प्रभाव से प्रेरित होकर हिन्दी साहित्य में नवीन काव्य-धारा का उद्‌भव हुआ जिसकी नीव सौन्दर्य और अद्‌भुत के मिश्रण पर स्थित है। ये रीतिकालीन रूढिबद्ध सौन्दर्य के समान निर्जीव न थी। उसमें अद्‌भुत का चमत्कार था। इसी कारण वह चिर नूतनता समन्वित हो गयी। इसकी परिधि `कन्हाई के मुकुट और राधा की लट' तक ही न सीमित होकर बाह्य और आन्तरिक दोनों संसार तक विस्तृत हो गयी। कवियों के लिये प्रकृति जड़ और मृतक वस्तु नहीं रह गयी। इसमें भावुकता का समावेश हो गया। अतः प्रकृति के साधारण से साधारण उपादान भी एक अनिर्वचनीय शोभा और रहस्य से जान पड़ते थे। प्रकृति अब उद्दीपन मात्र न रह गयी, वह आलम्बन हो गयी। पंत जी के प्रकृति - चित्रों में कवि की भावमग्नता के साथ चित्रकार की चित्रकला और वैज्ञानिक की तीव्र दृष्टि का भी संयोग मिलता है। पंत जी का संध्या वर्णन कितना दिव्य है -

कहो तुम रुपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप
सुनहला फैला केश - कलाप

मधुर - मन्थर मृदु मौन !
ग्रीव तिर्यक् चम्पक - द्युति गात
नयन मुकुलित नत मुख जल जात
देह छवि छाया में दिन रात
कहाँ रहती तुम कौन ?[१]

२. मानव–जगत के प्रति भावना

काव्य - क्षेत्र को राजमहल अथवा पुराण - कथाओं तक परिसीमित करती आयी प्राचीन परम्परा को त्यागकर साहित्य में नव जागृति आयी जो कि पश्चिम से आयी थी। - अतः इसमें वहाँ के साम्यवादी विचारों का पूरा प्रभाव था। इससे प्रभावित होकर कविगण कवि कांचन में ही कवित्व टटोलते रहने के स्थान पर अब निर्धन कुटी द्वारों की ओर आकर्षित होने लगे। मानव का सबसे बड़ा गौरव उसका मानवत्व है - भाग्य - पीड़ित मूक जनता की आहों को माध्यम बना कर काव्य रचना हुई। कविवर `निराला' का `पछताता पथ पर आता' हुआ भिखारी उनकी संवेदना का मापक है। कामिनी का सौन्दर्य एक विशेष रंग में रंग गया और शिशुओं के भोले आनन में एक अपूर्व रहस्य और शोभा का दर्शन होने लगा।

ओस बिन्दु की सुषमा लेकर
फूलों की भोली मुसकान
देकर उडु - रहस्य का मृदु रंग,
तुम्हें बनाया है द्युतिमान ।
वत्स ! तुम्हारे चकित नयन में,
किस अतीत की याद विचित्र,
जागृति - मूर्छा के परदे में,
दिखा रही यह धुँधले चित्र ?[२]

३. पुरातन के प्रति प्रत्यावर्तन

वर्तमान के प्रति असंतोष के कारण इस काल के कवियों में पुरातन के प्रति

---

१. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानन्दन पंत पृ. ४
२. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानन्दन पंत पृ. ५

बड़ी श्रद्धा और सम्मान की भावना है। रहस्य भावना की दृष्टि से भी ये महत्व रखते हैं। अतः हमारा अतीत इन भावुक कवियों की शरण भूमि बन गया। वर्तमान के संघर्ष से व्यथित होकर प्रायः ये उसी अतीन्द्रिय लोक में विचरण किया करते थे तथा अपनी प्रतिभा से विचित्र काव्य उपादान प्रस्तुत करते हैं। पुरातन काल की अद्‌भुत एवं रहस्यपूर्ण विचित्रताएं इन कवियों के अद्‌भुत प्रेम को परितृप्त करने में बहुत सफल रहीं। पन्त जी इसी पूर्ण पुरातन के लिये व्याकुल होकर कहते हैं -

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल !
भूतियों का दिगन्त - छवि जाल
ज्योति - चुम्बित जगती का भाल ?[१]

आत्माभिव्यंजन (व्यक्ति तत्व)

डा. नागेन्द्र के शब्दों में ``छायावाद का मूल ही उपयोगितावाद के विरुद्ध भावुकता का विद्रोह था। ''[२] अर्थात् रीतिकालीन रूढ़िबद्ध काव्य प्रवृत्ति को त्यागकर नई काव्य प्रवृत्ति का उद्‌भव हुआ जिसमें उन्मुक्त आत्माभिव्यंजना की प्रधानता थी। परम्परा के पाश में चिरकाल से बद्ध भावुकता अभिव्यक्त होने लगी और कवियों की कृतियों में हृदय के समस्त आवेशों का आत्मा के सम्पूर्ण स्पन्दनों को विशेष स्थान मिला जिसमें स्वछन्द कल्पना का समावेश था। कवि के अपने व्यक्तिगत राग - विराग काव्य में बहुमूल्य समझे जाते हैं। **श्रीमती महादेवी वर्मा** के काव्य में आत्माभिव्यंजन का प्राधान्य है। उनके **'सान्ध्य गीत'** **'नीरजा'** और **'नीहार'** में इसकी प्रचुरता देखी जा सकती है।

बच्चन जी के **'कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा'**, **'कवि की निराशा'** आदि गीत इसके प्रबल उदाहरण है। **'वृद्ध जग को क्यो अखरती है क्षणिक मेरी जवानी'** में बच्चन जी ने व्यक्तिगत प्रहार किया है। **भगवती चरण वर्मा** भी **'मेरी आग'** में कहते हैं- **'जल उठ जल उठ अरी धधक उठ, महानाश सी मेरी आग।'**

पंत जी सुन्दर के ही कवि हैं। इनकी कविता का असली विषय प्राकृतिक, मानसिक और आत्मिक सौन्दर्य है। पंत जी का सौन्दर्य प्राकृतिक से मांसलता, मांसलता से मानवता तक के क्रम में परिलक्षित होता है। पंत जी के समस्त काव्य - वैभव का निर्माण दो महत्वपूर्ण चिन्तन के परिणाम स्वरुप हुआ है।

---

१. श्री सुमित्रानन्दन पंत - ``तारापथ'' पृ. ८१
२. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानन्दन पंत - पृ. ६

पहला कवि का एक निर्वैयक्तिक दृष्टिकोण और वस्तुवादी चेतना की उपलब्धि। दूसरा, सौन्दर्य - चेतना और भाव - चेतना का संश्लेषण। चेतना के इन स्तरों का एक सूक्ष्म क्रम पंत जी के काव्य विकास में लक्ष्य किया जा सकता है - सौन्दर्य - चेतना, बौद्धिक - चेतना, भू-चेतना और सूक्ष्म - चेतना।

पंत जी की **``उच्छवास'', वीणा, ग्रन्थि, पल्लव और गुंजन** तक की कविता में सौन्दर्य - चेतना के दर्शन होते है। शब्द, शिल्प, भाव, भाषा और अन्तर - उद्बबोधन सभी दृष्टियों से पंत जी ने एक अत्यन्त सूक्ष्म, बारीक और हृदयहारी सौन्दर्य की सृष्टि की है। सौन्दर्य, सृष्टि के इस प्रयत्न के मुख्य उपादान हैं - प्रकृति, प्रेम और आत्म - उद्बोधन। प्रकृति जहाँ अपने आप में एक बाह्य उपादान के साथ ही एक साध्य का भी रूप ग्रहण करती है, वहीं प्रेम उसमें अन्तर्सग्रंथित है और बहुत हद तक आत्म उद्बोधन भी। इस रुप में पंत जी के प्रारम्भिक काव्य में एक सर्वथा अधुनातन तत्त्व नाटकीय तत्त्व का प्रादुर्भाव दिखाई देता है।

पंतजी की **सौन्दर्यमयी** दृष्टि पल्लव, वीचिजाल, मधुपकुमारी, किरण चाँदनी, अप्सरा, चाँदनी, संध्या, ज्योत्स्ना, छाया, आदि पात्रों में देखने को मिलती है। अल्मोड़े की चित्रित घाटी में पला हुआ यह भावुक कवि प्रकृति के रंगीन स्वरुप में घुलमिल-सा गया है। उसका सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया - कम्पन उसके हृदय में पुलक और प्राणों में स्पन्दन भर देता है। कोमल प्रकृति के सूक्ष्म स्पन्दनों की पंत जी को दिव्य अनुभूति है। एक और वह पुंज - पुंज विहगों को देखकर हर्ष-विभोर हो उठते हैं -

विहग - विहग
फिर चहक उठे पुंज पुंज
चिर सुभग, सुभग। [१]

तो दूसरी ओर छाया को तरू के नीचे एकाकिनी देखकर उसकी अवस्था पर दयार्द्र हो जाते हैं -

कहो कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरू के नीचे सोई,
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि, नल-सा निष्ठुर कोई ? [२]

---

१. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानन्दन पंत पृ. १६

२. श्री सुमित्रानन्दन पंत - तारापथ पृ. ६७ (पल्लव से ``छाया'' कविता)

यह अनुभूति जब और अधिक गहन हो जाती है तो कवि प्रकृति में एक रहस्यमय आकर्षण का अनुभव करने लगता है और एक करूण विस्मय में विभोर होकर कह उठता है -

क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात,
सिन्धु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर मौन
न जाने, मुझे बुलाता कौन ! [१]

प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त पंत जी की शारीरिक सौन्दर्य सम्बन्धित अनुभूति बड़ी तीव्र है। `नारी' कविता में वे उसके समस्त सौन्दर्य को एक शब्द में कह देते हैं - अकेली सुन्दरता कल्याणि।

मानसिक संसार

पंत जी की **स्वप्न, कल्पना आँसू, उच्छवास,** अनंग आदि कविताओं में **मानसिक सौन्दर्य** परिलक्षित होता है। हृदय की कोमल भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति पंत जी की कविता का विशेष गुण है। इस विषय में इनकी सूक्ष्मदर्शिता अपरिमेय है। इनकी भावाभिव्यक्ति में कल्पना के साथ ही रूप, रस, गंध आदि का उचित समावेश रहता है जो कि इनकी संवेदनाओं को कलामय बना देते है। गुंजन, पल्लव व उच्छवास की कविताएं अत्यन्त क्षणिक भावना का चित्रण करने में सफल है । ``वीणा'' की अधिकांश कविताएं भी गुदगुदाकर अपना प्रभाव डालती हैं। पंत जी ने बालिका बनकर बहुत से सुन्दर गीत लिखे हैं। उन सभी में `माँ' को ही सम्बोधित किया है। जन्म से ही मातृ हीन पंत की ये कविताएं विशेष करूण स्मृति से झंकृत हैं।

बालिका माँ के स्नेह और अपने खेलों पर इतनी मुग्ध है कि वह सदा छोटी ही बनी रहना चाहती है -

मैं सबसे छोटी होऊँ

क्योंकि -

बड़ा बनाकर पहिले हमको, तू पीछे छलती है मात !
हाथ पकड़ फिर सदा हमारे, साथ नहीं फिरती दिन रात !

१. सुमित्रानंदन पंत - तारापथ पृ. ६५ (पल्लव से मौन-निमन्त्रण कविता)

अपने कर से, खिला धुला मुख, धूल पोंछ सज्जित कर गात !
थमा खिलौने नहीं सुनाती हमें सुखद परियों की बात ![१]

बालिका द्वारा की गयी प्रार्थना बहुत ही भोली और अर्थ - गर्भित है। कुछ कृतियों में पंतजी अपने अस्तित्व को विश्व में मिला देने के लिये उत्कंठित हो उठे हैं जो कि उनके सरलतम हृदय का भव्यतम प्रतिबिम्ब होने के कारण विशेष महत्व रखती है। पंत जी की कविताओं में व्याप्त प्रेम - भावना कहीं पर उच्छृङ्खल या जड़ या आवेशपूर्ण अथवा स्वार्थ जनित नहीं है। भावना के उतार - चढाव या थमाव अत्यन्त सजग और साथ ही साथ मंथर हैं।

इसके साथ ही इनकी कविताओं में कहीं ``सदा बचाव चाहने वाला भय करूणतर'' मानव - जीवन की ईर्ष्यामय विवशता है तो कहीं पर तीव्र करूणा की अभियक्ति है । ``ग्रन्थि'', ``उच्छवास्'' और ``आंसू'' ये तीन कविताएं किसी विशेष करूणा से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं। पं. कृष्ण शंकर शुक्ला के शब्दों में ``वियोगजन्य विकलता'' का कवि पर प्रभाव पड़ा है। [२]

इन कविताओं में पंत जी का आवेश फूट पड़ा है -

उमड़कर आँखो से चुपचाप
बही होगी कविता अन्जान । [३]

यही करूणा की भावना `परिवर्तन' में शत - शत धाराओं में बही है। विश्व का समस्त उत्ताप पंत के शब्दों में मुखरित हो रहा है। ``ग्रन्थि'' में निराश प्रेमी की निराश विवशता को व्यक्त करते हुए कहते हैं -

``पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है।
चल किसी निर्जन विपिन में बैठकर '' [४]

पंतजी की कविताओं में एक ओर करूणा की भावना के दर्शन होते है जिसमें विश्व का समस्त उत्ताप मुखरित होता है, वहीं दूसरी ओर उनकी सच्ची अनुभूति और कल्पना की सुन्दर सम्मिश्रण व्यंजना प्रधान कवितायें, जो उनकी

१. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानन्दन पंत पृ. १९-२०
२. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानन्दन पंत पृ. १९-२०
३. डा. नगेन्द्र - ``सुमित्रानन्दन पंत'' पृ. १९-२०
४. डा. नगेन्द्र - ``सुमित्रानन्दन पंत'' पृ. २३

दार्शनिक प्रवृत्ति को प्रकट करती हैं।

कल्पना

पंत जी की कविताओं का प्रधान साधन कल्पना है और इस कल्पना के माध्यम से पंतजी ने विविध चित्रों का सजीव अंकन, उपमा एवं रूपक की मधुर योजना का समावेश किया है। पंत जी की कल्पना का विशेष गुण उसकी मुर्ति विधायिनी शक्ति है तथा इसी शक्ति के कारण वे अपने सम्मुख छोटी-सी छोटी वस्तु को मूर्त रूप प्रदान करने में सफल हैं। पंत जी की ``**अनंग**'' कविता में कल्पना और अनुभूति का सामंजस्य है जो उसकी प्रभविष्णुता को बढ़ाता है -

मिला लालिमा में संध्या का
छिपा एक निर्मल संसार
नयनों में निस्सीम व्योम औ,
उरोरूहो में सुरसरि - धार ।[१]

पंतजी की ``बापू के प्रति'' कविता में कल्पना, अनुभूति और चिन्तन तीनों का उचित सम्मिश्रण है।

'शिल्पी' संग्रह का **'अप्सरा'** गीतिनाट्य पंत जी की सूक्ष्म सौन्दर्यपरक दृष्टि का परिचायक है। स्वयं पंत जी के ही शब्दों में ``यह (अप्सरा) सौन्दर्य चेतना का रूपक है।'' पंत जी ने सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना परक दृष्टि से अपने गीतिनाट्यों में मानव - व्यक्तित्व का अन्वेषण तथा सौन्दर्य का यथार्थ और सूक्ष्म विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है । पंतजी की दृष्टि सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति, कल्पना और चिन्तन की ओर विशेष रूप से उन्मुख रही है। इस गीतिनाट्य में उनका यह रूप विद्यमान है।

`शिल्पी' गीतिनाट्य संग्रह का प्रथम गीतिनाट्य **'शिल्पी'** है। `शिल्पी' में पंत जी ने कलाकार के जीवन की यथार्थवादी व्याख्या उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। दूसरे गीतिनाट्य **'ध्वंस शेष'** में विज्ञान और भौतिकवाद से तप्त सृष्टि को शान्ति और सुख की खोज में प्राचीन संस्कृति की और उन्मुख करना पंत जी का लक्ष्य रहा है।

``**परिवर्तन**'' कृति की रचनाकाल १९२४ है, जो कि पंत जी के जीवन में एक विशेष समय था। जीवन की वास्तविकता के प्रति ऐहिक विपत्तियों की ठोकर

---

१. डा. नगेन्द्र - ``सुमित्रानन्दन पंत'' पृ. २६

खाकर, पंत जी का ध्यान सर्वप्रथम इसी समय गया था। कल्पना - लोक की विहारिणी कवि -प्रतिभा का मर्त्यलोक की कठोरताओं से परिचय होते ही वह एक साथ उद्दीप्त एवं उद्‌बुद्ध हो उठी और विश्व में व्याप्त परिवर्तन की मार्मिक अनुभूति से तड़प उठी। कवि समालोचक **शान्तिप्रिय द्विवेदी** के शब्दों में, ``उसमें परिवर्तनमय विश्व की करूण अभिव्यक्ति इतनी वेदनाशील हो उठी है कि वह सहज ही सभी ह्रदयों को अपनी सहानुभूति के कृपासूत्र में बाँध लेना चाहती है ।''[१] वास्तव में `परिवर्तन' में ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त विश्व की करूण अनुभूति मुखर हो उठी हो।

पंत जी ने `पल्लव' की कविता में एक पंक्ति लिखी है - **'वत्स, जग हे अज्ञेय महान् ।'**[२] पंत जी के काव्य विकास के अगले शिखरों का सूक्ष्म संकेत इस एक पंक्ति में हमें मिल जाता है। वस्तुतः सन् १९३५ के बाद की समस्त कविता में पंत जी की `आत्म-प्रबोध' दृष्टि ही परिलक्षित होती है और यह `आत्म प्रबुद्धता' ही पंत जी की कविता के इस नये परिवर्तन को सूचित करती है जो कि पंत जी की सतत जागरुक चेतना और समृद्ध अनुभव सम्पदा का फल है। पंत जी ने कहा भी है - ``मेरा काव्य प्रथमतः इस युग के महान संघर्ष का काव्य है। आज के विराट मानवीय संघर्ष को वर्ग- संघर्ष तक ही सीमित करना विगत युगों की वर्ग चेतना तथा ऐतिहासिक अंधकार की एक हिंस्त्र प्रतिक्रिया मात्र है ..

मुझमें यह दृष्टिकोण (यथार्थ का आग्रह) परिवर्तन, प्रेम के कारण नहीं, किन्तु भावात्मक आवश्यकता के कारण ही सम्भव हो सका।''[३]

पंतजी की इस काल खण्ड में युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या प्रमुख रचना है, जिसकी अधिकांश कविताओं में ग्राम-जीवन के विरूप सौन्दर्य के साथ ही यथार्थ चित्रण है। पंत जी ने जीर्ण - शीर्ण के अन्त या पुरातन की परिसमाप्ति कर नव - निर्माण का संकेत देते हुए ``ग्राम्या'' में लिखा है -

गा कोकिल, बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन --
झरे जाति - कुल, वर्ण - पर्ण धन
व्यक्ति - राष्ट्र गत राग द्वेष - रण

---

१. डा. नगेन्द्र - ``सुमित्रानन्दन पंत'' पृ. ९८
२. सुमित्रानन्दन पंत - तारापथ, पल्लव (शिशु कविता) पृ. ९९
३. सुमित्रानन्दन पंत - तारापथ पृ. ३३

झरें - मरे विस्मृत में तत्क्षण
गा कोकिल, गा, मत कर चिन्तन -
पावक पग धर आये नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन -
गा कोकिल, मुखरित हों दिशिक्षण - [१]

प्रमुख रूप से पंत जी की इस काल की रचना गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित ह। जिन्होंने युग-युग के कर्दम से परिवेष्टित मानवता के वास्तविक स्वरुप को पहिचाना और उसकी अमरता का घोष किया। इसके लिए इन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाया। साथ ही पंत जी सोवियत रूस में चल रही मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित थे जो कि शोषक व शोषितों के ``साम्यवाद'' पर आधारित थी। ``युगवाणी'' और ``ग्राम्या'' में उन्होंने, जो कि मार्क्स के वस्तुवादी जीवन दर्शन से प्रभावित है, आधिभौतिकवाद का निषेध करते हुए आत्म - सत्य और वस्तु - सत्य के समन्वय पर बल दिया है। जो कि दलितों, पीड़ितों एवं शोषितों की व्यथा को मुखर करता है। और जीवन की रूढ़ियों में खोयी हुई मानवता को ढूँढ निकालना उसका लक्ष्य है। चिर बन्दी मानव को मुक्त करने के लिए वह रूढ़िग्रस्त प्राचीन को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहता है।

पंतजी की विचार धारा

पंत जी की भावुक कवि है। पश्चिमी कला और सभ्यता की अमिट छाप होने पर भी पंत जी सच्चे आस्तिक हैं। वे कहते है कि ``ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे'' और विश्वास को वे जीवन का अनिवार्य अंग समझते हैं -

सुन्दर विश्वासों से ही
बनता रे सुखमय जीवन।[२]

`परिवर्तन' में विश्व के अन्तर में व्याप्त इस एक की शक्ति के विषय में पंत जी कहते हैं -

एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि में हरित विलास,

१. सुमित्रानन्दन पंत - तारापथ पृ. ३६
२. डा. नगेन्द्र सुमित्रानंदन पंत पृ. २९

शरत अम्बर में नील विकास,
वही उर - उर में प्रेमोच्छ्वास,
काव्य में रस, कुसुमों में वास।[१]

ईश्वर की महत्ता के साथ वे जीव की महत्ता भी कम नहीं मानते। वे उसके गौरव से अभिभूत हैं पंत जी प्रकृति को भी सत्य मानते हैं, क्योंकि वह ईश्वर का ही प्रतिबिम्ब है नौका - विहार में इसी सत्य को व्यक्त करते हुए कहते है -

शाश्वत नभ का नीला विकास,
शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास !
हे जगजीवन के कर्णधार !
चिर जन्म मरण के आर - पार
शाश्वत जीवन- नौका - विहार ।[२]

अतः उन्हें जगत में तृण, तरू, पशुपक्षी नर-सुरवर सभी कुछ प्रिय है। जगत के साथ ही जीवन भी सत्य और सुन्दर प्रतीत होता है। जीवन को पूर्ण बनाने के लिये उसके अन्तर में प्रवेश करने की आवश्यकता है क्योंकि जीवन में सर्वत्र ऊहापोह और क्रान्ति के कारण विषमता व्याप्त है। इसीलिये पंत जी कहते है -

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शो का।

जीवन को जड़ता से चैतन्य की ओर शरीर से आत्मा की ओर रूप से भाव की ओर अग्रसर होना है जो कि स्वप्न और कल्पना की सहायता से मनुष्य के सम्मुख जीवन की उन्नत मानव - मूर्तियों को स्थापित करके पूरा किया जा सकेगा। इसके लिये आशा, अभिलाषा, उच्चाकांक्षा, त्याग, उद्यम, विश्वास, विवेक, श्रद्धा, सत्य आदि प्रमुख उपादान हैं।

राजनीतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व

जीवन को पूर्ण बनाने के लिये मनुष्य सदा से शासन का पक्षपाती रहा है।

---

१. डा. नगेन्द्र सुमित्रानंदन पंत पृ. २९
२. सुमित्रानंदन पंत - तारापथ पृ. ११७

जग जीवन में है सुख दुःख
सुख दुःख में ही जगजीवन।[1]

पंत जी का यह प्रिय विषय रहा है। और इस विषय में ग्रन्थि से गुंजन, गुंजन से ज्योत्सना, ज्योत्सना से युगान्त में उनके दर्शन में एक विकास पाया जाता है। पंत जी अधिकतर जीवन को उल्लासमय ही अनुभव करते हैं।

समय के साथ नवीन गाम्भीर्य और गाम्भीर्य के साथ ज्यों ज्यों नवीन संयम आता गया, पंत जी की विचारधारा में परिवर्तन दिखायी देने लगा। दैहिक और दैविक आपत्तियों के जर्जरीभूत अवस्था के कारण पल्लव में करूण भाव के दर्शन होते हैं। परन्तु शीघ्र ही प्रभु की कृपा से स्वास्थ्य लाभ कर कवि पंत जी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल गया, उसमें नव आशा, नव अभिलाषा का संचार हो गया और अब जीवन के प्रति करूणाभाव को त्यागकर, जीवन को सुख-दुख से पीड़ित समझकर वह उनके समविभाजन की प्रार्थना करते हैं -

`ज्योत्सना' में यही भावना अधिक प्रस्फुटित हो जाती है पंतजी कहने लगते है -

जग जीवन नित नव नव,
प्रतिदिन प्रति क्षण उत्सव
जीवन शाश्वत बसन्त
अगणित कलि कुसुम वृन्त,
सौरभ, सुख, श्री अनन्त।[2]

और `युगान्त' में पहुँचकर पंत जी का आशावादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। वे जगत में फिर से ज्योतिर्मय जीवन लाने की कल्याण - कामना से ओत-प्रोत हो उठता है -

मंजरित विश्व में यौवन के
जग कर जग का पिक मतवाली
निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से
भर दे फिर नव युग की प्याली ।[3]

इसके पश्चात् पंत जी की काव्य रचना में पुनः एक परिवर्तन दिखाई देता

---

१. सुमित्रानंदन पंत डा. नागेन्द्र पृ. ३४
२. ज्योत्सना सुमित्रानंदन पंत पृ. ६६
३. सुमित्रानंदन पंत - तारापथ पृ. ११८ (युगांत कविता)

है। यह परिवर्तन फिर एक नये प्रकार के भाव - पट की सूचना देता है। जिसमें पंत जी की अनुभूति वस्तु को समेटती हुई उस बौद्धिक चेतना से ऊपर उठकर एक सूक्ष्म अतिमानवीय चेतना को ग्रहण करने लगती है तथा ये चिंतन प्रधान है जहाँ कविता के माध्यम से अंदर की कर्मण्यता और काव्य - समृद्धि तथा संस्कारों की गहन संवेधता प्रकट होती है। यहाँ पंत जी के `युगान्त' का `क्रान्तिकारी' मन फिर `विकासकामी' और `निर्माणकामी' हो उठता है। इसमें पंत जी की एक गहरी उद्‌बुद्ध दृष्टि के दर्शन होते है और यह अंतर-उदबोधन ही **स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, अतिमा, वाणी** की कविताओं का मूल उपादान है। इन कविताओं की समग्र मनोभूमि लोकमंगल की कामना से अन्तर्ग्रसित है। जो कि पंत जी की आध्यात्मवादी प्रवृत्ति को दर्शाती है। **`भारतमाता'** कविता में पंत जी भारत का गौरव गान करते हैं -

खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला - सा आँचल
गंगा जमुना में आँसू जल
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी
भारतमाता ग्रामवासिनी।[१]

पंत जी की यह आध्यात्मिकता मनोवैज्ञानिक है। इसका संबंद्ध सूक्ष्म चेतना से है। पंत जी का आत्मा की सत्ता में अटल विश्वास है। परन्तु वे आत्मा को चेतना का सूक्ष्म रुप मानते हैं, जिसमें मानव ह्रदय की विभूतियों का चरम विकास मिलता है। इस आध्यात्म - चेतना का मूल तत्व है समन्वय - व्यष्टि और समष्टि का समन्वय, भौतिक और आध्यात्मिक जीवन का समन्वय। यही मानव का देवत्य है जिसमें कि जीवन के स्वर्णिम वैभव पर आत्मा का अवतरण प्रतिष्ठित है। इसी के आधार पर विश्वसंस्कृति की स्थापना हो सकती है जो इस युग की समस्याओं का एकमात्र समाधान है। `स्वर्णधूलि' और `स्वर्ण किरण' में इसी अन्तर्मुख चिन्तन विचारधारा को व्यक्त किया है। जिसमें अनेकता में एकता की अथवा समन्वय की भावना भौतिक तत्वों से ऊपर उठकर परम तत्व तक पहुँच जाती है -

अन्न प्राण मन आत्मा केवल

---

१. सुमित्रानंदन पंत - तारापथ पृ. १४३ (ग्राम्या कविता)

ज्ञान - भेद सत्य के परम,
इन सबमें चित व्याप्त ईश रे,
मुक्त सच्चिदानन्द चिरन्तन ![1]

मानव मूल्यों की स्थापना

मानवपन की महत्ता ने पंत जी को अभिभूत कर लिया है। मानव का सबसे बड़ा महत्व यही है कि वह मानव है-

क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में,
यदि बने रह सको तुम मानव ?[2]

पंत जी का `युगान्त' काव्य मानव जगत की मंगलाशा से ओत - प्रोत है जो कि पंत जी के तात्कालिक विचारों और भावनाओं से सम्बन्ध रखती है पंत जी का करूणा तृप्त ह्रदय मानव हित से पूर्ण हो गया है। वह मानवता के विकास द्वारा जीवन की पूर्णता स्थापित करने की शुभेच्छाओं से आकुल है।

गा कोकिल, बरसा पावस कण
नष्ट - भ्रष्ट हो जीर्ण - पुरातन
ध्वंस - भ्रंश जग के जड़ - बन्धन
पावक - पग घर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन । [3]

पंत जी गांधी जी की विचारधारा से प्रभावित थे। `मानव' तथा `बापू' के प्रति कविता में पंत जी की मानव - पूजा मुखरित हो उठी है। पंत जी ने बापू में अपने आदर्शो का मूर्तिमान स्वरुप पा लिया है। अतः मानवता का पूर्ण विकास उसमें पंत जी को मिल गया है। गाँधी दर्शन की व्याख्या करते हुए पंतजी कहते है।

भौतिक विज्ञानों की प्रसूति
जीवन उपकरण चयन - प्रधान

---

१. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. १७२
२. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. ३९
३. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. ११४

मथ, सूक्ष्म - स्थूल जग, बोले तुम

मानव मानवता का विधान

गांधी जी व मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर पंत जी ने `युगवाणी और ग्राम्या' की रचना की जो कि दलितों, पीड़ितों व शोषितों के साम्यवाद तथा यथार्थ चित्रण पर आधारित है। पंतजी ने नव - युग निर्माण के लिये अपने आदर्श बदले तथा अब उनका लक्ष्य `सुन्दर हो जनवास वसन सुन्दर तन' था।

अरविन्द से प्रभावित होकर पंत जी के काव्य में नया मोड़ आया। मार्क्सवादी का भौतिक संघर्ष, निरीश्वरवाद अथवा अनात्मवाद से दूर उनके काव्य में आध्यात्मिकता तथा लोकमंगल की भावना का समावेश हुआ।

पंत जी के काव्य की सम्पूर्ण अन्तरमुख और बर्हिमुख परिणतियाँ `लोकायतन' में एकमेक हो गयी है। सौन्दर्य सृष्टि से लेकर बौद्धिक चैतन्यता और लोकमंगल की गहरी दृष्टि इसमें नियोजित है। इसमें एक महान् `युगद्रष्टा' के दर्शन होते हैं जिसका यह कथन संपूर्ण रूप से प्रतिफलित हुआ दिखता है।

`कवि मनीषी का कर्त्तव्य सनातन
जीवन मंगल का करना सुख सर्जन।'[१]
(लोकायतन)

इस महाकाव्य में ऊर्ध्व चेतना, अन्तश्चेतना और लोक चेतना के समन्वय से रचित है। अरविन्द दर्शन से प्रभावित होकर पंत जी ने इस काल की कविता में आस्था और लोकमंगल की भावना को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। जब देश में विघटन, विश्रृंखलता, नैतिक मूल्यों का ह्रास चारों ओर दिखाई पड़ रहा था उस समय महाकवि पंत का यह स्वप्न (मुझे स्वप्न दो, मुझे स्वप्न दो) एक महान् जीवन और विराट आस्था की परिकल्पना करता है। यही वह संदेश है, जो समस्त पंत काव्य में अन्दर ही अन्दर प्रवाहित होता हुआ हमें मिलता है। पंत जी का समस्त काव्य आत्मोत्कर्ष का काव्य है। यह आत्मोत्कर्ष अपनी समग्र संरचना में एक सार्वभौमिक शुभेच्छा तक ले जाता है। इसीलिये उनका काव्य अतीतोन्मुखी न होकर वर्तमान के फलक पर भविष्योन्मुखी काव्य है। यह सार्वभौमिक शुभेच्छा ही वह तत्व है जिसके भीतर से पंत ने विश्व - मानव और नव - मानव की परिकल्पना को अपनी कविता में सार्थक किया है।

१. सुमित्रानंदन पंत - तारापथ (भूमिका से उदधृत)

भाषा – सौष्ठव

पंत जी ने गीतिनाट्यों में भाषा को अत्याधिक महत्व दिया है क्योंकि भाषा भाव प्रेक्षण का कार्य करती है। गीतिनाट्य की भाषा के सम्बन्ध में टी. एस. ईलियट का कहना है कि भाषा न तो इतनी प्राचीन होनी चाहिए कि उसकी बोध गम्यता ही संदिग्ध हो जाये और न कुछ आधुनिक फ्रांसीसी नाटककारों की भाँति आज कल के वार्तालाप से मिलती-जुलती ही होनी चाहिये। इसीलिये उसने अपनी शैली को `तटस्थ' कहा तथा `मुक्त छन्द' का प्रयोग किया है।

पंत जी की भाषा चित्रभाषा है। उनके शब्द भी चित्रमय और सस्वर हैं। संगीत की दृष्टि से वह लोल लहरों का चञ्चल कलरव, बाल झंकारों का छेकानुप्रास है। पंत जी के प्रत्येक शब्द का स्वतंत्र हृत्कम्पन, स्वतंत्र अंग - भंगी, स्वाभाविक सांसें हैं। उनका संगीत स्वरों की रिमझिम में बरसता, छनता - छलकता, बुदबुदो में उबलता, छोटे-छोटे उत्सों के कलरव में उछलता - किलकता हुआ बहता है। स्वयं पंत जी के शब्दों में, `भाषा संसार का नादमय चित्र है', ध्वनिमय स्वरुप है - यह विश्व की हृन्ततन्त्री की झंकार है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है ।[१]

शब्द – चयन

पंत जी की भाषा की प्रमुख विशेषता उनका शब्द - चयन है। इसके लिये पंत जी ने संस्कृत की व्यंजनापूर्ण तत्सम शब्दावली का प्राचुर्य होते हुए भी ब्रजभाषा फारसी और कहीं - कहीं अंग्रेजी तक से सहायता ली है। तद्भव एवं देशज शब्दों का भी चित्रोपमता की दृष्टि से प्रयोग किया है। कभी - कभी संस्कृत का एक पद का पद उठाकर रख दिया है - यथा `एकोडहं बहुस्याम', `नानृतं जयति', `सत्यं मा भैः' आदि परन्तु ये प्रयोग सदा अवसरोपयुक्त होने के कारण विशेष अर्थ का द्योतन कराते है; जैसे उक्त दोनों पद धार्मिक वातावरण का सजृन करने के लिये प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार ब्रजभाषा के अजान, दई, दीठ, गुंजार, काजर कारे, बिकरारे आदि; फारसी के नादान तथा अंग्रेजी के रुम इत्यादि दो - एक शब्द स्वीकार कर लिये हैं। `अंबियों' `ऐंचीला' सदृश तद्भव का देशज शब्द भी बड़े सुष्ठु और स्थानापन्न हैं।

यही नहीं, अंगरेजी के ढाँचे में, कही संस्कृत - प्रत्यय लगाकर कही स्वतन्त्र रूप से पंत जी ने अपने कुछ सुन्दर शब्द गढ़ भी लिए हैं - उदाहरण के लिये

---

१. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. ५९

स्वप्निल, प्रि, हृलद, अनिर्वच, सिंगार आदि।

विचित्र प्रयोग

पंत जी ने कुछ शब्दों का विचित्र प्रयोग भी किया है। `मनोज' शब्द रूढ़ है उसका अर्थ कामदेव ही है; परन्तु पंत जी ने `मन' (`शरीर' से विभिन्नता दिखाने के लिये) उत्पन्न, व्युत्पत्ति अर्थ में ही, उसका प्रयोग करते हुये बापू के लिये फिट कर दिया है - `तुम आत्मा के मन के मनोज!' `अछूत' का प्रयोग भी ऐसा ही है - `अमृत स्पर्श से है अछूत ! एक - आध स्थान पर किसी प्रचलित शब्द के अनुसार अपने शब्द बना लिये हैं -`बिन्दुओं की छनती छनकार'। संक्षेप में, पंतजी ने शब्द और अर्थ में एकता, चित्रोपमता एवं व्यंजकता लाने के लिये सर्वत्र ही सफल प्रयत्न किया है।

पद – योजना

पंत जी के काव्य पर कालिदास, कीट्स और टैगोर का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। उनकी पदावली में उक्त कवियों की प्रतिध्वनियाँ यत्र - तत्र बिखरी मिलती हैं। संस्कृत की समस्त पदावली का प्रयोग तो पंत जी ने उच्छ्वसित कल्पना और भावों की अभिव्यक्ति के लिये ही किया है - `शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर।' जहाँ भावना की स्वतंत्र गति है वहाँ शब्द असमस्त हैं। संस्कृत-तत्समों के आधार पर पंत जी तद्भव का प्रयोग भी बड़ा सुन्दर करते हैं, जैसे `अकेली सुन्दरता कल्याणि' में अकेली शब्द एकान्त (पूर्ण) अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेजी का लाक्षणिक पद - योजना की छाया भी पंत जी के काव्य में दिखाई देती है जैसे `अजान' शब्द में innocent की झलक ज्यों की त्यों है; `समय के-से संवाद' में संवाद message की हिन्दी प्रतिध्वनि है। पंत जी ने बाह्य प्रभावों से प्रेरित होकर, साथ ही अपनी प्रतिभा द्वारा, हिन्दी की लाक्षणिकता और मूर्तिमता को अत्यन्त समृद्ध और विकसित कर दिया है। ज्योत्सना के गीतों में उनकी भाषा की सांकेतिकता (symbolism) दिखाई देती है।

इस प्रकार पन्त जी की भाषा प्रधान रुप से अलंकृत ही है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसमें एक भोला सारल्य भी मिलता है - वहाँ पर व्यंजना शक्ति ही

कार्य करती है -

मृदु बांह मोड़ उपादान किए,
ज्यों प्रेम - लालसा पान किए;
उभरे उरोज कुन्तल खोले
एकाकिनि कोई क्या बोले।[१]

अन्तिम पंक्ति में कुछ मुँह - सा फुलाए हुए एकाकिनी बाला का चित्र व्यंग्य है।

मुहावरे एवं कहावते

पंत जी एकाध स्थान पर चमत्कार लाने के लिये मुहावरे एवं कहावतों का प्रयोग किया है। `पानी पी घर पूछनो, नाहीं भलो विचार' को उन्होंने भावपूर्ण स्वरुप प्रदान किया है-

यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपांगो से अधिक है देखता
दूर होकर और बढ़ता है तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।[२]

मुहावरों का प्रयोग भी जहाँ हुआ है, वहाँ अपनी एक खास खूबी रखता है। `अरे वे अपलक चार नयन, आठ आँसू रोते निरुपाय।' कहीं कहीं अंग्रेजी मुहावरों का भी पंत जी ने बड़ा ही अच्छा और व्यंजनापूर्ण प्रयोग किया है।

व्याकरण

पन्तजी के शब्द जिस प्रकार एक ओर व्याकरण के कठिन नियमों से बद्ध रहते हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर राग की दृष्टि से स्वतंत्र होते हैं, साथ ही अपने कलापूर्ण स्वभाव - वैषम्य के अनुसार वे स्थान - स्थान पर व्याकरण की कड़ियाँ तोड़ भी देते हैं। शब्द और अर्थ में सामंजस्य स्थापित करने के लिये पंत जी ने संस्कृत के संधि-नियमों का भी उल्लंघन कर दिया है जैसे `मस्ताकाश' में। साथ ही अनेक स्थलों पर कर्ता के अनुसार क्रिया का लिंग-निश्चय किया गया है।

१. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. ६१
२. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. ६२

उदाहरणार्थ 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।' इसी प्रकार शब्दों में प्रयुक्त कठोर व्यंजनों को विशेषकर 'ण' को भाव के अनुसार सर्वत्र ही कोमल कर दिया गया है।

शब्दालंकार

शब्दालंकार भाषा का प्रधान अंग होता है। पंत जी ने अनुप्रास का प्रयोग अपनी चित्रमयी भाषा में बहुतायत से किया है। श्लेष, पुनरूक्ति, यमक का भी चमत्कार स्थान - स्थान पर मिलता है। इन पंक्तियों में पंत जी ने श्लेष का दुहरा प्रयोग किया है -

दीनता के ही प्रकम्पित पात्र में
दान बढ़कर छलकता है प्रीति से।[1]

पंत जी ने कवि - श्री की श्रृंगार साधना में अनुप्रास का कौशल दिखाया है। कविता की श्रृंगार - साधना में अनुप्रास का वही स्थान है, जो रमणी की वसन - भूषा में नूपुरों का। कविता के प्रत्येक पद - न्यास पर अनुप्रास की झनकार रसज्ञों के श्रुतिपट में मधु घोल देती है -

वन - वन उपवन
छाया उन्मन-उन्मन गुंजन
नव वय के अलियों का गुंजन।[2]

ध्वनि-चित्र

पंत जी ने अपने गीति - नाट्यों में ध्वनि चित्र का प्रयोग किया है। गीति नाट्य में परिवेश - निर्माण के निमित्त ध्वनि-चित्रों का विशेष महत्व होता है। रेडियो के लिये लिखे गये गीतिनाट्यों में ध्वनि-चित्रों की सहायता से परिवेश निर्माण एवं वातावरण इफेक्ट को सजीवता मिलती है। ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा उत्तेजनात्मक ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं जो कि मूलतः संवेगों पर चोट करती हैं। चाक्षुष बिम्ब एवं ध्वन्यात्मक चित्रों के माध्यम से गीतिनाट्य में सूक्ष्म ऐन्द्रिय - बोध किया जाता है।

'ज्योत्सना' में पंत जी ने अनेक स्थान पर ध्वनि प्रयोग किया है। पवन की ध्वनि से इन पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त किया है -

---

१. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. ६३
२. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. ६३

सर सर मर मर झन् झन् सन् सन्-
गाता कभी गरजता भीषण
वन - वन उपवन,
पवन, प्रभंजन![1]

इसी प्रकार झींगुर, उलूक कुररी आदि की ध्वनि को `ज्योत्स्ना' में पंत जी ने स्थान दिया है।

संक्षेप में, पंतजी की भाषा हिन्दी के परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। उसमें हिन्दी की समस्त शक्तियों का विकास है। `युगान्त' का प्रत्येक पद चुस्त, गठित और सशक्त है। पंत जी की गद्य - भाषा की रचनाएं भी परिपुष्ट और सबल है। `ज्योत्स्ना' में पवन का अभिभाषण इसको स्पष्ट करता है - इस युग के मनोजगत में सर्वत्र ऊहापोह ओर क्रान्ति मची है। एक और धर्मांधता, अंध - विश्वास और जीर्ण रूढियों से संग्राम चल रहा है, दूसरी ओर वैभव और शक्ति का मोह मनुष्य की छाती को लोह - श्रृंखला की तरह जकड़े हुए है - मानव सभ्यता का अर्थवाद की दृष्टि से ऐतिहासिक तत्त्वालोचन करने पर समस्त प्राचीन आदर्शों, विचारों, संस्कारों, नैतिक नियमों एवं आचार-व्यवहारों के प्रति विश्वास उठ गया है। मनुष्य मनुष्य न रहकर एक ओर निरंकुश धनपति, दूसरी ओर आर्त श्रमजीवी बन गया है।[2]

पंत जी काव्य के पंडित है - उन्होंने भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्य का अध्ययन और मनन किया है। इसी कारण उनकी भाषा में जगह-जगह रुचिर प्रसंगों का पुट है, जो भाषा की सौन्दर्य - श्री को सम्बधित करता है। पंत जी की भाषा का प्रसंग-गर्भत्व उसकी प्रौढ़ता का परिचायक है। उसमें धारा - प्रवाह तो अपूर्व है ही, सर्वत्र ही एक अपूर्व गति और वेग भी है जो मन को बरबस अपने साथ खींच ले जाता है -

पर्वत से लघु धूलि धूलि से
पर्वत बन पल में साकार।
काल-चक्र से चिढ़ते गिरते
पल में जलधर फिर जलधार।[3]

---

१. सुमित्रानंदन पंत - ज्योत्सना पृ. १६
२. सुमित्रानंदन पंत - ज्योत्सना पृ. ४०
३. डा. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पंत पृ. ६५

पंत जी की भाषा की गति सदैव उनके भावों की गति के अनुसार चलती है - बादल की भाषा में धुआँधार अप्रतिहत वेग है, वीचि-विलास में कहीं चपलता और कहीं सरकने का आभास है। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर उड़ते हुए चित्र दिखाकर पंत जी ने इस सिनेमा-युग के प्रतिनिधित्व का परिचय दिया है।

पंत जी के गीतिनाट्यों में पात्र विधान

दशरुपककार ने नाट्य - विवेचन में नेता या नायक को दो रूपों में व्यवहृद किया है। एक तो नाटक के मुख्य पात्र के अर्थ में और दूसरा सामान्य रूप में पात्रों के संदर्भ में। पहले अर्थ मे ं धीरोदत्त, धीर प्रशान्त, धीर ललित और धीरोद्धत चार प्रकार के नायक बताये गये हैं। यह अवलोकनीय है कि सभी प्रकार के नायकों के पहिले `धीर' शब्द को विशेषण के रूप में प्रयोग किया गया है। `धीर' का अर्थ है - स्वाभाविक - बोध - सम्पन्न। सामान्य नायक के विषय में दशरुपककार मौन है। किन्तु वर्तमान युग में जब `सेन वो' कथावस्तु में `मीलू' का अर्थ जन-भावना के क्रिया कलाप से करते है तो पात्र भी उसी के अनुरूप जन सामान्य ही होना चाहिये। संस्कृत परम्परा सो नेता (नायक) के गुणों के विषय में घनञ्जय का मत है -

नेता विनीतो मधुरस्वामी दक्षः प्रियंवदः
रक्तलोकः शुचिर्वाग्यी रूढ़ वेशः स्थिरो युवा ।१।
बुद्ध युत्साहस्मृतिप्रज्ञा कलामान समन्वितः
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।२। - [१]

किन्तु ज़ैसे जैसे समाज, शास्त्र और समालोचना के मानदण्ड बदलते गये, वैसे वैसे रचना-धर्मिता में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। पाश्चात्य शास्त्रकारों ने सौन्दर्य के प्रतिमानों की व्याख्या नये सन्दर्भो के क्रोशे के अनुकरण के आधार पर अभिव्यंजना की प्रमुखता में की या कि टी. एस. इलियट के विचारों ने बदलते हुये समाज की समस्याओं को गीति-नाट्य में जाना समझा उसी का प्रभाव हिन्दी गीति नाट्यकारों पर पड़ा है।

गीति नाट्य की कथावस्तु मे भावात्मकता में आधिक्य के कारण घटनाक्रम में `द्वन्द्व' और `संघर्ष' का भी विशेष महत्व है। **एलिड्रिस निकॉल** का मानना है कि प्रत्येक नाटक की उत्पत्ति अन्ततोगत्वा द्वन्द्व से ही होती है। [२] **रेनाल्ड पीकॉक**

---

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी - नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा - द्वितीय प्रकाश

2. A Nicoll - The Theroy of Drama - All drama arises out of conflict ..... conflict is the primary force in all drama.

इससे भिन्न मत रखते हुये `आकस्मिकता' और `तनाव' के माध्यम में ही नाटकीयता का बोध कर पाते हैं।[१] आकस्मिकता, तनाव और द्वन्द्व का सम्बन्ध दर्शक की जिज्ञासा उत्तेजना से है। सम्पूर्ण विषय तत्व से ध्वनित `संकेत' (Suggestion) पर आधारित उत्तेजना पैदा करने की शक्ति जिस रचना में जितनी अधिक होगी, सफल नाटकीय मात्रा भी उसी में विशेष रूप से देखने को मिलेगी।[२] वे क्रियायें जो दुरुह एवं `तनाव-प्रद' हों, वे कथोपकथन, जो व्यक्तियों के मन की दुविधा एवं भ्रम की स्थिति के परिचायक हों, वे अनुभूतियों, जो आकांक्षा एवं विरति के संघर्ष से उद्‌भूत हों, अथवा वे आकस्मिकतायें जो किसी नयी चीज का रहस्योद्‌घाटन खोज, स्थिति परिवर्तन अथवा विरोधी प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण करते हों नाटकीयता के उपकरण के रुप में चित्रित मिलते है।[३]

गीतिनाट्य में चरित्र चित्रण अधिक कुशलता की मांग करता है। नाटक में चरित्र- चित्रण पात्र-सृष्टि से सम्बन्धित है अतः यह साहित्य में बहुत व्यापक है। इसमें संवाद, शैली, उद्देश्य आदि भी समाहित रहते है। कथानक के सौन्दर्य को पात्र रचना ही प्राणवान बनाती है। कथानक की पात्र-विहीन कल्पना निरर्थक है और इसी प्रकार कथानक के बिना चरित्र रचना का कोई अर्थ नहीं है। व्यक्तित्व जो प्रत्येक चरित्र का मूलाधार है, घटनाओं के घात प्रतिघात से ही विकसित होता है। गीतिनाट्य में कथानक के सौन्दर्य का महत्व इसीलिये, चरित्रसृष्टि की सफलता में निहित है। परन्तु गीति नाट्य में अन्य नाटकों की भांति, बाह्य संघर्ष की अपेक्षा अन्तर्संघर्ष अपेक्षाकृत अधिक है अतः समस्त व्यक्तित्व मात्र भाव - द्वन्द्व के चित्रण पर निर्भर करता है। गीति नाट्य में भावात्मकता के कारण और अन्तःसंघर्ष के चित्रण के कारण पात्रों की संख्या भी कम ही होती है।

गीति नाट्य में पात्र सर्जना का अपना महत्व है। ये पात्र दैनिक जीवन के पात्रों से भिन्न रुप में अपनाये जाते हैं। एवरक्रॉम्बी चरित्र गठन में सरलीकरण और अतिरंजना की सलाह देता है जिससे उसके पात्र अपने संवादों और क्रिया कलापों में जीवन की वास्तविक घटनाओं की अपेक्षा अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं।[४] ऐसे पात्र जीवन की जटिलताओं से बाहर आकर सरलीकृत होकर

---

1. Ronold Peacock-The art of Drama. Page 160. ``It is commonly held that conflict makes drama, but surprise and particularly tension are the truer symtoms."
२. कृष्ण सिंहल - हिन्दी गीतिनाट्य पृ. ४३
३. कृष्ण सिंहल - हिन्दी गीतिनाट्य पृ. ४३
४. एयरक्राँम्बी - क्रिटिकल ऐसेज पृ. २५४

स्वाभाविक मूल वृत्ति वाले बन जाते हैं। अतिरंजन से तात्पर्य उस भाव से है जहाँ नाट्यकार अपने पात्र में प्रेक्षक का ध्यान केन्द्रित करना चाहता है। अतः सरलीकरण और अतिरंजन से ये पात्र संवेदनशील और प्रभावकारी हो जाते है। वास्तविक जीवन में ये दोनों बाते - सरलीकरण और अतिरंजन - नहीं रहती। गीति-नाट्यकार बाह्य जीवन-जटिलताओं को अपने पात्रों पर से उतार फैंकता है। इस स्वाभाविकता के कारण ही वे गीत-शैली में अपने भावों- विचारों को अभिव्यक्त कर पाते हैं।

गीति नाट्यकार को अपनी सफल उपलब्धि के लिये जीवन के अन्तरंग का व्यापक अनुभव, सूक्ष्म-पर्यवेक्षण शक्ति, मनोविज्ञान और मानव जीवन का गहन अध्येता होना चाहिये। पात्र की तीव्रतम अभिव्यक्ति के लिये उसकी वाणी और मात्रा दोनों ही स्वाभाविक होना चाहिये क्योंकि पात्र स्वयं ही महत्वपूर्ण है, उसके कार्य व्यापार नहीं। पार्कर का भी मत है कि विचार और भावनाओं को नाटकीय होने के लिये पात्रों की प्रतिकृति होना चाहिये जो स्वाभाविक रुप से उनके क्रिया कलापों का सिद्धि को प्रमाणित करते हैं।[1] पंत जी के गीतिनाट्यों के पात्रों में यह स्पष्ट गोचर होता है। यह अभिव्यक्ति कविता में गद्य की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत की जा सकती है। अन्ततः अभिव्यक्ति को कलात्मक ढंग से संगीत मय शब्दावली, ध्वनिसंकेतों और प्रतीक - बिम्ब के द्वारा ही किया जा सकता है जो सब गीति मय ही होता है। इसीलिये गीतिनाट्य में पोइटिक स्पीच- गेय संवाद - अधिक प्रभावपूर्ण होते हैं क्योंकि जब हम उत्तेजित होते है तो विरल भाषा का ही प्रयोग करते है। जीवन के कतिपय क्षण ऐसे होते है जब हम गा गाकर ही तृप्त होते हैं।

रोनाल्ड पीकॉक का मानना है कि मनोविज्ञान भी इसे प्रमाणित करता है कि तीव्रतम आवेगों के क्षण में हम अतिशयोक्ति पूर्ण काव्य भाषा बोलने लगते हैं।[2] इसी भाव को इलियट ने भी इन्हीं तीव्रतम उत्तेजित अवस्था को कविता की स्वाभाविक भाषा कहा है।[3] पात्र का चित्रण कथोपकथन द्वारा अभिव्यक्त होता है क्योंकि नाटकीय कथोपकथन का प्रभाव उसकी शैली और लय द्वारा अचेतन मन पर पड़ना चाहिये।[4]

पंतजी के गीतिनाट्य के पात्र ही स्वाभाविक और सामान्य है जिनके कोई

---

१. एच. जी. बार्कर - ऑन पोएट्री एण्ड ड्रामा पृ. ३९
२. रेनाल्ड पीकॉक - दी आर्ट आफ ड्रामा पृ. २२३
३. टी. एस. इलियट - सलेक्टेड प्रोज़ - पृ. ७०
४. टी. एस. इलियट - सलेक्टेड प्रोज़ - पृ. ६९

नाम नहीं है अपितु वे किसी वातावरण विशेष की ओर संकेत करते हैं। स्वर्दूत, स्वर्दूती, देव, देवी, कवि-सौवर्ण और स्त्री - पुरुष स्वर - ये छह सात पात्र सौवर्ण गीतिनाट्य में अपने परिवेश से ही काव्यात्मक सौन्दर्य प्रस्तुत करते हैं। किन्तु कविपंत ने इस गीति नाट्य में एक कान्तदृट्य और एक बुद्धिजीवी पात्रों को भी मुख्य नाट्य में प्रस्तुत किया है जबकि पात्र सूची में ये अवलोक्य नहीं है। सम्भवतः ये कवि की ओर इंगित करते हैं? इस नाटक के अन्त में समवेत गान भी है। समवेत गान (कोरस) एक पात्र की भांति गीतिनाट्य में कार्य करते हैं। शेक्सपीयर के नाटकों में तो `कोरस' एक महत्वपूर्ण पात्र संगति है। `स्वप्न और सत्य' में कलाकार, दो मित्र और छाया चेतनायें ही प्रतीकात्मक पात्र है। कलाकार के लम्बे लम्बे एकल संवाद इस गीति नाट्य में काव्यात्मक चेतना की सृष्टि करते हैं। अन्त में कवि के निर्देश के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकार कोई स्वप्न देख रहा था और वह स्वप्न आज के सत्य को यथातथ्य अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस गीति नाट्य में कल्पना का अद्‌भुत प्रयोग है। `दिग्विजय' गीतिनाट्य धरती से चन्द्रमा के अभियान की गीतात्मक अभिव्यक्ति है। इसमें भी मरूत, अप्सरा, खेचर, नीलध्वनि, दिशा स्वर, भू स्वर सभी इतर - जगत की कल्पना से अभिसिंचित हैं। यह गीतिनाट्य कुल १२ पृष्टों का है जिसमें मात्र दो गीत है। नील ध्वनि और खेचर प्रतीकात्मक पात्र है। खेचर चन्द्रतल पर विचरण करनेवाला पहला भू-प्राणी यूरी गागरिन का स्वरुप है ।`नील ध्वनि' कवि की कल्पना का आकाशभाषित है। यह गीति नाट्य छोटा होते हुये भी अधिक प्रभावशाली है।

`रजत शिखर' में छः गीति नाट्य संग्रहीत हैं। इन नाटकों में भी पात्रों के नाम नहीं हैं वे समाज के प्रतिनिधि हैं जैसे राजनीतिज्ञ, मनोवैज्ञानिक, विस्थापित। स्त्री-पुरुष, युवती आदि पात्र भी मानवी प्रतिनिधि है। अतः पात्र सजृन से मंच-फलक की व्यापकता स्वतः सिद्ध है इस गीति नाट्य में उर्वशी के पुरुरवा-उर्वशी-संवाद की भाँति लंबे लंबे सम्भाषण हैं। इस गीति नाट्य में भी कवि ने - पात्र सूची के भिन्न `सुखव्रत' पात्र को बीच में प्रस्तुत किया है। सम्भवतः यह कवि की काव्यात्मक तीव्र अनुभूति का परिणाम हो। `फूलों का देश' गीतिनाट्य में भी कलाकार, वैज्ञानिक विद्रोही जन आदि पात्र हैं। इसमें भी `कवि' पात्र को कलाकार के ही एक रुप में अतिरिक्त पात्र की भांति प्रस्तुत किया है। जो पात्र सूची से मिला है । इस नाटक को भी समवेत गान से समाप्त किया गया है। `उत्तरशती' में तो सन् १९५१ को ही पात्र रूप में प्रस्तुत कर कवि ने इस वर्ष में

होने वाले घात-संघात को पात्र के नामकरण से स्पष्ट कर दिया है। `जनगण' पात्र और प्रारम्भ के समवेत गान से इस गीतिनाट्य पर रवीन्द्रनाथ टैगोर के `जन गण मन अधिनायक' राष्ट्रगीत की ध्वनि गुंजायमान हो उठती है।[१] `शुभ्रपुरुष' गीति नाट्य में महात्मा गांधी के जीवन चरित्र को स्त्री-पुरुष और जनगण पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह गीति नाट्य मात्र ११ पृष्ठों में स्तवन-समवेत गान से समाप्त होता है।

`विद्युत वसना' में भी पात्र - प्रतिनिधि स्वरुप है और गीतिनाट्य भी वैदिक मंत्र `असतो मा सद्‌गमय .....' की प्रतिध्वनि है। `शरद चेतना' कवि की कल्पना का अनूठा `षड्‌ऋृतु वर्णन' है। इसमें सभी ऋृतुयें पात्र हैं, वाचक और वाचिका कवि की कल्पना के ऐसे पात्र है जो ऋृतु - सौन्दर्य को प्रस्तावना के रुप में रखते है। सभी ऋृतुओं में शरद की शुभ्र वर्ण रजत कान्ति निर्मलता गंगा-सम-स्निग्धता में ही कवि का मन अधिक रमा है, कवि का मन्तवय है -

आती जाती ऋृतुएँ जग में
कट् जाती भू उर चंचल री
तुम शरद चेतना स्वर्गोज़्वल,
बरसाती नित जन मंगल ही।[२]

शिल्पी के गीति नाट्य भी इसी प्रकार प्रतिनिधि पात्रों-नाम विहीन–से रूपायित है। `शिल्पी' शीर्षक मात्र से किसी वर्ग विशेष का मान होता है। व्यक्ति विशेष का नही। `अप्सरा' भी ऐसी ही वर्ग प्रतिनिधित्व संज्ञा है।

पंत जी ने कुछ अदृष्य पात्र रक्खे हैं जिनके स्वर तो सुनाई देते हैं लेकिन पात्र नेपथ्य ध्यान से गीति नाट्य को अग्रसारित करता है। रेडियो रूपक के लिये इनकी उपयुक्ता असंदिग्ध है। भावात्मक पात्रों में भी वैचित्र्य है सन इक्यावन मात्र एक भावात्मक पात्र सृष्टि है जो एक भी है और अनेक भी।

पंत जी के गीति नाट्यों में पात्रों का चयन मानव जाति को प्रतिबिम्बित करने के लिये ही किया गया प्रतीत होता है। अतः इन गीति-नाट्यों का चित्र फलक भी व्यापक है। वैसे भी पंत जी विराट-कल्पना के कवि हैं अतः उनके वैचारिक क्षितिज को भी उसी के अनुरुप पात्रों की सृष्टि में देखा जाना चाहिये।

वातावरण और मंच विधान

पंत जी के सभी गीति नाट्यों में वातावरण सृजन की प्रक्रिया संगीत के

१. उत्तर शती - रजत शिखर पृ. ७९
२. शरद चेतना - रजत शिखर पृ. १५२

माध्यम से प्रस्तुत की गई है। अन्य नाटकों में मंच सज्जा द्वारा वातावरण का आभास कराया जाता है, प्राचीन संस्कृत नाटकों में नट-नटी द्वारा नाटक की उद्घोषणा करने के पूर्व उनके वार्तालाप और पूर्वरंग, नांदी पाठ द्वारा यही अभिव्यक्ति की जाती रही है किन्तु, पंत जी के गीति नाट्य मुख्य रुप से काव्य-रुपक है जो रेडियो से प्रसारण किये जाने हेतु लिखे गये थे और इन सभी गीतिनाट्यों की अवधि १९५० से १९५४ तक ही है - कथान कभी, विचार और भावनायें भी इसी कालखण्ड को अभिव्यक्त करती हैं। अतः इन नाटकों में हमें वाद्य संगीत को भी विषयानुरुपता के परिप्रेक्ष्य में देखना अधिक संगत होगा।

'रजत शिखर' नाटक के प्रारम्भ में ही 'प्राणोन्मादन वाद्य संगीत' ध्वनि से 'पुरुष स्वर' द्वारा घाटी का सौन्दर्य चित्रण करती है ठीक ऐसा वातावरण प्रस्तुत करती हुई जैसे शब्दों में चित्रात्मकता और एक साथ ऐसे बिम्बों का उभारना संभव हो जाता है जिनके सौन्दर्य में गीतिनाट्य आगे बढ़ता है। बीच - बीच में निर्देशन के स्थान पर भी 'आत्मोन्नयन वाद्य संगीत' वाद्य 'आकाश गीत' 'तानपूरे के स्वर', मनमोहक वाद्य संगीत, करूण द्विविधा सूचक, दूर से प्रवाहित, आदि वाद्य संगीत ध्वनियाँ प्रारम्भ के तीन चार पृष्ठों तक चलती रहती हैं जिनसे स्पष्टतः ही वातावरण का निर्माण होता है। तदुपरान्त नाट्य के पात्र अपना भाव सम्प्रेषण, विचार सम्प्रेषण आदि कथोपकथन गीति लय में करते रहते हैं। इसी प्रकार 'फूलों का देश' में 'नवबसंत सूचक वाद्य संगीत' स्वप्न वाहक, गम्भीर प्रसन्न, या कि हर्ष वाद्य संगीत की प्रस्तुति प्रारंभिक पृष्ठों में अंकित है। बीच-बीच में 'विवर्तन' 'उत्तेजना द्योतक' या कि 'विप्लव सूचक' वाद्य संगीत ध्वनियां भी है जो पट परिवर्तन जैसा वातावरण प्रस्तुत करती है।

'उत्तरशती' गीति नाट्य में लगभग प्रत्येक पृष्ठ पर वाद्य संगीत की ध्वनियों का निर्देशन है जिसका मूल कारण पात्रों का न होना है। उनके स्थान पर 'पात्र-स्वर' है। यह स्वर और संगीत का नाटक है जिसमें सन् १९५१ जैसा भाव एक पात्र के रुप में प्रस्तुत है। इसे हम गीति नाट्य संगीतिका कह सकते हैं जैसा कि जानकी वल्लभ शास्त्री ने अपने गीति नाट्यों को संगीतिका कहा है । शुभ्र पुरुष महात्मा गांधी जी के विराट व्यक्तित्व, अहिंसा सत्य और प्रेम के तत्व दर्शन की मीमांसा है जिसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर का गीत 'जन गण मन अधिनायक जय हे' जो गणतंत्र भारत का राष्ट्रीय गीत है का भी स्वर है।[१] इस गीति नाट्य में भी

---

१. शुभ्र पुरुष - रजतशिखर पृ. ११५

पात्रों के संवाद किसी न किसी भाव संगीतात्मक ध्वनि है। `विद्युत वसना' और `शरद चेतना में भी पात्रों के कथोपकथन किसी न किसी भाव की संगीतात्मक ध्वनियों से ही सम्प्रेषित है। `शरद चेतना' ऋतुओं का काल्पनिक गीतात्मक चित्रण है जिसमें शरद ऋतु की श्रेष्ठता वर्णित है।

सौवर्ण के गीति नाट्य संग्रह के तीनों गीति नाट्यों के प्रारम्भ में गीतों द्वारा हर्ष, विषाद आदि भावों का चित्रण कर कथानक के अनुरुप वाद्यसंगीत ध्वनियां दी गई है। लगभग सभी बारह गीति नाट्यों में संगीत ध्वनियों का विधान एक ओर वातावरण की निर्मिति करता है तो दूसरी ओर मानसिक मंच की रुप रचना भी। `सन् इक्यावन' जैसे पात्र की भाव-कल्पना करना यद्यपि कठिन है तथापि भिन्न भिन्न श्रोता-पाठकों में इस पात्र की अनूभूति करना अलग अलग ही होगी। `सन् इक्यावन' कहीं पर जन-समुदाय द्योतक होगा तो किसी अन्य की कल्पना में एक प्रतिनिधि स्वरुप। वातावरण और मंच विधान दोनों ही दृष्टियों से इसे देखे तो समस्त नाटक साहित्यिक रुप से सम्पन्न, शिक्षित और काव्य अभिरुचि वाले अध्येताओं को आकर्षित करते हैं और साहित्य के विद्यार्थी तो इन गीति नाट्यों से सम्भवतः अपरिचित ही हों। रेडियो रुपक होने के कारण उनमें व्यापक जन-आकर्षण का कोई भी प्रयास प्रतीत नहीं होता। हालाँकि कवि ने मंच निर्देश दिये हैं परन्तु वे मानसिक मंच के लिये पर्याप्त प्रतीत नहीं होते।

गीति विधान

पंत जी ने अपने गीति नाट्यों को काव्य रुपक कहा है। यह कहना कठिन है कि कौन सा गीति नाट्य काव्य रुपक है और कौन सा काव्य रुपक गीति नाट्य। काव्य रुपक और गीति नाट्य में वैसे भी कोई विभाजक रेखा नहीं खीची जा सकती। गीति नाट्य, काव्य रुपक, रुपक काव्य या कि संगीतिकाएं आदि अनेक नाम इस विशिष्ट शैली को दिये गये हैं और इनकी पृथक पृथक परिभाषा करना कठिन भी है। तथापि, जहाँ तक सम्वाद, काव्य-परक अनुभूति की तीव्रता, उत्तेजना और आत्माभिव्यक्ति का बिम्बात्मक सौन्दर्य और कल्पना - प्रसूत सौन्दर्य है हम इन्हें गीति नाट्य के अधिक निकट पाते है।

बड़े मंचीय नाटकों और गीति नाट्यो में मूलभूत अन्तर है मंचीय नाटक चाक्षुष होने के साथ साथ इन्द्रिय ज्ञान को सीधे प्रभावित करते हैं जब कि गीति नाट्य की काव्यात्मक ध्वनियां हमारे स्नायुमंडल को प्रभावित करती रहती है।

बिना अर्थ की अनुभूति के भी हम तान स्वर गति आरोह अवरोह के निरन्तर प्रवाह में अवगाहित होते रहते हैं। पंत जी ने प्रायः प्रत्येक गीति नाट्य के किसी न किसी गीति-ध्वनि से प्रारम्भ किया है और स्वतंत्र गीत के रुप में भी नाटकों में भी कुछ गीत आ गये हैं। स्वतंत्र गीतों की सत्ता आत्माचेतना परक है जिसे एक कवि की भी अनूभूति कह सकते हैं जो पात्रों के रुप में चित्रित की गयी है किन्तु वह एकल ध्वनि भी हमारे स्थायी भावों को उद्दीप्त कर उत्तेजित करने के लिये पर्याप्त है।

समवेत गान पाश्चात्य पद्धति कही जाती है। शेक्सपीयर मारलो से लेकर शैली के सेंसी गीति नाट्य तक कोरस को पात्र के रुप में प्रवेश ओर प्रस्थान के रुप में चित्रित किया गया है। पंत जी के नाट्यों में समवेत गान मंच के पात्रों द्वारा ही भावात्मक चेतना को उत्तेजना प्रदान करने हेतु और कथानक को गति प्रदान करने हेतु किया गया है। अतः यह अधिक स्वाभाविक और मौलिक है। ये काव्य रुपक कृतियाँ रजत शिखर संग्रह के गीति नाट्यों में छन्द का विधान भी कर सकी है। कवि पंत ने स्वंय 'विज्ञप्ति' शीर्षक आमुख में लिखा है -

> इन रुपकों में चौबीस मात्रा का अतुकान्त रोला छन्द प्रयुक्त हुआ है, जिसमें नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिये यति का क्रम गति के अनुरुप ही बदल दिया गया है एवं तेरह ग्यारह के स्थान पर दो बारह अथवा तीन आठ मात्रा के टुकड़ो पर रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है । पद के अन्त में दो गुरु मात्राओं के स्थान पर लघु गुरु या दो लघु मात्राओं का प्रयोग कथोपकथन की धारावाहिकता के लिये अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है।

उपयुक्त कथन से स्वतः सिद्ध है कि पंत जी को छन्द का विपुल ज्ञान है तथापि मन्तव्य की गीतात्मकता बनाये रखने के लिये कवि पंत ने कवि-स्वतंत्रता के अनुरुप यति और गति का क्रम परिवर्तित कर दिया है। कवि पंत ने इन गीत नाट्यों में अन्त्यानुप्रास को आवश्यक नहीं माना है। वैसे भी भिन्न तुकान्त या अतुकान्त कविता का जन्म तो छायावाद काल में ही कवित्रयी पंत-प्रसाद-निराला द्वारा प्रयुक्त है। इसको प्रारम्भ करने का श्रेय 'निराला जी' को ही जाता है तथापि यह अतुकान्त गीत प्रक्रिया छन्द में भले ही न हो किन्तु इसकी रागात्मक लय को कभी नकारा नहीं पाया अपितु इस रागात्मक लय के स्थापन का ही

कार्य किया गया है। स्वयं पंत जी ने का कथन है कि -

`पद्य-नाद्य में लय की गति को अक्षुण्ण रखने के
लिये यह आवश्यक हो जाता है कि पढते समय
प्रत्येक चरण के अन्त में यथेष्ट विराम दिया जाय।'[१]

गीति नाट्य में कथोपकथन गीतों के ही माध्यम से होते हैं। काव्य में कथोपकथन का प्रकार भिन्न है। आचार्य केशवदास ने एक ही पंक्ति में प्रश्नोत्तर की नाटकीयता का भाव- प्रेषण किया था जिसे आधुनिक युग में मैथिलीशरण गुप्त में अपने काव्यों में विशेषकर साकेत में अपनाया कर गीति नाट्य में यह स्वतंत्रता अपेक्षाकृत नहीं है अन्यथा गीतात्मकता का अभाव खटकने लगेगा। अतः गीतात्मकता की गेयता जो उसकी आत्मा है उसका होना एक आवश्यक तत्व है।

संगीतात्मकता / वाद्य-विधान

पंत जी के गीति नाट्य संगीतात्मकता से परिपूर्ण है। रजत शिखर की विज्ञप्ति में उन्होंने उक्त संकलन के सभी गीति नाट्यों के छन्द विधान में स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रायः प्रत्येक गीत नाट्य. अनेक संगीत ध्वनियों में अभिव्यक्त है। वस्तुतः ये संगीत ध्वनियाँ नहीं हैं अपितु भावाभिव्यक्ति कारण संगीत ध्वनियां हैं। ये भावाभिव्यक्तियाँ प्राणोन्मादन, आत्मोन्नयन, आकाशगीत, मनमोहक, करुण, द्विविधा सूचक, सुदूर प्रवाह, नव बसंत सूचक, स्वप्नवाहक, गंभीर-प्रसन्न, हर्ष विवर्तन, उत्तेजना सूचक, विप्लव सूचक, प्रयाण, आशाप्रद, द्रुत-तीव्र, घंटियों की हर्षध्वनि, मंद, प्रगतिसूचक, विजय, मेघ घोष, रण, युग परिवर्तन, मंगल, उत्सव बोध, अभिवादन, कालदायन, आवाहन, उद्‌बोधन, उत्तेजना, ॠतु विषयक गीत, डमरु - ध्वनि आदि भाव व्यंजनाओं के साथ तानपूरे का स्वर और समवेत गान आदि ने नाटकों को संगीतमय बना दिया है।[२] इतने पर भी निर्देशन में ताल-लय, आदि तथा गीत का पुकार दादरा/ठुमरी/ विलावलि/विभावरी/असावरी/गौरी आदि राग रागनियों का उल्लेख भी किया जा सकता है जो रेडियो के लिये महत्वहीन होते हुये पाठक के लिये लयबद्धता को सरल करने में होते ! परन्तु, इसका अभाव प्रभावकारी नहीं होने पाता। सहृदय संगीत में रुचि रखने वाले श्रोता और पाठक मात्र श्रवण से ही राग रागनियों को पहचान लेते हैं किन्तु पढ़ते समय उनके उल्लेख होने से संगीत रुचि सम्पन्न पाठक उन्हें उसी में गुनगुनाने लगता है।

---

१. रजत शिखर - विज्ञप्ति पृष्ठ

२. रजत शिखर के समस्त गीति नाट्य

जहाँ तक वाद्ययंत्रो का प्रश्न है कवि ने मात्र तानपूरे के स्वरों का उल्लेख किया है। रेडियो निमित्त लिखे गये और प्रसारित किये गये गीति - नाट्यों में अनेक वाद्य यंत्र बजते हैं। रण भेरी की ध्वनि के लिये विशिष्ट वाद्य यंत्र है। `मात्र रणमेरी वाद्य संगीत' का निर्देशन अपूर्ण सा प्रतीत होता है। बाँसुरी (प्रसन्नता वादन) वायलिन (करुणा जनक) वाद्य यंत्र का नामोल्लेख से तुरंत सहजता और सरलता उत्पन्न होती। `मंगल वाद्य' में ढोलक, मंजीरे, तवला, हारमोनियम आदि वाद्य है तथापि इनका उल्लेख भी किया जाता तो वाद्य-वर्गीकरण सरल व सहज होता। पुनरावृत्ति या अनुकरण करते समय भी उन्हीं वाद्य यंत्रों के प्रयोग से भ्राँतियों से बचा जा सकता है। स्तवन वाद्य मंद गंभीर वाद्य यंत्र, उद्‌बोधन वाद्य अभिवादन वाद्य आदि गुणों पर आधारित वाद्य है। जिनका नामोल्लेख नहीं किया गया है। कवि ने सम्भवतः मंचन को ध्यान में रख कर वाद्य-नाम अभिनेताओं और निर्देशकों पर ही छोड़ दिये हैं। वे सुरुचि के अनुसार सहज सुलभ वाद्य-यंत्रो का प्रयोग कर सकते हैं। `शरद चेतना' में तो `वाद्य संगीत' का प्रभाव/गुण आदि कुछ भी नहीं बताये गये हैं। निर्देशक स्वयं उपलब्ध वाद्य - यंत्रो का प्रयोग कर सकते है - इसमें पर्याप्त छूट है। वाद्य का संबंध ऋृतुओं से भी है किन्तु पंत जी ने मात्र `वाद्य परिवर्तन' जैसा संकेत भी ऋृतुओं के गीतों में नहीं किया। प्रत्येक ऋृतु के कतिपय निर्दिष्ट वाद्य यंत्र भी है। ऋतु गीतों में संगीत को दृष्टि में रखकर वाद्य नामोल्लेख किया जा सकता था। कहीं कहीं पर कवि ने वाद्य संगीत के स्थान पर `वादित्र संगीत' शब्दों का भी प्रयोग किया है। साथ ही ध्वनि के लिये कवि ने स्वर, रव, और शब्द का प्रयोग भी किया है। स्वप्न और सत्य गीति नाट्य में मंच निर्देशन पर्याप्त यदि नहीं, किन्तु इतना अवश्य है कि पात्र उसी के अनुरुप अभिनय कर सकते हैं। अतः मंचक स्वरुप इस गीतिनाट्य में प्राप्त है। जहाँ गीत - विधान है तो सचमुच वे गीत ऐसे हैं कि यदि उन्हें नाट्य से निकाल भी दिया जाय तो उनकी स्वतंत्र गीत सत्ता निश्चय ही बनी रह सकती है। `स्वप्न और सत्य' का प्रारम्भ ही `मर्मर भरी मनाली' गीत की टेक से प्रारम्भ होता है। प्रथम दृश्य में ऐसा केवल एक ही गीत है - इसी दृश्य के स्वप्न दृश्य का आरम्भ भी `स्वागत अमरपुरी में आओ' गीत से प्रारम्भ हुआ है और इस स्वप्न दृश्य एक के अन्त में सहगान का एक गीत ``क्या यह नम के रीते सपने'' सन् १९५२ में लिखा गया था। `स्वप्न दृश्य दो' `अन्धकार भी तो प्रकाश है।' गीत से प्रारम्भ होता है जिसके सात अन्तराओं (छन्दों) में छायावादी स्वर गूँजता प्रतीत होता है।[१] जन गीत उत्सव गीत और चेतना का गीत भी

१. `स्वप्न और सत्य' (सौवर्ण संग्रह) पृ. ८०

छायावादी स्वरुप, स्वर - लहर और गेयता का परित्याग नहीं कर सके। वस्तुतः यह तीन दृश्यों का गीति नाट्य है परन्तु कवि ने एक ही दृश्य के अन्तर्गत स्वप्न दृश्यों को समाहित कर दिया है। यह नाटक मात्र एक दृश्य के अन्तर्गत दो स्वप्नों के यथार्थ से बुना गया है।

'दिग्विजय' गीति-नाट्य का प्रारम्भ और अन्त दोनों गीतों से ही अभिव्यक्त किए गए हैं। प्रारम्भ के गीत में आव्हान है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, वही नियामक, नेवेतक और संहारक भी है। मनुष्य उसी ईश्वर की प्रतिकृति है। प्रकृति के उपादान सूर्य-चन्द्र-विद्युत-व्योम सभी का आव्हान मानव जीवन के चैतन्य के लिये किया गया है। वर्तमान संदर्भो में भी वैज्ञानिक प्रयासों से चन्द्रतल पर मानव-गति, सेटेलाइट-फोन-सिस्टम से अन्तरिक्ष यात्री (खेचर) से निरन्तर धरती वासियों की बातचीत, वायुमंडल में भारहीन उड़ान आदि ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों को अभिव्यक्त करता हुआ दिग्विजय गीति नाट्य अपने स्वरुप में वर्तमान यथार्थवादी स्वर है। अंतिम गीत में पृथ्वी की अंतरिक्ष पर विजय का पर्व-उल्लास अभिव्यक्त है। यह धरा-स्वर्ग का आलिंगन है-यही रचना मंगल का पर्व है अभिनन्दन और अभिवन्दन है।

इस प्रकार कवि ने गीतों को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया है किन्तु जहाँ कही वाद्य यंत्रों का भावानात्मक प्रभाव सम्प्रेषण है वहां उन वाद्य यंत्रों का यथोचित नाम भी देना चाहिए था। गीतों को छायावादी वायवी-परिवेश प्रस्तुत करते हुये कवि यदि राग-रागानीबद्ध गीतों की प्रस्तुति करता तो निश्चय ही आकाशवाणी से प्रसारित इन गीतिनाट्यो का प्रचलन तो बढ़ता ही लोक - मानस में यह साहित्यिक विद्या प्रतिष्ठित भी होती।

पंतजी के गीतिनाट्यों में रसात्मक बोध

सुमित्रानन्दन पंत के गीति नाट्य वस्तु और शिल्प दोनो दृष्टियों से उत्कृष्ट कहे जा सकते हैं। इन गीति नाट्यो में यद्यपि पौराणिकता नही है और न ही परम्परा प्रचलित कथानकों का सहारा लिया गया है जैसा कि डब्ल्यू. वी. यीट्स की दृष्टि में उत्कृष्ट गीति नाट्यों की एक विशेषता है तथापि वर्तमान सन्दर्भो में नर-नारी के स्वरों में, कलाकारों की भावनाओं को समादर में, जन स्वर में, नेपथ्य ध्वनियों में अथवा वाद्य-संगीत स्वरों में कवि ने मानवीय संवेदना और वैज्ञानिक वैचारिकता को ही मुखर किया है। वस्तु के यथार्थ संयोजन में कविजनोचित वाणी को कहीं वार्तालाप और कहीं आत्मालाप से कवि ने जो भावनाएं उत्तेजित करने का प्रयास किया उससे पाठक/ श्रोता मंत्रमुग्ध सा उस

वातावरण में अपने अस्तित्व को विलीन करने लगता है कि वह भी स्वयं सन्दर्भित गीति नाट्य का अंग बन जाता है। यही रसात्मक बोध की प्रथम प्रक्रिया है।

पंत जी के गीति नाट्यों में प्रकृति सजग एवं सजीव प्रतीत होती है। उसी प्रकृति के रम्य वातावरण के अनुरुप ही कवि ने मनुष्य में उत्पन्न हुये सत् असत् की विवेचना की है। ``क्या बकते हो?[१]'' जैसे वाक्य भी काव्यात्मक नाटकीयता के बिम्बात्मक सौन्दर्य को प्रकट करते हैं। लगभग सभी नाटकों में विचारों का मंथन है। कवि का उद्देश्य है कि सामूहिकता व्यक्तिवादिता से ऊपर है, श्रेयस्कर है। परम्परा में जो मानवहित का सन्देश है उसे नाटकीयता से दर्शा कर कवि ने सौवर्ण नाटक को `विचारों के जीवन्त पात्र' रुप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्वर पात्र (एक स्वर, दूसरा स्वर, नारी स्वर आदि) के नाटकीय संवाद सचमुच श्रेष्ठ बन पड़े है यथा-चुप रहो, व्यंग्य मत करो, बंद करो, इसे चुप करो! इसे पकड़ लो, मत जाने दो! जैसे आदेश संवाद नाटक को जीवन्त कर देते हैं। स्वर्दूत और स्वर्दूती जैसे प्रतीक पात्र प्रकृति चित्रण में मानवीय प्रकृति को आरोपित कर एक नये सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती हैं। क्रान्त द्दष्टा नये समाज की रचना का आव्हान है किन्तु उसका उद्देश्य निर्भ्रान्त आत्मा का विकास करना ही है। क्योंकि मानवोत्थान के प्रतीक सौवर्ण में कवि ने मानव-आदर्श की उच्चस्थ कल्पना की है - कवि ने अभिव्यक्त किया है -

नवजीवन सौन्दर्य उग रहा जन धरणी में,
मनुष्यत्व की फसल उगलती हँसती भू रज
नव -मूल्यों की स्वर्णिम मंजरियों में भूषित।[२]

किन्तु कवि जीवन के घोर यथार्थ की उपेक्षा नहीं कर सका है। यथार्थ है निर्धनता से विकल - व्याकुल, क्षुधित-तृषित है प्रजा। यही जगती की वास्तविकता है -

शोषित कंकालों की भूखी चीत्कारों से
काँप रही है नग्न वास्तविकता जगती की ![३]

---

१. सौवर्ण पृ. २७
२. सौवर्ण पृ. ४८
३. सौवर्ण पृ. ६३

ऐसे आदर्श-यथार्थ की सृष्टि जिस किसी भी युग में रही है, मनमोहक रही। यथार्थ के चित्रण में कवि ने महानगरीय संस्कृति को भी चित्रित किया है जिसमें पूंजीवादी और श्रमवादी जन मानस की तुलना भी अभिव्यक्त हो रही है। प्रासादों और झुग्गी झोपड़ी की विषमता का दृश्य है -

``एक ओर प्रासाद खड़े है स्वर्ग विचुम्बित
चारों ओर असंख्य घिनौनी झाड़ फूँस की
बौनी झौपड़ियाँ है, पशुओं के विवरों सी।''[१]

और इससे उत्पन्न मानव - मन के अनेक घिनौने, आचार-विचार हीन अंधकार से भरे हुए चित्रण! इन सबके विरुद्ध उत्पन्न आक्रोश को हम चाहे जो नाम दें, वर्तमान युग में उसे रुसी साम्यवाद की ही देन कहा जायेगा। रूसी विचारधारा ने ही `लोक-साम्य' का विचार दिया है, यह निर्विवाद है, जिसने लगभग तीन चौथाई शताब्दी तक सारे विश्व को प्रभावित किया है।

एक ओर ये समस्त गीति नाट्य विचार-क्रान्ति के उद्घोषक है। इनमें घटनायें नहीं है किन्तु घटनाओं के विचार-कारण उपस्थित हैं। इन विचारों का निष्कर्ष अपने अधिकारों की मांग है जो मजदूर अपने मालिकों से निरन्तर करते रहते है। व्यक्तिवादी विचार से उठकर यह मांग ट्रेड यूनियनों जैसे संगठन का सहारा लेकर अपने अधिकारों के प्रति सजग है। सामाजिक क्रान्ति जिसकी परिणिति है, ऐसे संस्कारों में पले बढ़े मनुष्य अब विचार क्रान्ति के लिये भी उद्यत है। यद्यपि साम्यवादी रूस भी मात्र आर्थिक समानता के आधार पर मानव मन को बाँध कर नहीं रख सका और आत्म चेतना के अभाव में वह विखण्डित होकर ही रहा। इसी ओर कवि ने संकेत किया है कि मनुष्य को उस चेतना की खोज करना आवश्यक है जो मनुष्य को भौतिक जगत से ऊपर आत्म चिन्तन, आत्मावलोकन और आत्म-साम्य की ओर उन्मुख कर सके। `सर्वे भवन्तु सुखिनः' की चेतना ध्वनि इसी बिन्दु से विकसित हुई है।

कवि ने शिल्प-कौशल को दृष्टिगत रखते हुये यद्यपि मंच-विधान नहीं किया है जिसकी आवश्यकता भी नहीं थी तथापि मानसिक मंच पर उक्त भौतिक स्वरुपों की अवतारणा का आनन्दानुभव होता है। नाटकीयता की अभिवृद्धि कथन के वाक्यांशों की पुनरावृत्ति पर भी गई है। यथा -

१. सौवर्ण पृ. ६३

आओ देखो आंख खोलकर मनुज जगत को -
कैसा हाहाकार छा रहा आज वहां है -

और इसी पद की ध्वनि पुनः प्रस्तुत करते हुए कवि आंख मूंदने जैसे मुहावरे का प्रयोग करता है -

आंख मूंद कर सोचो, देखो मानव मन को
कैसा हाहाकार छा रहा आज वहां है।

इस पुनरावृत्ति से काव्य सौन्दर्य के साथ साथ नाटकीय सौन्दर्य भी बढ़ता है। यही नाटकीय सौन्दर्य काव्यात्मकता की शोभा है।

'रजत शिखर' के गीति नाट्य घटना-मिश्रित विचार, व्यक्तित्व प्रकाश और ऋतुविषयक चित्रण में व्याख्यायित है तथापि समग्र नाट्य साहित्य रसात्मक विचारों का संग्रह है। घटनाओं के बिना भी मात्र विचारों के विकास और विचार - संघर्ष से प्राकृतिक परिवेश में रसात्मकता उत्पन्न करना पंत जी की काव्य-कला विशेषतः गीतिनाट्य कला का मर्म है।

पंत जी के गीतिनाट्यों में प्रतीकात्मकता

प्रतीक गीति नाट्यों के प्राण होते हैं। सम्पूर्ण गीतात्मकता का मूर्त विधान प्रतीकों द्वारा ही सम्भव है। टी. एस. ईलियट, डब्ल्यू, बी. यीट्स, रेनाल्ड पीकॉक प्रभृति विद्वानों और नाट्य समीक्षकों ने प्रतीकों को गीतिनाट्य का आधार बताया है। जिनकी बिम्बात्मकता द्वारा की गई प्रस्तुति चाहे श्रव्य हो या दृश्य या पद्य बिना प्रभाव डाले नहीं रहती। पंत जी के गीति नाट्यों की यह विशेषता है कि उनके पात्र नाम धारी स्वरुप नहीं है अपितु प्रतीक है गुणाधारित या सामान्यीकृत!

सौवर्ण गीतिनाट्य में संग्रहीत तीनों गीति नाट्यों में सौवर्ण के पात्र स्वर्दूत, स्वर्दूती और स्त्री-पुरुष-स्वर ध्वनि आधारित है। ध्वनि के अनुमान से ही हम पुल्लिग अब स्त्रीलिंग का भेद कर पाते हैं। देव-देवी-कवि और सौवर्ण गुणाधारित प्रतीक व्यक्तित्व हैं। देव देवी धरती के पात्र नहीं है अतः उनकी केवल कल्पना

की गई है और यह सर्वमान्य है कि देव-देवी किसी भी मानवी दुर्बलता से परे देवलोक के पात्र है अतः गुरु -गम्भीर एवं आदर्श है।

विश्व संस्कृति का सम्मुच्चय एक दूसरा रुप हिमाद्रिश्रेणियों के प्रतीक में प्रस्तुत किया गया है। सौवर्ण प्रारम्भ में इसी विचार/भाव से प्रेरित है। यह प्रस्तुति एक दिक् विराट ब्रह्माण्ड को अभिव्यक्त करती है जहाँ अमर देवता विकास करते हैं। यह एक ऐतिहासिक विश्वास है कि सृष्टि का प्रारंभ ही हिम-लोक से हुआ है। कामायनीकार प्रसादजी ने भी कामायनी में सृष्टि का उद्गम ``हिमगिरि के उत्तङ्ग शिखर'' से ही माना है। विकसित समाज का स्वरुप जो हमारे समक्ष है वह भी राजनीति द्वारा विभाजित है कही पूंजीवादी व्यवस्था है कही उसके प्रतिरोध में समाजवादी-साम्यवादी रचना है। पश्चिम देशों की महत्वाकांक्षा की रचनों की नई नई बौद्धिक व्याख्यायें की गईं हैं। जो मानववाद का ऊँचे स्वर में प्रचार करती है किन्तु जिनमें मानवी संवेदनाओं का लेश मात्र समावेश नहीं है। जनतांत्रिक या लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और व्यवहार में बड़ा अन्तर है, उसी को स्वरुप देने के लिये कवि ने गीतिनाट्यों की रचना की है। कवि ने व्यक्तिवादी तंत्र से लोकतंत्र की यात्रा तक संसार में चल रहे कुचक्रपूर्ण सिद्धांतो के विरुद्ध सत्य अहिंसा की प्रतिस्थापना में ही संस्कृति के मानव-मूल्यों के विकास की कांक्षा की है। विकास के चरणों से चलकर औद्योगिक जगत की घुँआ उगलती चिमनियों ने विश्व शांति का संहार करने में कोई कोताही नहीं की है।

उद्योगपति अपनी पूँजी को श्रमिक के पसीने से कमाकर उसी श्रमिक को भूखा नंगा रहने पर, बीमारियों से जूझकर करने पर विवश कर देता है। इस वर्ग संघर्ष से मुक्ति पाने के लिये बुद्ध-कालीन पंचशील के सिद्धान्त का प्रचलन में समाज को परस्पर शान्ति पूर्ण रहने का आव्हान किया था परन्तु उसका भी हनन होता रहा है। वही मानव उद्धार का द्वार था। इस संघर्षशील द्वन्द्व से त्राण पाने के लिये `सौवर्ण' मानव मात्र को बहिर्जगत के स्थूल से हटकर अन्तर्जगत के सूक्ष्म की ओर प्रयास करने की संकेत देता है। यही दैन्य को लिये समर्थता की ओर ले जाने का प्रयास है।

`स्वप्न और सत्य' में पार्थिव जगत के स्थूल से अंतर्गत के सूक्ष्म को जानकर ईश्वरत्व की सत्ता की महत्ता पुनः वैदिक युग की स्मृति `एकोऽहं बहुस्याम्;' और `ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या' के दर्शन की ओर संकेत करती है जिसे कवि ने छाया-पात्रों के प्रतीक से अभिव्यक्त किया है। `दिग्विजय' के पात्रों

को भावपाचक बना दिया गया है। 'यूरी गागरिन' रुसी अन्तरिक्ष यात्री के लिये 'खेचर' शब्द का प्रयोग एक सशक्त प्रतीक है। धरती के परिवर्तन शील जगत से दिव्य जगत की कल्पना करना एक विराट को समेटने जैसा है। अनेक समस्याओं के दिव्य लोक का चित्रण प्रकृति के व्यापक-विराट को जानने वाले कवि पंत के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे व्यक्ति के लिये भी कठिन होता। 'नील ध्वनि' आकाश के प्रतीक पात्र के रुप में प्रस्तुत है। इसी प्रकार अदृश्य किन्तु अनुभावित मरूत भी समस्त दिक्मण्डल के व्यापकत्व को आकार-रुप देने का अद्भुत प्रयास है। इसी प्रकार अन्य नाटकों में ये प्रतीक और ऐसे अन्य अनेकों प्रतीक जैसे 'शरद चेतना' की ऋतुएँ मानवीय भावनाओं की प्रतीक बनकर शरद ऋतु के उल्लास आनन्द को स्वीकारोक्ति से अभिव्यक्त करती है।

हम विश्वास एवं निश्चय पूर्वक निष्कर्षतः कह सकते है कि पंत जी इन बारहों गीति नाट्यों का प्रतीक विधान सशक्त और अर्थ व्यंजक है।

सुमित्रानन्दन पंत के गीतिनाट्यो के बिम्बात्मक सौन्दर्य :

पंत जी प्रकृति सौन्दर्य के मूल कवि है। प्रकृति अनन्त सौन्दर्य का अक्षय भण्डार है। 'रजत शिखर' का प्रारम्भ पुरुष स्वर से हुआ है। वन - प्रान्तर के दृश्य को कवि ने पर्वत शैलमालाओं के अन्तराल में प्रवेश कर घाटी और उसमें प्रवाहित कलकल मर्मर ध्वनि करते प्रपात को मानवी उद्वेलन में चित्रित किया है। ऐसा सुन्दर बिम्ब मनुज अपनी कल्पना में निर्मित कर पर्वत-प्रदेश के सुरम्य वातावरण में विचरण करने के लिए बना सकता है।

वन मर्मर की हरी भरी घाटी यह सुन्दर
कल कल बहती जहाँ मुखर प्राणों की सरिता
आवेशों के फेनिल मानस पुलिन डुबा कर
यहां प्रसारों में हँसता जीवन-स्वर्णातप
शोभा के ताने बाने में सतरंग गुम्फित
मृग जल सी शत छाया इच्छाये लहराती
निःस्वर नूपुर बजा वीथियों में ममता की।

धरती के इस सौन्दर्य से उठकर वही पुरुष स्वर आत्मोन्नयन सूचक स्वरों

में दूरस्थ लोकालोक की दिव्यता को प्रस्तुत करता है।

`दूर वहाँ, उस पार, मर्मरित अन्तरिक्ष के
ऊपर, नभ का नील चीरते, शुभ्र रजत के
शिखर दिखाई पड़ते जो स्थिर ज्योति ज्वार से
तड़ित चकित जलदों के खुलते अन्तराल से
मौन अटल उल्लंग आत्म गरिमा में जागृत
शाश्वत, अमर, असीम - परम आनन्द लोक से-

ऐसे विराट बिम्ब की कल्पना कर कवि मात्र मानव के समतल संचरण को इंगित कर उसके ऊर्ध्व गामी संचरण की ओर ले जाने का संकेत करता है। इसी मन्तव्य को कवि ने स्वर्ण-धूलि, स्वर्ण-किरण और उत्तरा के गीतों में भी प्रस्तुत किया है।

`फूलों का देश' गीतिनाट्य भी इन्ही रोमांचक भावों को प्रकृति के सौन्दर्य विम्ब में प्रतिबिम्बित करता है। इस नाटक में भी पुरुष-स्त्री स्वर है जो धरातल से मनुष्य को अन्नमय कोष से प्राण मय कोष तक ले जाने की आध्यात्मिक प्रकिया का द्योतन करते हैं -

यह फूलों का देश आज फिर धन्य हो उठा
वाहित करता जो धरती की ओर निरन्तर
देवों का ऐश्वर्य अतुल - शोभा सुन्दरता
ज्योति प्रीति आनन्द अलौकिक स्वर्ग लोक का।

इस मन्तव्य की प्रतिपूर्ति - एक अलौकिक बिम्ब से `कवि' (पात्र) कहता है-

स्वर्ग की वेणी से मैं
इन्द्रधनुष को छीन, धरा के तिमिरपाश में
उसे गूँथ जाऊँगा।

यह अलौकिकता की उपमा अथवा रूपक अपने आप में अद्वितीय भी है। `स्वर्ग की वेणी से इन्द्रधनुष के छीन' पद अपने आप में मनुष्य के मन के अन्तर्द्वार की विराट कल्पना को साकार कर देता है। और इसकी परिणति है-

अमृत पुत्र है मानव।

उत्तरशती में धरती के महासमर से उत्पन्न राष्ट्र क्रान्तियों ने जो स्वरुप लिया, उसका विद्रूप चित्रित किया गया है और उससे ऊपर उठने का भी मार्ग प्रशस्त कर कवि ने नई दिशाओं का निर्देशन किया है -

रक्त क्रान्ति के शोणित के सागर से उठकर
चमक रहा है लोहितक्ष नक्षत्र नवोदित
युग के नभ में अंगारक सा महत् नवोज्ज्वलं
भूमि पुत्रवत्, मातृधरा के वैभव से स्मित।

इस बींसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रक्तपात से निकल मनुष्य अपने मानवीय विकास में लगे, यही इस गीतिनाट्य का उद्देश्य भी है।

शुभ्रपुरुष में गांधीवादी चिन्तन है जिसमें मानवता के लिये अहिंसा और प्रेम का संदेश है। इन समस्त गीति नाट्यों में विम्ब - प्रतिविम्ब गाव का सर्वत्र दर्शन होता है।

पंत जी के गीतिनाट्यो में विचार चिन्तन

पंत जी का संपूर्ण गीति नाट्य साहित्य विचार-चिन्तन से परिपूर्ण है। वस्तुतः पांचवे दशक में पंत जी पाश्चात्य जीवन दर्शन का मोह भंग कर चुके थे। मार्क्स और माओं के जीवन दर्शन ने राजनीति को साधन बना कर जिस सामूहिक उत्पादन से राष्ट्रीय विकास का संकेत दिया था उससे कवि का मोह भंग हो चुका था। सामूहिक उत्पादन से अर्थव्यवस्था का आधार एक विश्रृंखल देश में आवश्यकतानुसार जीवन यापन के साधन तो जुटा सका किन्तु, मानवीय संवेदनाओं से शून्य होता चला गया। व्यक्तिगत जीवन - शैली, व्यक्तित्व विकास, चिन्तन, जीवन - दर्शनं, आत्मचेतना सभी शासनतंत्र और अर्थ व्यवस्था की दृष्टि से ही संचालित होते थे। कार्लमार्क्स का अर्थकेन्द्रित जीवन दर्शन जर्मनी में उत्पन्न होकर इग्लैण्ड में विकसित हुआ और रुस में उसका प्रयोग प्रतिफलित हुआ जिसमें जार की सत्ता को ललकार कर जन- क्रान्ति द्वारा जन-सत्ता स्थापित की थी । पंत जी इस वैज्ञानिक दर्शन - क्रिया -

प्रतिक्रिया और संशलिष्ट क्रिया के सिद्धान्त से - प्रभावित अवश्य हुए और युगवाणी, युगान्त आदि की कविताएं इसकी प्रमाण भी है किन्तु एक छटपटाहट जो अन्तर्मन का मन्थन करती रहती थी उसका प्रतिफलन उन्हें अरविन्द की चिन्तन धारा में मिला जो क्रान्ति दृष्टा से शान्ति दूत वना। स्वर्ण किरण स्वर्ण धूलि, उत्तरा उसी आत्मचिन्तन, अध्यात्म विकास के ऊर्ध्वगामी विकास की कड़ी है। इस विचार विकास को कवि ने स्वीकारते हुए - भौतिक जगत् - की सत्तात्मक प्रगति के बाह्य विकास के साथ आत्मपरक चिन्तन को कवि ने अपने नाट्य-जगत में विशेष महत्व दिया है जिसकों जन अभिरुचि के रुप में इन गीति - नाट्यों में सजाया गया है।

'शिल्पी' संग्रह का अप्सरा गीति नाट्य पंत जी की सौन्दर्य परक दृष्टि का परिचायक है। इस गीति नाट्य का मुख्य विवेचन मनुष्य की सौन्दर्य चेतना का अन्वेषण यथार्थ की भूमि पर किया गया है। इस गीति नाट्य का मुख्य विचार विन्दु से उद्भूत सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति कल्पना और चिन्तन बिन्दुओं का विश्लेषण करती है। इस गीति नाट्य में कवि ने अपनी मूल-प्रकृति के अनुरुप प्रकृति सौन्दर्य से अनन्त सौन्दर्य को प्रस्तुत किया है और वर्तमान के स्वर को उन्होंने मुखरित होने से बचाया है। यदि गहन अध्ययन दृष्टि से देखें तो वर्तमान की भित्ति पर एक स्वर्णिम भविष्य का भवन निर्मित किया गया है।

'शिल्पी' गीति नाट्य में पंत जी ने कलाकार के जीवन की यथार्थवादी व्याख्या करने की चेष्टा की है। कलाकार के अन्तर्मन में निरन्तर एक संघर्ष बना रहा है जो अपने यथार्थ से सौन्दर्य की परिकल्पना कर नये आदर्शों की स्थापना करना चाहता है क्योंकि वर्तमान में भी कलाकार का चिन्तन सामान्य समतल चिन्तन से किंचित उपर उठा रहता है। यह अन्तःसंघर्ष ही पीड़ाकारी है इसी का चित्रण कवि ने इस गीति नाट्य में किया है।

'ध्वंस शेष' योरोपीय जीवन शैली की ओर लगने वाली अन्धी दौड़ की प्रतिक्रिया स्वरुप भारतीय जीवन शैली की चरम उपलब्धि शान्ति की ओर ले जाने का प्रयास है। इस गीति नाट्य का प्रमुख विचार-केन्द्र पश्चिमी जीवन की संघर्षमयी अनीश्वरवादी शैली के स्थान पर पौवार्त्य आस्थावादी आनन्दवाद को स्थापित करना है। भोगवादी जीवन यापन पशुओं और मनुष्यों में भेद नहीं करता है। उसे संस्कार ही परिष्कृत करते हैं। सामाजिक अर्थव्यवस्था और राजनीतिक सत्ता के निरन्तर संघर्ष से निकालकर विज्ञान की चकाचौंध से मात्र

स्थूल की ओर उन्मुख समाज को कवि ने सूक्ष्म आध्यात्मवादी चिन्तन की ओर ले जाने का प्रयास किया है। व्यष्टि और समष्टि का यह संघर्ष निरन्तर चलता रहता है और इसी के निवारण के लिये 'शिल्पी' कलाकार एक आनन्दवादी संसार की रचना कल्पना करता है।

शनै शनै कवि की विचार-प्रक्रिया गहन होती चली गई और गहन चिन्तन से घटनाओं की अपेक्षा विचार मंथन का परिणाम है 'रजत शिखर' के गीति नाट्य।

'रजत शिखर' मनुष्य की अन्तश्चेतना का शुभ प्रतीक है। जीवन केवल कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही नहीं है अपितु इस दर्शन में जीवन में होने वाले समतल संचरण से ऊपर उठना ही एक मात्र लक्ष्य हैं। इस चिन्तन-विचार को अभिव्यक्ति देने के लिये कवि ने 'रजत शिखर' गीतिनाट्य के युवा-युग्म, साधक, मनोविश्लेषक, राजनीतिज्ञ और विस्थापित जैसे प्रतीक पात्रों की कल्पना की है। विस्थापित पात्र भारत-विभाजन की स्थितियों का परिणाम है। मनोविश्लेषक वृत्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रेरणा है। 'फूलों का देश' सांस्कृति चेतना का धरातल है। जीवन में संघर्ष के आयाम भौतिक-अध्यात्म, वस्तुवादी यथार्थ और आनन्दवादी आदर्श सीमाओं में केन्द्रित है। इनमें समन्वय उत्पन्न करना नाटक का लक्ष्य है। इसी में विश्व संतुलन और परिपूर्णता से जगत कल्याण की कामना की गई है। आदर्श के लिये कलाकार और भौतिकता के लिये वैज्ञानिक पात्रों की संरचना की गई है। किन्तु, मानव कल्याण ही दोनों का एक मात्र लक्ष्य है। 'उत्तरशती' में बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध स्वतंत्रता संग्राम और दासता के युग से उत्तरार्द्ध में कल्याणी वाणी का आशानुरुप सुन्दर समाज निर्माण है। 'शुभ पुरुष' में गांधी जी के राजनीतिक, आध्यात्मिक और मानवीय चरित्र का स्तवन है। 'विद्युतवसना' स्वाधीनता का विकास केन्द्रित नाटक है। स्वाधीनता हमारी आत्मनिर्भरता तथा एकता का मात्र साधन है साध्य नहीं। 'शरद चेतना' पंत जी के प्रकृति सौन्दर्य की चेतना को उद्भासित करने वाली ऋतुओं का वर्णन है और शरद ऋतु की आनन्दवादी सौन्दर्य-चेतना की सृष्टि है।

सौवर्ण के तीनों गीति नाट्यों में पंत जी की दृष्टि सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। 'सौवर्ण' संक्रमणकालीन संस्कृति से मानवीय संवेदनाओं की स्थापना का गीतिनाट्य है। आदर्श की कल्पना मनुष्य के भविष्यत् को सुन्दरतम रुप में प्रस्तुत करे यही

इस गीति नाट्य का प्रमुख विचार बिन्दु है। 'स्वप्न और सत्य' में प्रकारान्तर से आदर्श की निर्मित और यथार्थ की स्वीकृति का चित्रण है। 'दिग्विजय' नाटक संग्रह में बाद में जोड़ा गया है जो मनुष्य के बहिरन्तर को विजयी बनाकर एक समन्यवादी स्वरुप की संरचना है।

पंत जी के गीति नाट्य अन्ततः विचारों के संवाद है, एक डिवेट है, जो कई मंच पर परिचर्चा की भांति करते है। किन्तु, पंत जी ने संगीत प्रतीकपात्र और वाद्य निर्देशों से उन्हें ऐसी प्रस्तुति से संचारित किया है कि मंचीय अभिनय हाव भाव, अंग संचालन आदि नृत्य भंगिमाओं मुद्राओं और ध्वनियों के मिश्रण से भी अभिनीत किया जा सकता है। मूल रुप में रेडियो के लिये लिखे गये नाटकों के रुप में श्रोता गण को कल्पना के मंच पर उनका सिद्ध कर रसास्वादन करना ही कवि का अभिप्रेत है।

अध्याय पंचम

पंत जी के गीतिनाट्यों की उपलब्धि और सीमा

- गीतिनाट्यों के लेखन का उद्देश्य
- हिन्दी साहित्य में गीतिनाट्यों के पठन की उपादेयता
- प्रभाव और अन्विति
- सीमायें

अध्याय पंचम

पंत जी के गीतिनाट्यों की उपलब्धि और सीमा

पंत जी के गीतिनाट्यों की प्रवृत्ति, प्रगति एवं उसके मान्य सिद्धान्तों का तात्विक विवेचन कर लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि आज गीतिनाट्य के क्षेत्र में पंत जी के गीतिनाट्यों ने अपनी सुनिश्चित आधार-शिला स्थापित कर ली है। इस विधा का सर्वाधिक महत्व इसमें है कि यह अन्तजीवन का चित्र प्रस्तुत करने में अत्यन्त सशक्त माध्यम सिद्ध हुआ है।

गीति नाट्यों के लेखन का उद्देश्य

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों से कहीं अधिक जकड़ा रहता है। नाटककार को अपनी ओर से कुछ कहने का बहुत कम अवकाश मिलता है। अतः इसकी संकीर्ण सीमाओं को देखते हुये यह आवश्यक हो गया कि कुछ ऐसी रुढ़ियों की परिकल्पना की जाये जिनसे इन कमियों की पूर्ति की जा सके। भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में दो प्रकार के धर्मियों - नाट्य धर्मी और लोक धर्मी का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि नाट्य - धर्मी रुढ़ियाँ नाटक गत भाव और विचारों को दर्शकों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योग देती रही हैं।

यूरोप में रुढ़ियों की संख्या इतनी अधिक कभी नहीं रही, यद्यपि वहाँ भी नाटक अनेक प्रतिबन्धों से मुक्त नहीं था। नाटककार, ``एँपिलोग'', ``प्रोंलोग'' और ``कोरस'' के माध्यम से अपनी ओर से कुछ कह लेता था। काव्य - तत्व के समाविष्ट होने से भाव - प्रधान वातावरण में रुढ़ियाँ बाधक न होकर साधक तत्व थीं। नाट्यगत रुढ़ियों और कविता के सन्निवेश से नाटक विशेष रुप से प्रभावपूर्ण बन जाते थे।

काव्य तत्व से रिक्त नाटकों में सार्वकालिकता उस सीमा तक नहीं आ पायी जिस सीमा तक काव्य तत्व समन्वित नाटक में देखी जाती है। चलचित्रों के सामने यथार्थवादी नाटक बहुत कुछ निष्प्रभ हो गये। ऐसी स्थिति में नाटककार पुनः काव्य प्रधान नाटकों की रचना करने लगे।

देश और काल के बदल जाने से रंगमंच भी बदल जाते हैं। इसीलिये रंगमंचीय उपचारों में समय-समय पर परिवर्तन आ जाता है। केवल नाटक का पाठ (टेक्सट) अपरिवर्तित रहता है। यह पाठ जितना शक्तिशाली होगा नाटक भी उतना ही जीवन्त होगा। यह निर्विवाद है कि काव्यगत शब्द की अर्थवत्ता कहीं अधिक गहन और प्रभावशाली होती है।

गीतिनाट्य का गीति तत्व नाटक का अनिवार्य अंग होता है। काव्यगत लय के कारण गीतिनाट्य पाठकों की संवेदनाओं और संवेगों के गहनतर स्तरों को उद्घाटित करने में अधिक समर्थ होता है। काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व विम्ब - योजना है। आधुनिक जीवन की पेचीदगियों को अभिव्यक्त करने के लिये प्रतीक विधान भी आवश्यक है। इन तीनों तत्वों के माध्यम से कवि जीवन के यथार्थ को अधिक निकट से पकड़ पाता है और वास्तविकता को अधिक प्रभावशाली तथा मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करता है।

पंत जी के गीतिनाट्यों ने गीति तत्व, कल्पना, बिम्बात्मकता अथवा सूक्ष्म विचार दर्शन को अपने पात्रों के संवादो में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है तथापि रेडियो को ध्यान में रखकर ये रुपक लिखे गये थे अतः इनमें ध्वनि माध्यम से वातावरण सृष्टि का विशेष महत्व है। हिन्दी में गीतिनाट्य यद्यपि काफी सीमा तक सफलतापूर्वक लिखे गये हैं तथापि पंत जी के गीतिनाट्यों पर दार्शनिक चिन्तन का भार नाटकीयता की अपेक्षा अधिक है। इसीलिये ये गीतिनाट्य प्रचलित नहीं हो सके हैं।

हिन्दी साहित्य में गीतिनाट्यों के पठन की उपादेयता

गीतिनाट्य का गीति-तत्त्व नाटक का अनिवार्य अंग होने से ही उसे अपेक्षित ऊँचाई दे पाता है। यह बाह्य रुप से जोड़ा हुआ कोई उपकरण नहीं है, बल्कि उसके भीतर से ही नाटक सिरजा जाता है। टी. एस. ईलियट ने एक जगह लिखा है कि कविता और नाटक की रचना में अलग - अलग पारंगत होकर कोई गीतिनाट्य की रचना में सफल नहीं हो सकता और न तो दोनों का समन्वय ही गीतिनाट्य की अभिधा पा सकता है। गीतिनाट्य नाट्य की विधियों का पालन करते हुये भी अपनी संघटना में अधिक पूर्ण `आर्गेनिक' और समृद्ध होता है। इस दृष्टि से इसका `टेक्स्चर' गद्यनाटक के टेक्सचर से भिन्न होता है। गद्यनाटक

के 'टेक्स्चर' में यथास्थान परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु गीतिनाट्य में इसके लिये बिल्कुल अवकाश नहीं है।

गीतिनाट्य द्वारा अभिव्यंजित अर्थ के एकाधिक स्तरों के मुख्य आधार शब्द ही हैं। फिर भी गीतिनाट्य में 'टोन' का विशेष महत्व है। भावों के उतार-चढ़ाव और जटिलता को व्यक्त करने के लिये लय का महत्वपूर्ण योग होता है। लय के आरोह, अवरोह और सम से विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति सहज सम्भव है। भावों की सान्द्रता (इण्टेन्सिटी) की ऊँचाई और गहराई में अंकित करने के लिये 'टोन' का माध्यम ग्रहण करना पड़ता है। सिद्ध अभिनेता बिम्बों को लय और 'टोन' के माध्यम से प्रत्यक्षीकृत करते हैं।

टी. एस. ईलियट के नाट्यगत काव्य के संबन्ध में कहा है कि प्रायः नाटककार काव्यात्मक उत्कर्ष को ठीक ढंग से अभिव्यक्ति नहीं कर सका है। परन्तु गीतिनाट्य एक ओर गीति है तो दूसरी ओर नाट्य भी। ऐसी स्थिति में इन दोनों तत्वों की एक सूत्रता और एकतानता लेकर ही विचार किया जा सकता है। गीति का निरपेक्ष गीति होना नाट्य के लिये घातक होता है। इसलिये उसे नाट्यात्मक होना अनिवार्य है।

गीतिनाट्य कोरी बाह्य वास्तिवकताओं से बहुत आगे बढ़कर आधुनिक जीवन की जटिलताओं को संवेदनात्मक स्तर पर उद्घाटित करने में प्रवृत्त होता है। गीतिनाट्य के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य ईलियट ने किया। ईलियट साहित्य को समसामयिक जीवन से अनिवार्यतः सम्बद्ध मानता है। उसकी दृष्टि में रचनात्मक साहित्यकार के लिये अन्यन्त आवश्यक है कि वह युगीन चेतना को सम्यक् आत्मसात कर ले। आधुनिक जीवन के अन्तर्द्वन्द्वों और संघर्षो को व्यक्त करने के लिये ही उन्होने गीति नाट्य के रचयिता कवि को काव्य का माध्यम बनाया। इलिएट का मानना है कि गीतिनाट्य के रचयिता कवि को काव्य का माध्यम कुछ इस ढंग से ग्रहण करना चाहिये कि श्रोता अथवा दर्शक को यह न मालूम पड़े कि वह कविता सुन रहा है। अपने नाटकों के लिये ईलियट ने भी बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है।

प्रभाव और अन्विति

हिन्दी - गीतिनाट्य की प्रवृत्ति, प्रगति एवं उसके मान्य सिद्धान्तों का तात्विक

विवेचन कर लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि आज हिन्दी गीतिनाट्य ने अपनी सुनिश्चित आधार - शिला स्थापित कर ली है। उसकी सीमाएँ निश्चित हो रही है और सम्भावनाएं साकार। इस विधा का महत्व इसमें है कि यह अन्तर्जीवन का चित्र प्रस्तुत करने में अत्यन्त सशक्त माध्यम सिद्ध हुई है।

विज्ञान की प्रगति ने जहाँ एक ओर चलचित्र के माध्यम से रंगमंच को गहरा धक्का दिया है, वहाँ दूसरी ओर रेडियो ओर टेलिविजन के द्वारा नाट्य साहित्य को नया जीवन भी दिया है। हिन्दी में कोई सुनिश्चित रंगमंच न होने के कारण इनका समुचित विकास नहीं हो पा रहा है। अतः गीतिनाट्य केवल पठन और श्रवण तक ही सीमित रहे। आज इनकी मुख्य शरण-भूमि आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्र ही दिखाई पड़ते है। आज प्रायः समूचा हिन्दी गीतिनाट्य साहित्य रेडियो को ही दृष्टि में रखकर लिखा जा रहा है। रेडियो नाटक का प्रचार-प्रसार बढ़ता ही जा रहा है। इसका मूल कारण यह है कि जहाँ एक ओर रंगशाला की सीमाएँ रेडियो पर नहीं व्यापतीं, वहाँ दूसरी ओर मंच पर प्रदर्शित न किये जा सकने वाले दृश्यों की सृष्टि भी रेडियो पर की जा सकती है। उदाहरणार्थ वर्षा, अकाल, आँधी, तूफान, ज्वार भाटा, अन्तरिक्ष यात्रा आदि। रेडियो नाटक में ध्वनि का विशेष महत्व है। ध्वनि के माध्यम से रंगमंचीय साज-सज्जा, वातावरण सृष्टि, पात्रों की रुप-सज्जा एवं उनके कार्यो के लिये पृष्ठभूमि-भावाभिव्यंजन आदि की योजना की जाती है।

रेडियो से गीतिनाट्य के सफल प्रसरण के लिये नाटककार और रेडियो अभिनेताओं को रेडियो - नाट्य - शिल्प का अच्छा जानकार होना आवश्यक है। श्रव्य होने के कारण गीतिनाट्य की भाषा सरल, स्वाभाविक, भावाभिव्यंजक हो और जो अभिनेताओं द्वारा सुगमता से बोले, सुने और समझी जा सके। ये संवाद चरित्र-चित्रण करने और घटनाओं को आगे बढ़ाने का कार्य ही नहीं करते अपितु दृश्य ज्ञान का बोध और वातावरण की सृष्टि भी करते हैं। इसकी विषय वस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक घटना, सामाजिक या मनोवैज्ञानिक समस्या पर आधारित हो सकती है। रेडियो गीतिनाट्य के कथानक के लिये यह आवश्यक है कि उसमें प्रभाव की अन्विति सर्वत्र बनी रहे। इसमें ध्वनि का प्रयोग सार्थक और सन्तुलित रुप में ही अपेक्षित है क्योकिं ध्वनि प्रभाव अभीष्ट वातावरण की सृष्टि करने के अतिरिक्त पात्रों के मनोभावों को भी उभारकर रखने में सहायक होते हैं।

रेडियो की दृष्टि से हिन्दी गीति नाट्य प्रयोगशील एवं विकासशील है। सुमित्रानंदन पंत, गिरिजाकुमार माथुर, सिद्धनाथ कुमार, धर्मवीर भारती आदि के गीतिनाट्य आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से कई बार प्रसारित किये जा चुके हैं और काफी दूर तक सफल रहे हैं। किन्तु हिन्दी के कतिपय गीतिनाट्यकार रेडियो एवं नाट्य-शिल्प की जानकारी के अभाव में इस दिशा में विशेष प्रगति नहीं कर सके। रेडियो की दृष्टि से लिखे गये गीतिनाट्यों का महत्व उनके पाठ्य होने में न होकर श्रव्य होने में है। श्रवणीयता के दो गुण जो अत्याधिक अपेक्षित हैं, वे हैं, सम्प्रेष्य अर्थ, जो शब्दों की अपनी आत्मा होती है, और दूसरा शब्दों की गठन और बनावट (टेक्सचर एण्ड एक्सट्रक्चर) से संयोजित ध्वनि द्वारा सम्प्रेष्य अर्थ। दूसरा गुण हिन्दी - गीतिनाट्य में विकसित रुप में दिखाई नहीं पड़ता। इसका कारण रेडियो अभिनेताओं और सम्बद्ध निर्देशकों को इस का समुचित ज्ञान न होना है।

हिन्दी - गीतिनाट्य का जो सबसे दुर्बल पक्ष है, वह है इनमें काव्यत्व और नाट्यत्व के समन्वय का अभाव। गीतिनाट्य में जब तक नाटक और काव्य एक-दूसरे में होकर नहीं बहते और अन्योन्याश्रित रुप में सामने नहीं आते तब तक न तो विषय-वस्तु की सम्यक् अभिव्यक्ति ही सम्भव है, और न अभीष्ट प्रभाव की समष्टि ही। हिन्दी गीति-नाट्य में यह पक्ष बहुत ही दुर्बल है। हिन्दी के कवि रेडियो में आ जाने पर, जो गीतिनाट्य लिखने को विवश है, उनमें कवित्व में नाटकीयता का अभाव रहता है। नाट्यत्व के अभाव के साथ साथ इन गीतिनाट्यों की भाषा और काव्य - लय भी जन जीवन की भाषा और सामान्य व्यवहार की लय से बहुत दूर है।

गीतिनाट्य में कवि को ऐसे स्तर पर भाषा का प्रयोग करना अपेक्षित होता है कि वह सर्वसाधारण के लिये बोधगम्य हो सके। आज हिन्दी में अधिकांश गीतिनाट्य दुरूह और जटिल भाषा में लिखे जा रहे हैं, जो कि जनसाधारण के लिये कठिन है। अतः नाट्यकार को साहित्यिकता और कलात्मकता के उच्च धरातल के साथ जन-समाज तक भी पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिये, तभी उसके साहित्य की सार्थकता सिद्धं हो सकती है।

सीमायें

हिन्दी गीतिनाट्य अनेक त्रुटियों, अभावों के बावजूद प्रगति के पथ पर अग्रसर होता ही जा रहा है और यह नाटक से अधिक आधुनिक काव्य के लिये

शुभ लक्षण है। आज का युग कविता का ह्रास कविता का ह्रास युग कहा जाता है। कविता के ह्रास का मूल कारण है उसमें व्यक्तिवाद का स्वर। इसके फलस्वरुप कविता जन-जीवन से विच्छिन्न, दुरूह एवं व्यक्तिवादी होती जा रही है। गीतिनाट्य हिन्दी कविता की इस ह्रासोन्मुखी दिशा को फिर से स्वस्थ मोड़ देने का प्रयास कर रहा है। उसमें व्यक्तिगत जीवन भी है और सामाजिक जीवन भी; नाट्यत्व भी है और काव्यत्व भी।

विभिन्न बिम्बों की नियोजना एवं घात-प्रतिघात के कारण काव्यगत सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है। विशेषकर जब कविता की वाणी में चाक्षुष बिम्ब एवं श्रवणात्मक बिम्ब एक दूसरे के पूरक के रुप में आते है, उस समय प्रभाव में वृद्धि होती है। प्रतीकों की नियोजना से जो गहराई और बिम्ब के प्रयोग से जो अर्थ की स्पष्टता आनी चाहिये, उसका अभी तक हिन्दी गीतिनाट्यों में अभाव है।

हिन्दी गीतिनाट्यों के प्रदर्शन हेतु उपयुक्त रंगमंच का अभाव है, जिसके कारण अभिरूचि संपन्न दर्शक - समाज का भी निर्माण नहीं हो पाता है। गीतिनाट्य की अभिनयात्मक सफलता के लिये सुरुचिपूर्ण रंगमंच के साथ ही सुसंस्कृत दर्शक - वर्ग की भी आवश्यकता होती है। हिन्दी रंगमंच की स्थापना और प्रचार होने पर उसके अनुकूल गीतिनाट्यों की सर्जना होगी और अभिरुचिपूर्ण दर्शक-मण्डली का भी निर्माण होगा।

वर्तमान में जनता रंगमंचीय नाटकों के प्रति उदासीन नजर आती है। इसका प्रमुख कारण समयाभाव के साथ-साथ सिनेमा या चित्रपट का बढ़ता हुआ प्रभाव है। चलचित्र की लोकप्रियता में ह्रास एवं रंगमंच के अभावों की पूर्ति टेलीविजन के माध्यम से की जा सकती है। टेलीविजन अभिनय का सर्वोत्तम माध्यम सिद्ध हुआ है। बड़े-बड़े पश्चिमी देशों में रेडियो की भांति ही इसका प्रचार एवं प्रसार हुआ है। वहाँ साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ गीतिनाट्यों का भी प्रचुर मात्रा में प्रदर्शन बखूबी होता रहता है। टेलीविजन के द्वारा हिन्दी गीति नाट्यों की लोकप्रियता बढ़ जायेगी, क्योंकि जहाँ रेडियों केवल श्रवणात्मक आनन्द ही देकर रह जाता है, वहाँ टेलीविज़न श्रवणात्मक और चाक्षुष दोनों।

गीतिनाट्य की कविता में रुपात्मक तत्वों के साथ नाटकीय तीव्रता का समावेश आवश्यक है। जन-जीवन से संकुल करने के लिये उसकी लय दैनिक

व्यवहार के वार्तालाप के निकट ही होनी चाहिये। जैसा कि टी. एस. ईलियट के `मर्डर इन द कैथीड्राल' `कॉकटेल पार्टी', `कॉन्फीडेन्शल क्लर्क' आदि तथा धर्मवीर भारती के `अन्धायुग' गीतिनाट्यों में है।[१] गीतिनाट्यकार के लिये इस बात की आवश्यकता है कि वह नाटक की कविता को जगत के उस धरातल पर ले जाये जहाँ मनुष्य निवास करते है; न कि जनता को उससे असम्बद्ध और अज्ञात किसी ऐसे काल्पनिक जगत में पहुँचाने की कोशिश करे जहाँ कोरी कविता का बोलबाला है। गीतिनाट्य तभी प्रश्रय पा सकता है जब कि उसकी कविता जनता को अपनी चीज मालूम दे और नाटक के पद्यमय वार्तालापों को सुनते हुये दर्शक यह कह सके कि `मैं भी कविता में बोल सकता हूँ।'

---

1. T. S. Eliot `Selected Prose' (Penguin Press) P. 79

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. भरत मुनि — नाट्य शास्त्र
२. ऋग्वेद
३. दशरूपक
४. डॉ० नगेन्द्र — आधुनिक हिन्दी नाटक
५. डॉ० बच्चन सिंह — हिन्दी नाटक
६. कृष्ण सिंघल — हिन्दी गीतिनाट्य
७. डॉ० नगेन्द्र — सुमित्रानन्दन पंत
८. सुमित्रानन्दन पंत — ज्योत्सना
९. सुमित्रानन्दन पंत — सौवर्ण गीतिनाट्य
१०. सुमित्रानन्दन पंत — रजत शिखर गीतिनाट्य
११. सुमित्रानन्दन पंत — शिल्पी गीतिनाट्य
१२. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी — नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्पराऐं : द्वितीय प्रकाश
१३. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत — शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त
१४. उदय शंकर भट्ट — विश्वामित्र और दो भावनाट्य स्पष्टीकरण (ख)
१५. डॉ० सिद्धनाथ कुमार — हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास
१६. डॉ० मनमोहन गौतम — उदयशंकर भट्टः व्यक्ति और साहित्यकार
१७. डॉ० विनय मोहन शर्मा — डॉ० सिद्धनाथ कुमार द्वारा उद्धृतः हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास
१८. डॉ० जवाहर लाल कंचन — दिनकर कृत गीतिनाट्य उर्वशी : काव्य संस्कृति और दर्शन
१९. डॉ० दशरथ ओझा — हिन्दी नाटकःउद्भव और विकास
२०. डॉ० सिद्धनाथ कुमार — सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक भूमिका

२१. सुमित्रानन्दन पंत — तारापथ भूमिका

२२. उदयशंकर भट्‌ट — विश्वामित्र की भूमिका

२३. डॉ० धर्मवीर भारती — अंधा युग का निर्देश

२४. शैली — बार्कर—ऑन पोएट्री इन ड्‌ामा

२५. रोनॉल्ड पिकॉक — द आर्ट ऑफ ड्रामा

२६. एच० जी० बार्कर — ऑन पोएट्री इन ड्रामा

२७. टी०एस० इलियट — सेलेक्टेड प्रोज़

२८. जे० आईजेक — एन एसेसमेन्ट ऑफ लिटरेचर

२९. बेसिल वर्सफील्ड़ — जजमेंट इन लिटरेचर

३०. ए० निकॉएल — द थ्योरी ऑफ ड्रामा

३१. एवर क्रॉम्बी — क्रिटिकल एसेस

३२. ए० निकॉल — ए ब्रिटिस ड्रामा

३३. टी० एस० ईलियट — मुन्द्रा — हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर थर्ड बोल्यूम में उद्‌घृत

३४. टी० एस० ईलियट — आर० विलियम्स 'द ड्‌मा फाम इब्सन टू ईलियट'

३५. प्रो० चेडलर — द पोएटिक ड्रामा

३६. मोहन लाल आयना — इंडियन ड्रामा

३७. डॉ० कीथ — द नहजारासाक्स ए बेले एण्ड रफोरमेन्स

३८. टी० एस. ईलियट — प्रॉब्लम ऑफ ड्रामा

३९. कादम्बिनी — अप्रेल ६७ अंक